"सत्ये नास्ति भयं क्वचित्"

# हिन्दी-नवरत्न

अर्थात्

हिन्दी-साहित्य के नव सर्वोत्तम कवि

समालोचना ग्रन्थ।

लेखक

पण्डित गणेशबिहारी मिश्र,

पण्डित श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए०,

पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र, बी० ए०

प्रयाग

हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली

प्रथम बार १०००, प्रति } १९६७ { मूल्य २॥)

श्रीमान् महाराजा विश्वनाथसिंह जू देव बहादुर,
छत्रपुर, बुन्देलखंड।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

# समर्पण

श्रीमान् श्रीछत्रपुराधिपति,

हिज़ हाइनेस महाराजा विश्वनाथसिंह जू देव बहादुर

के

करकमलों में

श्रीमान् की कृपामय आज्ञा से

यह तुच्छ ग्रन्थ

अत्यन्त श्रद्धा और नम्रतापूर्वक

ग्रन्थकर्त्ताओं द्वारा

सादर समर्पित।

# हिन्दी-नवरत्न

# निवेदन ।

यह प्रकट करते हमें अत्यन्त हर्ष होता है कि, इस ग्रन्थ को हिन्दी-पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने की जो इच्छा हम बहुत दिनों से कर रहे थे सो अब पूर्ण हुई । यह सृष्टि का नियम है कि, जिस वस्तु की अधिक चाह होती है, उसके प्राप्त करने में समय भी अधिक लगता है । इस नियम के अनुसार इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करने में हमें अधिक समय लग गया, परन्तु हम आशा करते हैं कि, इसकी उत्तमता का विचार कर हिन्दी-रसिक जन इस देरी के लिए क्षमा करेंगे । यह पूछा जा सकता है कि, इस ग्रन्थ की छपाई, जिल्द तथा चित्र आदि के आडम्बर में क्यों व्यर्थ अधिक समय लगाया गया तथा व्यर्थ पुस्तक का मूल्य बढ़ाया गया ? इसके उत्तर में हम कुछ नहीं कहते; केवल इंग्लैंड के प्रसिद्ध विद्वान् मृत मि० ग्लडस्टन् का कथन उद्धृत करने की आज्ञा चाहते हैं । मि० ग्लैडस्टन् का कथन है:—

"We ought to recollect, with more of a realised conception than we commonly attain to, that a book consists, like man from whom it draws its lineage, of a body and a soul. The binding of a book is the dress with which it walks out into the world. The paper, type and ink are the body in which its soul is domiciled.

And these three, soul, body and habiliment, are a triad which ought to be adjusted to one another by the laws of harmony and good sense." इसका सारांश यह है कि हमें स्मरण रखना चाहिए कि ग्रन्थ-कर्ता के समान प्रत्येक ग्रन्थ के भी आत्मा तथा शरीर दोनों रहते हैं। जिल्द ग्रन्थ का वेश होता है जिसे धारण कर वह संसार में भ्रमण करता है। काग़ज़, टाइप, तथा स्याही ये तीनों मिल कर ग्रन्थ का शरीर बनते हैं जिसमें उस ग्रन्थ की आत्मा विराजमान है। और इन तीनों—आत्मा, शरीर तथा वेश—का परस्पर सम्बन्ध, सादृश्य तथा विवेक के नियमों के अनुसार रहना चाहिए।

मण्डली को प्रथम वर्ष ही में एक ऐसा उपयोगी तथा श्रेष्ठ ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिए मिल जायगा, इसकी हमें आशा न थी, परन्तु मिश्र-बन्धुओं की कृपा से यह मण्डली को प्राप्त हो गया। इसके लिए मण्डली इन मिश्र-बन्धुओं को सदा कृतज्ञ रहेगी। इस कार्य में जिन महाशयों ने सहायता प्रदान की है, मण्डली की ओर से उन्हें अनेक धन्यवाद हैं। अन्त में हम आशा करते हैं कि हिन्दी के पाठक इस ग्रन्थ का उचित आदर कर हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे ताकि मण्डली हिन्दी-साहित्य की सेवा करने में समर्थ हो।

प्रयाग,
ता० १० मार्च १९११

विनीत—
मंत्री,
हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली।

पण्डित गणेशविहारी मिश्र ।

पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०,

पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र, बी० ए०,

# सूची-पत्र

विषय पृष्ठ

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|

विषय पृष्ठ

## नवरत्न के कवियों का समय।

| नम्बर | नाम | जन्म संवत् | मृत्यु संवत् | अवस्था | जाति | कालान्तर* | कितने वर्ष कौन कवि औरों का समकालीन रहा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | चन्दबरदाई | ११८३ | १२५० | ६७ | ब्रह्म भट्ट | | न० २ व ३ =३१ |
| २ | सूरदास | १५४० | १६२० | ८० | सारस्वत ब्राह्मण | ३५७ | न० २ व ४ = ८<br>न० २ व ३ व ४ = ८ |
| ३ | तुलसीदास | १५८९ | १६८० | ९१ | कान्यकुब्ज ब्राह्मण | ४९ | न० ३ व ४ =६२<br>न० ३ व ५ =२० |
| ४ | केशवदास | १६१२ | १६७४ | ६२ | सनाढ्य ब्राह्मण | २३ | न० ३ व ४ व ५ =१४<br>न० ४ व ५ =१४ |
| ५ | बिहारीलाल | १६६० | १७२० | ६० | माथुर ब्राह्मण | ४८ | न० ५ व ६ =२८ |
| ६ | भूषण | १६९२ | १७७२ | ८० | कान्यकुब्ज ब्राह्मण | ३२ | न० ५ व ७ =२४<br>न० ६ व ७ =७६ |
| ७ | मतिराम | १६९६ | १७७३ | ७७ | कान्यकुब्ज ब्राह्मण | ४ | न० ५ व ६ व ७ =२४<br>न० ६ व ८ =४२ |
| ८ | देवदत्त | १७३० | १८०२ | ७२ | सनाढ्य ब्राह्मण | ३४ | न० ७ व ८ =४३<br>न० ६ व ७ व ८ =४२ |
| ९ | हरिश्चन्द्र | १९०७ | १९४१ | ३४ | अग्रवाल वैश्य | १७७ | |

*अर्थात् वह कवि अपने पूर्ववाले कवि के जन्म से कितने वर्ष पीछे उत्पन्न हुआ।

# भूमिका।

हमारा बहुत दिनों से विचार था कि हिन्दी-साहित्य का एक अच्छा इतिहास लिखा जावे और उसमें प्रसिद्ध तथा उत्तम कवियों की रचनाओं पर कुछ विस्तार के साथ समालोचनायें की जावें। हमारे यहाँ हिन्दी में समालोचना-विभाग की कैसी कमी है यह सब हिन्दीरसिकों पर विदित है। अँगरेज़ी भाषा में यदि अकेले शेक्सपियर के समालोचकों के लेखों का आकार जोड़ा जावे तो वह स्वयं इस कवि की रचनाओं का पन्द्रह गुना ठहरेगा। इसी प्रकार अन्य साधारण कवियों तक की रचनाओं के मर्म्म प्रकट करने और उनके गुण दोष परखने में अँगरेज़ी-समालोचकों ने श्रम करना उठा नहीं रक्खा है और प्रायः सभी कवियों की रचनाओं के पढ़ने में साधारण पाठक एवं विद्यार्थी तक इन समालोचना-ग्रन्थों से उसके गुण दोष भले प्रकार समझने में समर्थ होते हैं। इस भाँति समालोचना-ग्रन्थों द्वारा कवियों की रचनाओं के जौहर चमकते हैं और उत्तम एवं शिथिल रचनाओं के भेद समझने में साधारण मनुष्य भी कृतकार्य्य होते हैं। इस प्रकार संसार में उत्तम रचनाओं का मान बढ़ता है और निकृष्ट ग्रन्थों का प्रचार कम पड़ता है। संसार में किसी भी विषय के अच्छे समझने वालों की संख्या बहुत कम होती है और पाठक वृन्द में प्रति सैकड़ा ९५ ऐसे मनुष्य होते हैं जो समयाभाव एवं अन्य कारणों से इस विषय के पूर्णज्ञ नहीं हैं।

बहुत लोगों की रुचि इतनी उन्नत नहीं होती कि वह सब प्रकार की रचनाओं में उचित भेद समझ सकें। जो लोग इस विषय में अधिक समय लगा सकते हैं उनका कर्त्तव्य है कि वे लोग ग्रन्थों के याथा-तथ्य गुण दोष बता कर ऐसे मनुष्यों की रुचियों की भी उचित उन्नति करें। इस प्रकार समालोचना केवल किसी एक कवि का हाल ही नहीं बताती वरन् साधारण पाठक-समाज में औचित्य का भी वर्द्धन करती है। फिर प्रत्येक पाठक की रुचि भिन्न हुआ करती है परन्तु वह अपनी रुचि के अनुरूप सब ग्रन्थ खोजने में सदैव समर्थ नहीं होता। समालोचना से प्रति ग्रन्थ का असली स्वरूप साधारण पाठक के सन्मुख विना उस ग्रन्थ के पढ़ेही उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार समालोचना से उचित पुस्तकों के चुनाव में भी लोगों को बड़ी सहायता मिलती है। एक प्रकार से सत्य समा-लोचना उत्तम ग्रन्थों को जीवन दान और बल प्रदान करती है। उत्तम ग्रन्थों की संख्या बढ़ाने में भी समालोचना परम कुशल है क्योंकि जब इसके द्वारा निकृष्ट ग्रंथों का मान न होने पावेगा तब उत्तम ग्रन्थ आप से आप अधिक बनेंगे। भविष्य के लेखकों और कवियों के लिए समालोचना गुरु का काम करती है क्योंकि उन्हें वह सिखलाती है कि किस प्रकार की रचना उत्तम है और सभ्य समाज में आदर पा सकती है। यदि कपूर और कपास श्वेत वर्ण के कारण एकही दामों आँके जाने लगें तो संसार में उत्तम पदार्थों का बहुत शीघ्र अभाव हो जावे।

इन सब बातों से विदित है कि किसी भी भाषा की उन्नति के लिए समालोचना-विभाग का पूर्ण होना परमावश्यक है और जितना

ही जिस समाज में समालोचना का बल होगा उतनेही उत्तम ग्रंथ उस समाज में बनेंगे। अँगरेज़ों की प्रकांड उन्नति का एक बहुत बड़ा कारण समालोचनाओं का बाहुल्य है। आज हम देख रहे हैं कि हिन्दी में साधारण से साधारण ग्रंथ तो प्रकाशित होकर धड़ल्ले से बिका करते हैं पर उत्तम ग्रंथ जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं और उनं का कोई नाम तक नहीं जानता। इसका कारण समालोचना का अभावही है। यदि समालोचना का बल हमारे यहाँ होता तो लाल कृत छत्रप्रकाश ऐसा नग ग्रंथ दो सौ वर्ष तक छिपा ही न पड़ा रहता और नागरी-प्रचारिणी-सभा को बहुत ढूँढ़ खोज के पीछे सूदन कृत सुजान-चरित्र न छापना पड़ता। अभी, कल जब हमने महाकवि सेनापति की समालोचना सरस्वती में प्रकाशित की थी, तब एक प्रतिष्ठित पत्र के सम्पादक ने लिखा था कि आश्चर्य्य का विषय है कि सेनापति का हम लोग नाम भी नहीं जानते और फिर भी वह ऐसे सुकवि थे। यदि हिन्दी में समालोचना की परिपाटी कुछ भी थिर होती तो उन सम्पादक महाशय को यह आश्चर्य्य न करना पड़ता।

यही सब सोच विचार कर हम समझते हैं कि इन एक सहस्र संवत् के कवियों की रचनाओं को जीवन दान देने के लिए प्रत्येक लेखक का कर्त्तव्य है कि वह उत्तम समालोचनाओं द्वारा हिन्दी का कलेवर पूर्ण करे। पर समालोचना लिखना भी कोई साधारण काम नहीं है और वही मनुष्य समालोचना लिख सकता है जो ग्रंथों को भली भाँति समझ सके और उनके विषयों से सहृदयता

रखता हो। इस योग्यता और सहृदयता के अतिरिक्त समालोचक को मूल ग्रंथ पर भली भाँति मनन करने में अच्छा समय भी देना पड़ेगा। अतः प्रकट है कि सिवा अच्छे विद्वान् के कोई साधारण मनुष्य समालोचक नहीं हो सकता। इस बात पर ध्यान देने से हमें इस काम में हाथ लगाने का साहस नहीं होता था, पर अच्छे विद्वानों का इस ओर विशेष झुकाव न देख कर हमने ध्यान आकर्षित करने के विचार से ही इस कार्य्य में हाथ लगाया कि शिथिल समालोचनाओं द्वारा भी यदि इस ओर विद्वानों का ध्यान जावे और इस विभाग की उन्नति हो सके तो हमारा अभिप्राय सिद्ध हो जावेगा। सबसे प्रथम हिन्दी गद्य में जो लेख हमने लिखा वह हम्मीर हठ पर समालोचना है जो सन् १९०० की सरस्वती में छपा है। इसके पहले गद्य में सिवा चिट्ठियों आदि के हमने केवल लवकुश चरित्र की भूमिका लिखी थी पर वह कोई स्वतन्त्र लेख नहीं है और एक प्रकार का वक्तव्य मात्र है। हमारा दूसरा लेख पंडित श्रीधर पाठक की कविता की समालोचना है। इस लेख पर बहुत दिनों तक समाचार पत्रों में वाद विवाद होते रहे थे। इन्हीं वादों में हमने लिखा था कि हमारा हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने का विचार था। यह विचार सन् १९०१ की सरस्वती में प्रकाशित एक लेख में हमने प्रकट किया था। तब से बराबर अन्य लेखों के साथ हम लोग समय समय पर समालोचना भी लिखते रहे, पर साहित्य का इतिहास लिखने का कभी अवकाश नहीं मिला और न कभी इस ओर फिर विशेष ध्यान ही गया। धीरे धीरे लेख लिखते पढ़ते हम लोगों का विचार गोस्वामी तुलसीदासजी पर समालो-

चना लिखने का हुआ। इसी बीच सन् १९०४ के लगभग हम लोगों ने क़रीब तीन मास परिश्रम करके गोस्वामीजी की कविता की समालोचना के नोट लिखे पर फिर भी अन्य रामायणों को भलीभाँति बिना देखे और मुक़ाबिला किये समालोचना के उत्तम बनने का साहस न पड़ा और इस प्रकार अधिक पठन पाठन के लिए वह नोट जैसे के तैसे क़रीब तीन साल तक रक्खे रहे। सन् १९०७ में समालोचना लिखने में अति विलम्ब देख कर हम लोगों ने फिर साहस किया और हर्दोई में तीनों मनुष्यों ने एकत्र होकर श्रम कर के तीन दिन में गोस्वामीजी की कविता पर एक समालोचना लिख डाली। फिर भी उसके ललित करने के विचार से हम लोगों ने उसे प्रकाशित नहीं कराया। तीन वर्ष तक इसी प्रकार वह रक्खी रही पर अवकाशाभाव से कुछ भी ललित न की जा सकी। उधर सन् १९०५ के लगभग हम लोगों ने भूषण की कविता पर एक समालोचना लिख कर जैपुर के समालोचक पत्र में छपवाई। उस समय काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ग्रंथ-माला में भूषण के ग्रंथों को निकालना चाहती थी। हमारी समालोचना देख कर उस ने भूषण की रचना के सम्पादन का काम हमीं को सौंपा। इस काम में हमें डेढ़ साल तक इतना परिश्रम करना पड़ा जितना कि हमने आज तक सिवा हिन्दी-साहित्य के इतिहास के और किसी भी हिन्दी पुस्तक पर नहीं किया चाहे वह स्वयं हमारी ही बनाई पुस्तक हो चाहे किसी दूसरे की। भूषण कवि के विषय हिन्दीपठित समाज का यह मत है कि ये महाशय वीर कविता अच्छी करते थे पर फिर भी ये एक साधारण कवि मात्र थे। समालोचक वाले भूषण के

लेख में हम ने भी यही विचार प्रकट किया था क्योंकि उस समय हमारा भी यही मत था। फिर भूषणग्रन्थावली के सम्पादन में हम ने भूषण के ग्रंथों की विविध प्रतियाँ एकत्र कीं और यथा-सम्भव शुद्ध और पूर्ण कविता छापने का प्रयत्न किया। इसका फल यह हुआ कि हमारे प्रकाशित शिवराजभूषण ग्रन्थ में अन्य प्रतियों से प्रायः ड्योढ़े छन्द हैं। इस प्रयत्न में हमें भूषण कृत छन्द बहुत बार पढ़ने पड़े और तब हमें भूषण की कविता का महत्त्व जान पड़ा। पहले हम मतिराम को भूषण से बहुत अच्छा कवि समझते थे पर पीछे से इस विचार में शङ्का उठने लगी। उस समय हमने भूषण और मतिराम के एक एक छन्द का मुक़ाबिला किया तो जान पड़ा कि मतिराम के प्रायः १० या १२ छन्द तो ऐसे उत्तम हैं कि जिनका सामना भूषण का कोई छन्द नहीं कर सकता और जिनके सामने सिवा देव के और किसी के भी छन्द ठहर नहीं सकते, पर मतिराम के शेष छन्द भूषण के बीसों छन्दों के सामने ठहर नहीं सके। इस प्रकार मतिराम और भूषण को मिला कर हमने भूषण को श्रेष्टतर पाया। इसी प्रकार भूषण को केशवदास से मिलाया तो भी भूषण ही की कविता में विशेष चमत्कार देख पड़ा। प्रथम तो हमें इस बात पर आश्चर्य्य सा हुआ क्योंकि हम पहले केशवदास को भूषण से बहुत अच्छा समझते थे, पर ज्यों ज्यों अधिक मिलाते गये त्यों त्यों भूषण का ही चमत्कार हमारी दृष्टि में बढ़ता गया। तब हमने भूषण को बिहारीलाल से मिलाया पर उस कविरत्न के सन्मुख भूषण के छन्द ठहर न सके। ये मिलान केवल छन्द पढ़ कर नहीं किये गये थे वरन् प्रत्येक छन्द को नम्बर देकर और उत्तम

छन्दों की संख्या एवं प्रति सैकड़ा उनका औसत लगा कर तथा सब बातों पर कई दिन तक ध्यानपूर्वक विचार करने के उपरान्त किये गये थे। इसी बीच में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने हिन्दी-साहित्य के एक प्रायः २०० पृष्ठ के इतिहास लिखने के विषय हम से कहा। उस समय हम कालिदास कृत रघुवंश का पद्यानुवाद कर रहे थे जो ढाई सर्गों तक बन भी चुका था। हम ने उसी स्थान पर उसे छोड़ दिया और इतिहास के काम के लिए समालोचनाओं का लिखा जाना आवश्यक समझ कर यही काम उठा लिया और १९०७ ईसवी में बहुत से कवियों पर समालोचनायें लिखीं। इस काम के करते करते इसमें निगाह धीरे धीरे फैलने लगी और सब प्रकार के कवियों की उत्तमता अथवा निकृष्टता समझ पड़ने लगी। धीरे धीरे यह विचार उठा कि पाँच परमोत्तम कवियों को लेकर संस्कृत कवि-पंच की भाँति भाषा कवि-पंच-नामक एक ग्रन्थ बनावें। उस में सूर, तुलसी, देव, बिहारी, और केशवदास के नाम रखने का विचार हुआ। फिर भी भूषण की कविता का चमत्कार जब विचार में आया तब उनका छोड़ रखना अनुचित समझ पड़ने लगा और भाषा कविषट् लिखने का विचार उठा। पीछे से सेनापति की कविता में ऐसा अनूठापन देख पड़ा और वह ऐसी उत्तम समझ पड़ी कि उनका भी नाम मिला कर कविसप्त बनाने का संकल्प हुआ। अनन्तर भारतेन्दु तथा चन्द की रचनायें भी परम अलौकिक देख पड़ीं और इस प्रकार हिन्दी-नवरत्न का नाम ध्यान में आया और इसी नाम का ग्रन्थ बनाने का दृढ़ संकल्प हुआ। पीछे से जायसी की कविता बहुत बढ़िया समझ पड़ी और सेनापति के

स्थान पर उनका नाम रखने का विचार हुआ। अन्त में जायसी की कविता जब कई बार ध्यान से पढ़ी गई तब उसका चमत्कार कुछ फीका पड़ गया और जायसी का नम्बर तोष कवि की श्रेणी में समझ पड़ा। यह श्रेणी पद्माकर की श्रेणी के पीछे है। सब से प्रथम मतिराम की श्रेणी थी, फिर दास की और तब पद्माकर की। तोष की श्रेणी के नीचे साधारण श्रेणी है और तब हीन श्रेणी। धीरे धीरे यह समझ पड़ा कि सेनापति की कविता परम अनूठी एवं विशद होने पर भी मतिराम की रचना से समानता नहीं कर सकती। इस विचार से मतिराम की श्रेणी को सेनापति की श्रेणी बना दिया और मतिराम को सेनापति के स्थान में नवरत्न में स्थान दे दिया। इस प्रकार नवरत्न में नव कवियों की स्थिति हुई। कविताओं के मुक़ाबिला करने की प्रकृति के अनुसार अन्य कवियों के विषय भी यही किया गया तो नवरत्न में वृहत्त्रयी, मध्यत्रयी, और लघुत्रयी नामक तीन विभाग स्थिर हुए। वृहत्त्रयी में तुलसी, सूर, और देव को स्थान मिला, मध्यत्रयी में विहारी, भूषण, और केशवदास को तथा लघुत्रयी में मतिराम, चन्द, और हरिश्चन्द्र को। मध्यत्रयी तथा लघुत्रयी में तो जिस प्रकार नाम पूर्वापर क्रम से ऊपर लिखे हैं उसी प्रकार वह कविगण उत्तमता में भी एक दूसरे के आगे पीछे दृढ़तापूर्वक समझ पड़ते हैं, पर वृहत्त्रयी में यह बात नहीं है और बहुत प्रकार से विचार करने पर भी उन तीनों कवियों में न्यूनाधिक कोई भी नहीं समझ पड़ा। पहले तो इस विषय हम तीनों लेखकों में भी मतभेद था और कोई किसी को बड़ा समझता था और कोई किसी को, पर पीछे हमारा मतभेद कुछ दूरसा हो

गया है और अब हम तीनों लेखकों का मत है कि ये तीनों कविगण ख़ास ख़ास गुणों में एक दूसरे से बढ़े हुए हैं पर कुल मिला कर ये तीनों बराबर हैं। तुलसी और सूर के महात्मा होने के कारण उनके नाम देव से प्रथम लिखे हैं और तुलसीदास पर हम लोगों ने विशेष श्रम किया है और उनके विषय में लेख भी बड़ा लिखा है। इन कारणों से तुलसीदास का नाम सूरदास के भी प्रथम लिखा गया है। कई बार हम लोगों ने सोचा कि कालक्रम से नवरत्न के कवियों के नाम आगे पीछे लिखे जावें पर इस बात पर हमारा निश्चय नहीं जमा। हम इन महाशयों को इनके किसी ख़ास समय में उत्पन्न होने के कारण तो नवरत्न में रखते नहीं हैं वरन् इनकी उत्तमता ही इनके इस मान का कारण है तब उसी उत्तमता के अनुसार पूर्वापर क्रम न रख कर कालक्रम का सहारा लेना हमें युक्तिसंगत नहीं समझ पड़ा। पहले यह ग्रन्थ इंडियन प्रेस के स्वामी छापने वाले थे और हमने भी उन्हें इसे देने का विचार किया था। हमारा विचार अपने किसी ग्रन्थ को छपा कर उसके द्वारा लाभ उठाने का नहीं है। इसी कारण हम बिना कुछ दाम लिये अपने ग्रन्थ छापने को उचित और उत्साही प्रकाशकों को दे दिया करते हैं। इस मामले में इस ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ ग्रन्थ-प्रकाशक-मंडली, प्रयाग का उत्साह हमने विशेष देखा, इसीलिए यह ग्रन्थ छापने को हमने मंडली को ही दे दिया। मंडली के मन्त्री ने नवरत्न के कवियों के चित्र प्रकाश करने का भी विचार हम से प्रकट किया। इसमें यह कठिनाई पड़ी कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का तो फ़ोटो मिल सकता है पर शेष आठ कवियों के असली चित्र अब हस्त-गत नहीं हो

सकते। यह देख कर हमने जो कवि जिस समय में जहाँ रहता था और जिस प्रकार की उसकी दशा थी और जैसा वह अपनी कविता से समझ पड़ा उन सब बातों को ध्यान में रख कर प्रत्येक कवि का एक एक भाव-चित्र बनाया अर्थात् वह वर्णन लिखा जैसा कि चित्र का होना हम चाहते थे। उन वर्णनों के सहारे मंडली के मन्त्री ने धनव्यय से उत्साह दिखा कर जबलपूर के चित्रकार पण्डित गणेश-राम मिश्र द्वारा शेष आठ कवियों के चित्र बनवाये जो इस पुस्तक में छापे गये हैं। पाठक स्वयं उन्हें देख कर और कवियों पर समालोचनायें पढ़ कर यदि कुछ भी सन्तुष्ट हुए तो हमारे चित्रकार, तथा मंडली के श्रम सुफल हो जावेंगे।

हमने नवरत्न के कवियों पर समालोचनायें साहित्य-इतिहास लिखने ही के लिए लिखी थीं, पर समालोचनाओं का आकार कुछ बढ़ता हुआ देख पड़ा और यह समझ पड़ा कि इतिहास में एक एक कवि पर सौ सौ पृष्ठों की समालोचना लिखने का स्थान मिलना दुर्लभ है। सभा ने पूरा इतिहास दो तीन सौ पृष्ठों का बनना चाहा था पर केवल नवरत्न के कवियों की समालोचनाओं का आकार ही प्रायः चार सौ पृष्ठों का हो गया। इस वृद्धि के विचार से भी हमने नवरत्न की पुस्तक को अलग कर देना उचित समझा। यह हमें अवश्य कह देना चाहिए कि सभा ने भारी इतिहास के बनने में अश्रद्धा कभी नहीं प्रकट की थी पर हमीं ने उपर्युक्त विचारों से यह पुस्तक पृथक् कर दी। इसके अलग कर देने पर भी इतिहास का आकार ऐसा बढ़ता गया कि अब भी उस में १००० पृष्ठ होने की

आशा है। इतिहास भी समाप्तप्राय हो गया है और उसमें केवल वर्त्तमान कवियों का हाल लिखना शेष है।

ग्रन्थ-प्रकाशक-मंडली का विचार था कि वह इस ग्रन्थ को इतिहास का प्रथम भाग समझें और उन्होंने इस प्रकार विज्ञापन भी दे दिया, पर यह विचार हम को उचित नहीं समझ पड़ा। इतिहास में तो कवियों का वर्णन कालक्रम से ही हो सकता है परन्तु नवरत्न में कालक्रम का पूर्ण अभाव है। यदि नवरत्न के नौ कवियों का वर्णन हम कालक्रम से कर भी देवें तो भी यह इतिहास का प्रथम भाग नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें चन्दबरदाई से लेकर हरिश्चन्द्र तक वर्त्तमान हैं जो इतिहास के किसी भी मिले हुए काल में नहीं हुए। भारतेन्दु का वर्णन वर्त्तमान कवियों में हो सकता है, चन्द का आदिम कवियों में; सूर, तुलसी, केशव का अकबर के काल में; भूषण, मतिराम, बिहारी का शिवाजी और छत्रसाल के समय में और देवजी का औरंगज़ेब के पीछे। अतः प्रकट है कि नवरत्न इतिहास का प्रथम, द्वितीय, अन्तिम आदि कोई भाग नहीं हो सकता और इसे इतिहास से पृथक् परन्तु उससे मिलता जुलता ग्रन्थ समझना चाहिए।

इस ग्रंथ का इतिहास से मेल परम घनिष्ठ है अतः उचित समझ पड़ता है कि इस स्थान पर दिग्दर्शन मात्र की भांति इतिहास का थोड़ा सा सारांश लिख दिया जावे। हिन्दी बंगाल और दक्षिण को छोड़ कर प्रायः समस्त भारतवर्ष की मातृ-भाषा है और इसके कवि सभी ठौर हुए हैं तथा सब स्थानों पर इसका मान रहा है।

कवि की पदवी भी इतनी ऊँची है कि मनुष्य महाराजाधिराज होने पर भी कवि होने से अपना गौरव समझता है। जापान के वर्तमान महाराज मत्सहितो मिकाडो भी राज-काज से समय निकाल कर नित्य प्रति कुछ कविता भी करते हैं। महाराजाओं की कवि बनने की लालसा से हिन्दी-साहित्य का बहुत बड़ा उपकार हुआ है और हो रहा है। कविता करने वाले कुछ तो ऐसे होते हैं जो उसे शौक़िया बचे समय में करते हैं पर अपना प्रधान कार्य्य मुख्यतया किया करते हैं। ऐसे लोग संसार के सभ्य देशों में बहुत होते रहते हैं पर सब कुछ उत्साह रहते हुए भी इन लोगों से बहुत अधिक कार्य्य नहीं हो सकता। दूसरे प्रकार के मनुष्य वह होते हैं जो व्यापार की भाँति कविताही करते हैं और यही उनका प्रधान कार्य्य है। ऐसे मनुष्यों के लिए कविता ही सब कुछ है और ये लोग बहुत अधिक काम कर सकते हैं। पर इनकी जीविका के लिए दोही उपाय हो सकते हैं अर्थात् या तो यह अपने ग्रंथों की बिक्री से जीविका प्राप्त करें या किसी राजा महाराजा का आश्रय लें। जब तक भारत में प्रेस न था तब तक ग्रंथों की बिक्री से जीविका चलना सर्वथा असम्भव था। आज प्रेस के होने पर भी जीविका इस प्रकार नहीं चल सकती क्योंकि भारत में इतने शिक्षित मनुष्य नहीं हैं कि किसी उत्तम ग्रन्थ की भी इतनी प्रतियाँ बिक सकें कि कवि का कालक्षेप उसी के लाभ से हो सके। इँग्लैंड में विद्या का प्रचार बहुत काल से बहुत अधिक है पर वहाँ भी ऐसा समय थोड़े ही दिन हुए आया है कि कविगण ग्रंथों की बिक्री का ही भरोसा कर सकें। भारत में अभी ऐसा समय आना शताब्दियों

की बात है। ऐसी दशा में सिवा धनियों के आश्रित होकर रचना करने के निर्धन कवियों के पास कोई उपाय न था और न है। पर हर्ष का विषय है कि भारत में सधन लोग बहुत अधिकता से कविता-प्रेमी रहे हैं। 'जानै सोई मानै' के अनुसार अगुणज्ञ धनिक तो कविता का सत्कार कर नहीं सकते थे सो गुणी लोगों का आश्रय लेकर ही हिन्दी का कलेवर बना है। गुणी धनियों में भी जो लोग स्वयं कविता करते थे उनकी श्री कवियों के लिए कामधेनु हो जाती थी। साहित्य का इतिहास और कवियों का हाल एवं चक्र देखने से विदित होगा कि महाराजा छत्रसाल और महाराजा भगवन्तराय खीची के यहाँ इतने कवियों को आश्रय मिलता था कि जिसका वार पार नहीं। ये दोनों क्षत्री राजा कवियों के कल्पवृक्ष थे। इनके अतिरिक्त बांधव-नरेश एवं काशी-नरेश के यहाँ भी कई पुश्तों तक बहुत से कवियों को आश्रय मिलता रहा है और अब भी मिलता जाता है। महाराजा मानसिंह अयोध्या-नरेश ने भी कवियों का अच्छा मान किया था। चित्तौर के महाराणा कुम्भकर्ण कवियों के बड़े सहायक थे पर उनके आश्रित कवियों का अब पता नहीं लगता। आश्रयदाताओं के विषय इतना लिख कर अब हम साहित्य-इतिहास का सूक्ष्मतया कुछ वर्णन करते हैं।

हिन्दी की जननी संस्कृत है अथवा प्राकृत इसके विषय कुछ मतभेद शेष है पर अब पंडितों के बहुमत का झुकाव इस ओर समझ पड़ता है कि प्राकृत भाषा ही बदलते बदलते हिन्दी होगई। इसका समय स्थिर करना कठिन है क्योंकि यह अदल बदल किसी

एक समय में नहीं होता बरन् धीरे धीरे शताब्दियों तक होता रहता है। यह कहना बहुत कठिन है कि किस स्थान से ब्रज भाषा समाप्त होती है और पूर्वी बोली प्रारम्भ होती है, अथवा पूर्वी बोली समाप्त होती है और बंग भाषा चलती है। इन समाप्तियों और प्रचारों का कोई एक स्थान नहीं है बरन् धीरे धीरे ग्राम प्रति ग्राम एक भाषा मन्द पड़ती जाती है और दूसरी का अंश कुछ कुछ बढ़ता जाता है यहाँ तक बहुत दूर चल कर एक पूर्णतया मिट जाती है और दूसरी का पूर्ण बल हो जाता है। ठीक यही दशा समयानुसार भाषाओं के परिवर्तन और पतनोत्थान की है। मोटे प्रकार से संवत् ८०० के लगभग हिन्दी का उत्पत्ति काल है। कहते हैं कि संवत् ७७० में भोजराज के पूर्व पुरुष राजा मान के यहाँ पुष्य अथवा पुंड नामक एक बन्दीजन था जिसने दोहों में अलंकारों का वर्णन किया है। चित्तौर के रावलखुमान ने संवत् ८९० तक २४ वर्ष राज किया था। इनके नाम परखुमानरासा नामक एक ग्रन्थ बना था। इन दोनों ग्रन्थों के उदाहरण तक अब हस्तगत नहीं हो सकते। इसके पीछे प्रायः तीन सौ वर्षों तक किसी ग्रन्थ का नाम भी नहीं सुन पड़ता। चन्द कवि ने संवत् १२२५ से १२४९ तक कविता की। यही प्रथम कवि है जिसकी कविता मिलती है। चन्द के समकालीन जगनिक बन्दीजन ने आल्हा बनाया पर लिखित न होने के कारण जगनिक की भाषा का भी अब आल्हा में पता नहीं है। केदार कवि वरवैसीता और बारदर बेण नामक कवियों का भी नाम इसी समय के आस पास ग्रन्थों में लिखा है पर इनकी कविता भी अब नहीं मिलती। गद्य का उदाहरण जो सब से पुराना अब

उपलब्ध है वह भी चन्द के समय का है पर इसकी भाषा चन्द की भाषा से भी जटिलतर है। उदाहरणार्थ उसका कुछ अंश यहाँ लिखा जाता है।

श्री श्री दलीनं महनं राजानं धीराजनं हदुस्थानं राजधानं संभरी नरेस पुरब दली तखत श्री श्री महानं राजं धीराजनं श्री प्रथीराजी शुसथानं आचारज रुषी केस धनंत्रितं अप्रन तम को बाइ श्री प्रथुं कवरन की साथ हत लेवे चीत्रकोट को दीया तुमारा हक चहुवान के रज में साबीत हे तुमारी औलाद का सपुत कपुत होगा जो चहान की पोल आवेगा जीनं को भाई सीतारे समंजेगा तुमारा कारन नहीं गटेगा तुम जंमपात्र से बाई के आ तुम रीजो हुवे श्री मुख दुबे पंचोली हडमं राय के संमत ११४३ वषे आसाड सुद १३

अर्थ।

श्री श्री पूर्वी हिन्दुस्तान के संभरी-नरेश महाराजाधिराज की राजधानी दिल्ली से श्री श्री महाराजाधिराज पृथ्वीराज की ओर से आचार्य्य ऋषीकेश वैद्यराज को दिया गया। हमने तुमको बाई श्री पृथा कुँवरि ( पृथ्वीराज की बहिन ) के साथ दायज में चित्तौर को दिया। तुम्हारा हक़ चहुवान के राज्य में साबित है। तुम्हारी औलाद का सपूत कपूत होगा जो चहुवान की पौर पर आवेगा वह भाई की भाँति माना जायगा। तुम्हारा मान नहीं घटेगा, तुम जमा खातिर से बाई के यहाँ रहो। पंचोली हनुमानराय द्वारा आज्ञा दी गई संवत् ११४३ वर्ष आषाढ़ सुदी १३। ( यहाँ अनन्द संवत् दिया है जिसमें ९० जोड़ देने से उचित संवत् मिल सकता है। )

ऐसे आज्ञापत्रों के अतिरिक्त इस समय के गद्य का कुछ भी पता नहीं लगता। पद्य में भी इस समय सिवा चन्दबरदाई के और

किसी की रचना हस्तगत नहीं होती यद्यपि चन्द की कविता देखने से विदित होता है कि इस देश में इस समय कविता की अच्छी चर्चा थी और राज दरबारों में राजकवि प्रायः रहा करते थे। काल की कराल गति से हम लोगों को सब से प्रथम जिस हिन्दी कवि की रचना उपलब्ध होती है वह चन्द ही है, यद्यपि रासो देखने से विदित होता है कि हिन्दी कविता उस समय प्रारम्भिक दशा में न थी वरन् वह अच्छी उन्नति कर चुकी थी। चन्दबरदाई के पीछे सबसे प्रथम उसका पुत्र जल्हन हुआ जिसने रासो के शेष भाग को समाप्त किया और चन्द के मरने के पीछे रासो को सुरक्षित रक्खा। जल्हन के पीछे संवत् १२०० के लगभग कुमार-पाल चरित्र नामक एक ग्रन्थ किसी कवि ने बनाया पर यह ग्रंथ अब अप्राप्य है। संवत् १३४४ में भूपति कवि ने भागवत दशमस्कंध भाषा बनाया पर इसकी रचना परम शिथिल है। संवत् १३५४ में नरपति नाल्ह कवि ने बीसलदेव रासो बनाया। इसकी कविता भूपति से कुछ उत्तम है पर यह भी अच्छी नहीं है। बीसलदेव पृथ्वीराज के एक पूर्व पुरुष और अजमेर के राजा थे। संवत् १३५७ के लगभग शारंगधरनामक एक कवि ने रणथम्भोर के हम्मीर देव के यहाँ शारंगधर पद्धति, हम्मीर काव्य और हम्मीर रासो नामक तीन ग्रन्थ बनाये। यह पहला कवि है जिसकी भाषा वर्तमान रचनाओं से मिलती है और उत्तम भी है। यथाः—

सिंह गमन सुपुरुष बचन कदलि फरै इक सार।
तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार॥

उर्दू और फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि अमीर .खुसरो का देहान्त संवत् १३८२ में हुआ। इनकी कविता उर्दू से मिलती हुई हिन्दी में होती थी और वह मनोहर भी है। प्रसिद्ध ग्रन्थ ख़ालक़बारी इन्हीं का बनाया हुआ है। संवत् १४०७ के लगभग प्रसिद्ध महात्मा गोरखनाथजी का कविता काल है। इन्होंने कितने ही संस्कृत के उत्तम ग्रन्थ बनाये और भाषा के तो बहुत से ग्रन्थ इस महात्मा ने भक्तिपक्ष में रचे। इनकी कविताशैली पुराने ढर्रे से बहुत मिलती है और इनकी रचना में छन्दोभंग भी देख पड़ते हैं। जान पड़ता है कि यह बात लेखकों की असावधानी से आ गई है नहीं तो संस्कृत का इतना बड़ा पंडित भद्दे छन्दोभंग कैसे कर सकता था। गोरख-नाथजी ही प्रथम कवि हैं जिनका एक गद्य ग्रन्थ भी प्रस्तुत है। वह ब्रज भाषा में है और उसकी रचना बड़ी ज़ोरदार और मनोहर है। चित्तौर के प्रसिद्ध महाराणा कुम्भकर्ण का राजत्व काल १४१९ से १४६९ तक है। इन्होंने हिन्दी की कविता की और कवियों का मान भी बहुत किया पर इनकी रचना अथवा इनके सन्मानित कवियों के नाम अब अप्राप्य हैं।

संवत् १४५३ में नारायण देव ने हरिचन्दपुराणकथा नामक ग्रन्थ बनाया। संवत् १४५७ प्रसिद्ध महात्मा महर्षि रामानन्द का समय है। इन्होंने कुछ कविता भी की थी। इनके शिष्य भवानन्द और सेननाई भी इसी समय हुये हैं। यह लोग भी कुछ कुछ कविता करते थे। संवत् १४७५ के लगभग रामानन्द के प्रसिद्ध शिष्य महात्मा कबीरदास का समय है। इन्होंने भी हिन्दी के बहुत

से ग्रन्थ बनाये हैं। इनकी भाषा वर्त्तमान हिन्दी से बहुत कुछ मिल जाती है और साहित्य की दृष्टि से भी वह परम प्रशंसनीय है। इनकी उल्टबाँसी पदों आदि में साधारण शब्दों द्वारा बहुत गूढ़ अर्थ बड़े ज़ोरदार छन्दों में निकाले गये हैं। न जाने किस कारण इनके पुत्र कमालजी इनके बिल्कुल प्रतिकूल सिद्धान्तों के अनुयायी थे। वह भी कविता करते थे। भगोदास, श्रुतगोपाल और धरम-दास कबीर के शिष्य थे। यह लोग भी इसी समय के लगभग रचना करते थे। इसी समय बिहार में विद्यापति ठाकुर नामक एक बड़ेही उत्तम कवि हो गये हैं। इन्होंने विशेषतया संस्कृत की रचना की है पर इनकी हिन्दी रचना बड़ी ही लोकप्रिय और सबल है। बिहार के कवि जैदेव और उमापति ने भी इसी समय छन्द रचे।

महात्मा नानक का जन्म संवत् १५२६ में हुआ और १५९६ में यह महात्मा पंचत्व को प्राप्त हुआ। ये महाराज सिक्ख मत के संस्थापक थे। इन्होंने ग्रन्थ साहब के अतिरिक्त अष्टांगयोग नामक एक और भी ग्रन्थ बनाया। महात्मा चरणदास ने १५३७ में ज्ञान-स्वरोदय आदि कई ग्रन्थ रचे पर यह संवत् संदिग्ध है। सेन कवि ने संवत् १५६० में रचना की है। इनकी कविता वर्त्तमान हिन्दी से बिल्कुल मिलती है। अतः हमारी हिन्दी चन्द कवि के समय से उन्नति करते करते सूरदास के समय के प्रथम ही प्रायः ३०० वर्षों में वर्त्तमान हिन्दी से बिल्कुल मिल गई। सेन कवि के साथ ही साथ कुतबन शेख़ ने मृगावती नामक एक मनोहर प्रेम-कहानी कही। इसकी रचनाशैली जायसी की भाँति है यद्यपि उसकी

समानता नहीं कर सकती। इधर संवत् १५३५ में महाप्रभु श्रीवल्ल-भाचार्य्यजी का जन्म हो चुका था जिन्होंने उत्तरी भारत में अलौकिक भक्ति का स्रोत बहाया। उधर बंगाल में महात्मा चैतन्य ने भक्ति की अटूट धारा प्रवाहित की। इस प्रकार समस्त उत्तरी भारत में इस समय भक्तिसमुद्र सा लहराने लगा। कविता के लिए तल्लीनता एक बहुत ही आवश्यक गुण है। यह तल्लीनता हमारे कवियों को भक्ति से प्राप्त हो गई। अब सम्भव था कि यह तल्लीनता कविता की ओर झुक पड़ती अथवा तपस्या की ओर झुक कर ज्ञान विज्ञान को जागृत करती अथवा कोरी तपस्याही की ओर लगती। तल्लीनता एक भारी बल है। यह जिस ओर लग जाती उसी ओर कुछ करके दिखला देती। हिन्दी के भाग्यवश महाप्रभु वल्लभाचार्य्यजी ने यह तल्लीनता कविता की ओर लगा दी और स्वयं भी कविता की और उनके पुत्र महाप्रभु विट्ठल स्वामी ने भी ऐसा ही किया। फिर क्या था! तल्लीनता ने भक्ति के सहारे पूर्ण विकास पाकर हिन्दी-साहित्य का भंडार भर दिया। संवत् १५४० में महात्मा सूरदास का जन्म हुआ। उन्होंने प्रायः १५६० से रचना आरम्भ की। उधर वल्लभ और विट्ठलजी के अन्य शिष्यों ने भी पदों की रचना में पूर्ण बल लगाया। इस प्रकार सैकड़ों कवियों ने इस समय परमोत्तम पद निर्म्माण किये। यह देख विट्ठलनाथजी ने चार अपने पिता के और चार अपने शिष्यों को परमोत्तम कवि समझ कर छाँट लिया और उस चुनी हुई कविसमिति का नाम अष्टछाप रक्खा। अष्टछाप में सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, नन्ददास और गोविन्ददास के

नाम थे। इस अष्टछाप में सूरदासजी तो अनुपम कवि थे ही पर नन्ददास भी परमोत्तम कवि थे। इनकी गणना पद्माकर की श्रेणी में हुई है। नन्ददासजी गोस्वामी तुलसीदासजी के भाई थे। नन्द-दास के अतिरिक्त अष्टछाप में कृष्णदास और परमानन्ददास भी सुकवि थे। इनकी गणना तोष कवि की श्रेणी में है। इसी समय महात्मा हरिदास, नरसैया आदि ने भी परमोत्तम कविता की है। सैार काल में चित्तौर की महारानी मीराबाई ने अति उत्तम कृष्ण कविता की है और कई ग्रंथ रचे हैं। इस स्त्री-रत्न के चरित्रों से सब छोटे बड़े अभिज्ञ हैं। कविशिरोमणि कृपाराम ने १५९८ में हिततरङ्गिनी नामक एक अलङ्कारों का बड़ा ही विशद दोहा-ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ के दोहे परम मनोहर हैं। संवत् १५७५ से १६०० तक मलिक मोहम्मद जायसी ने पद्मावत नामक एक परमोत्तम प्रेम-ग्रन्थ पूर्वी भाषा में बनाया। इनका अखरावट ग्रन्थ भी अच्छा है। इस प्रकार की ऐसी प्रेम-कथायें कि जिनसे अवतारों आदि से कोई सरोकार नहीं है, हिन्दी में पहले पहल मुसल्मान कवियों ही ने बनाईं। इनमें इस काल कतबन और जायसी का नाम आता है और आगे चल कर नूर मोहम्मद ने भी इन्द्रावती नामक एक ऐसा ही ग्रंथ रचा। हिन्दू कवियों ने ऐसे जितने ग्रंथ रचे उनमें धार्म्मिक विचार से देवताओं, अवतारों, पौराणिक कथाओं आदि का डोर नहीं छोड़ा। कतबन, जायसी और कृपाराम को छोड़ कर १५६० से प्रायः १६३० तक पदों के निर्म्माण का काल रहा और कृष्णानन्द ही में हमारे कविगण मग्न रहे। इसे हम सौर काल कह सकते हैं। इसमें उत्तम कविता बहुत बनी।

संवत् १६३० के पीछे १६८० पर्य्यन्त तुलसीदासजी का कविता-काल समझना चाहिये। इस समय में पद-निर्म्माणकों का वैसा प्राधान्य नहीं रहा और रामचरितमानस के साथ ही साथ विविध विषयों के वर्णन की परिपाटी पड़ने लगी। कृष्णानन्द की सच्ची भक्ति भी सौर काल के पीछे उस अधिकता से नहीं रही और अभक्त लोगों ने तुलसी काल से ही कुछ कुछ सर उठाया और भक्ति विचार को छोड़ कर श्रृंगार-सौन्दर्य्य के विचार से कृष्णचन्द्र को नायक बना कर नायकाओं की चेष्टाओं में ध्यान लगाना प्रारम्भ किया। महाकवि केशवदास ने इसी समय में रसिकप्रिया ग्रन्थ बनाया जिसमें उन्होंने सब रसों के उदाहरण श्रृंगार रस में ही दिये। तुलसी-काल में एक तुलसीदास का ही होना एक सेना भर के बराबर है। इस एक कवि ने ऐसी कविता की है जैसी कि चार पृथक् प्रकार के अति उत्तम कवि गण करते हैं। इनके विषय यहाँ कुछ अधिक लिखना अनावश्यक है क्योंकि इनका वृहत् वर्णन ग्रन्थ में मिलेगा। महाकवि केशवदास ने ही रीति-ग्रंथों की प्रणाली डाली। सौर काल में निपट निरंजन और नरोत्तम दास भी उत्तम कवि हुए और स्वयं सूरदास के पीछे गोस्वामी हित हरिवंश की कविता बहुत ही टकसाली होती थी। ये महाशय संस्कृत के कवि और एक मत के संस्थापक थे। भाषा में इन्होंने केवल ८४ पद बनाये हैं पर उन्हीं में इन्होंने क़लम तोड़ दी है। तुलसी काल में केशवदास के ज्येष्ठ बन्धु बलिभद्र मिश्र भी परमोत्तम कवि हो गये हैं। इन्होंने केवल एक नख-शिख बनाया है पर उसीसे ये आचार्य्य गिने जाते हैं। इनकी रचना बड़ी गम्भीर है। रहीम, नाभादास, रसखानि और मुबारक भी इस

काल में अच्छे कवि हो गये हैं। अकबर बादशाह भी इसी काल में हुए हैं। ये स्वयं कविता करते थे और इनके यहाँ कवियों का मान भी अच्छा था। बीरबल, गंग, टोडरमल, मानसिंह आदि सब अकबर के यहाँ हीं कविता करते थे और इनमें से कई उत्तम कवि थे। आईन अकबरी में लिखा है कि संवत् १६५४ के लगभग सूरदास अकबर के यहाँ गवैयों में थे पर यह सूरदास प्रसिद्ध सूरदास नहीं समझ पड़ते क्योंकि एक तो सौर-जीवनियों में इनका अकबर के यहाँ रहना नहीं वर्णित है और दूसरे सूरदास का १६२० के पीछे जीना अनुमान-सिद्ध नहीं है। तुलसी-काल में ही महात्मा बिट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथजी ने ८४ और २५२ वैष्णवों की वार्त्ता नामक दो प्रसिद्ध गद्य-ग्रंथ लिखे। महात्मा गोरखनाथ के पीछे हिन्दी में यही दो गद्य-ग्रंथ मिलते हैं। जैन कवि बनारसीदास तुलसी-काल में हुए हैं और घासीराम इसी समय का एक प्रसिद्ध कवि हो गया है।

महात्मा तुलसीदास के रामचरितमानस का प्रभाव भाषा-साहित्य पर बहुत बड़ा पड़ा और दोहा चौपाइयों में कथा-प्रासंगिक काव्य करने की प्रणाली सी पड़ गई। इसी समय से रामायण लिखने का ऐसा शौक़ बढ़ा कि सैकड़ों कवियों ने राम-यश गाया। केशवदास का भी प्रभाव कवि-समाज पर बहुत पड़ा।

गोस्वामीजी के पीछे थोड़े ही दिनों में पाँच बहुत बड़े कवि हुए अर्थात् सेनापति, बिहारी, भूषण, मतिराम, और लाल। सेनापति ने अनूठापन सब से अच्छा दिखलाया। इनका ग्रंथ संवत् १७०६ में

बना। बिहारी ने १७१९ में सत्सई समाप्त की। भूषण ने १७३० में शिवराजभूषण बनाया और इसी समय मतिराम ने भी रचना की। लाल कवि ने छत्रप्रकाश नामक छत्रसाल की जीवनी का एक बहुत ही उत्तम ग्रन्थ केवल दोहा चौपाइयों में बनाया। इनकी रचना बड़ो ही सबल और प्रशंसनीय है। इस ग्रन्थ में छत्रसाल का हाल प्रायः संवत् १७६५ तक का बड़ो ही कुशलतापूर्वक वर्णित है। देवजी का जन्म उसी संवत् ( १७३० ) में हुआ जिसमें कि शिवराजभूषण समाप्त हुआ, माना ईश्वर ने ऐसे उत्तम ग्रन्थ के पुरस्कार में ही ऐसा बढ़िया कवि संसार को दिया। देवजी का कविता-काल प्रायः १७९० पर्य्यन्त है। इस भूषण और देव वाले काल में उत्तम कवियों की संख्या बहुत बढ़ी और वीर काव्य का भी अच्छा निर्म्माण हुआ। जैसे कि सूरदास के समय में भक्ति का समुद्र उमड़ पड़ा था वैसे ही इस काल में शौर्य्य की ध्वजा ऊँची हुई। चिर विमर्दित हिन्दू राज्य का उत्थान और चिर-विजयी मुसल्मान बल का पतन इसी समय में हुआ। ऐसे अमूल्य समय में वीर काव्य का बाहुल्य स्वाभाविक ही था और वह हुआ भी पर इसी के साथ शृंगार काव्य ने अधिक बल प्राप्त किया और इसका भी सिक्का जम गया। शृंगार की ऐसी लोक-प्रियता बढ़ी कि सेनापति से ऋषि कवि ने भी शृंगार काव्य करने में कोई दोष न माना। इस समय जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह ने भाषाभूषण नामक दोहों में एक परमोत्तम अलंकार-ग्रन्थ बनाया जो अब भी जिज्ञासुओं के काम आता है। महाराज छत्रसाल ने इसी समय कवियों का परम प्रशंसनीय सम्मान किया। इनके यहाँ जाने आने

वालों में भूषण, नेवाज, हरिकेश और लाल परमोत्तम कवि थे। नेवाज ने संयोग शृंगार बहुत ही अच्छा कहा है और शेष तीन महाकवियों ने बड़ी ही सबल रचना की है। इनके अतिरिक्त सैकड़ों कवि छत्रसाल के यहां जाते थे और मान पाते थे। इस समय भाषा की अन्य उन्नतियों के साथ आचार्यों की भी अच्छी वृद्धि हुई। देव, भूषण, मतिराम, चिन्तामणि, श्रीपति, कवीन्द्र, सूरतिमिश्र, रसलीन, कुलपति आदि सब आचार्य्य थे और सब की रचना परम मनोहर होती थी। गोकुलनाथ, के पीछे सूरतिमिश्र ने ही गद्य में भी रचना की है। अतः इस समय तक गोरखनाथ, गोकुलनाथ, और सूरतिमिश्र ही गद्य के मुख्य लेखक थे। इनके अतिरिक्त देव आदि ने भी एकाध स्थान पर गद्य का उदाहरण देते हुए बचनिकायें लिखी हैं पर उनसे वे लोग गद्य-लेखक नहीं हो सकते। कालिदास, घनश्याम शुक्ल, आलम, शेख़, गंजन आदि प्रसिद्ध और परमोत्तम कवि इसी समय में हो गये हैं। कविता की उन्नति इस समय बहुत अधिक हुई पर उसमें भक्ति-हीन शृंगार की मात्रा भी बहुत बढ़ गई। सैार और तुलसी काल में अनुप्रास का उतना अधिक मान न था, पर इस काल में पद मैत्री का हिन्दी कविता पर प्रगाढ़ अधिकार हो गया। इस प्रकार भाषा श्रुतिमधुर और सुन्दर हो गई पर बहुत से कवियों ने शब्दाडम्बर के फेर में पड़ कर भाव का उतना ध्यान रखना छोड़ दिया। इसी समय सेनापति ने षट ऋतु पर पृथक् ग्रन्थ रच कर इस विषय पर पृथक् ग्रन्थ बनने की नीव डाली और देव कवि ने उसे और भी बढ़ा कर अष्टयाम नामक ग्रन्थ रचा जिसमें एक दिन के भी प्रति पहर और प्रति घड़ी

का वर्णन किया। रसभेद, भावभेद आदि पर ग्रन्थ बनने की प्रथा ने इस समय बहुत बल पाया और रीति-ग्रन्थों का प्रचार बढ़ा। ब्रजभाषा ने इस समय सर्वोत्कृष्ट उन्नति कर ली क्योंकि इसके पीछे इस प्रकार के कवि भाषा में न हुए। सौर काल के प्रथम हिन्दी का प्रचार तो बहुत दिनों से था पर न तो चन्द को छोड़ कर उसमें कोई बहुत अच्छा कवि हुआ और न गणना में कवियों की संख्या ही बहुत हुई। गणना की कमी बहुत दिनों के कारण कविता के लोप हो जाने से भी है पर वह कमी है अवश्य। कविता-लोप भी प्रायः शिथिल कवियों ही की होती है। सौर काल तथा तुलसी के काल में कवियों की संख्या एवं उत्तमता दोनों में एकाएकी बहुत बड़ी और सन्तोषदायक वृद्धि हुई और इस काल में जो ग्रन्थ बने उनमें से बहुत से हिन्दी क्या पृथ्वी की सभी भाषाओं के शृंगार कहे जा सकते हैं। इस समय के पीछे सेनापति, भूषण, और देव के समय में हिन्दुओं की सभी बातों में अच्छी उन्नति हुई यहाँ तक कि महाराष्ट्रों ने चिर-संस्थापित मुसल्मान-राज्य को ध्वस्त करके एक विशाल साम्राज्य बनाही लिया, यद्यपि काल की कुटिल चाल से वह भी चिरस्थायी न रह सका। इसी समय में बुंदेलखंड, बघेलखंड, राजपूताना, पंजाब आदि प्रायः सभी स्थानों में जातीयता जागृत हुई। इस जागृति की झलक कविता में भी भली भाँति देख पड़ती है और सब उन्नतियों के साथ साथ कविता ने भी अभूतपूर्व उन्नति की। यह उन्नति कवियों की संख्या और उत्तमता दोनों बातों में बहुत ही संतोष-जनक हुई। इस समय भारत में वीर पुरुष थे और वे वीर कविता का अच्छा मान भी स्वभावतः करते थे।

इस कारण से इस समय भाषा में वीर कविता का अच्छा समावेश हुआ, पर पीछे से कादरता की वृद्धि के कारण ये वीर ग्रन्थ जहाँ के तहाँ पड़े रहे और इनका अच्छा प्रचार न हो सका। इसका फल यह हुआ कि इनमें से बहुत से लुप्त हो गये और अब उनका पता तक नहीं लगता। अब धीरे धीरे हिन्दी-प्रेमी खोज खोज कर ये ग्रन्थ प्रकाशित करते जाते हैं। यही कारण है कि विविध विषयों के ग्रन्थ होते हुए भी हिन्दी में शृंगार रस की प्रधानता समझ पड़ती है।

देव कवि के पीछे यद्यपि प्रायः पचास वर्ष तक हिन्दू-बल और जातीयता की पूर्ण उन्नति रही, पर न जाने किस कारण दुर्भाग्य-वश हिन्दी ने उस महत्त्व का एक भी कवि न उत्पन्न किया जैसे कि देव, तुलसी, और सूर के समय अनेक हो गये। कवियों की संख्या में देवजी के पीछे और भी विशेष उन्नति हुई और उत्तम कवि भी बहुत हुए पर बहुत ही अच्छे कवियों का एक प्रकार से अभाव सा रहा। देव के पीछे हिन्दी में भिखारीदास तथा पद्माकर का समय आता है। देवजी के कुछ ही पीछे दास, रघुनाथ और दूलह नामक तीन बड़े प्रधान आचार्य और सुकवि हुए। दूलह अलंकार के आचार्य्य थे और दास दशांग कविता के। रघुनाथ ने अलंकार और नायका-भेद दोनों बहुत स्पष्ट कहे हैं। सूदन कवि ने इसी समय सुजानचरित्र नामक एक बड़ा मनोहर युद्ध-ग्रन्थ रचा और गोकुलनाथ, गोपीनाथ, तथा मणिदेव ने भाषाभारत रच कर हिन्दी का अमोघ उपकार किया। इन तीनों कवियों ने अन्य ग्रन्थ भी

उत्तम बनाये विशेषतया गोकुलनाथ ने। इनका समय संवत् १८८५ के लगभग है। रघुनाथ और दास का समय संवत् १८०० के इधर उधर है और दूलह का भी १८०२ के लगभग कविता-काल पड़ता है। सूदन का कविता-काल १८११ के इर्द गिर्द पड़ेगा, पद्माकर कवि ने १८८३ से ग्रन्थ-रचना की है। इन्होंने सात आठ ग्रन्थों में केवल जगद्विनोद श्रृंगार-ग्रन्थ बनाया है पर काल की गति से यही ग्रन्थ इनका लोकप्रिय हुआ। अमेठी के राजा गुरुदत्तसिंह ने भी इसी समय दोहाओं में परमोत्तम कविता की है। सोमनाथ, ठाकुर, शम्भुनाथ मिश्र, बैरीसाल, मनीराम मिश्र, बोधा, सीतल, रामचन्द्र पण्डित, मनियार, थान, बेनी, लल्लूलाल, दत्त, सदल मिश्र, बेनी प्रवीण, रामसहाय, प्रताप साहि आदि बहुत उत्तम कवि इस समय हुए हैं। यह समय संवत् १७९१ से १८८९ पर्य्यन्त का है। उपर्युक्त आचार्यों के अतिरिक्त सोमनाथ, बैरीसाल, मनीराम मिश्र, और प्रताप साहि भी इस समय अच्छे आचार्य्य हो गये हैं। ठाकुर और बोधा इस काल के प्रेमी कवि हैं। सीतल ने इसी समय पहले पहल खड़ी बोली में बहुत प्रशंसनीय कविता की है। यह महाकवि खड़ी बोली का संस्थापक कहा जा सकता है। इसी समय में लल्लूलाल और सदल मिश्र ने वर्त्तमान साधु भाषा के गद्य की नीव डाली। इनका समय संवत् १८६० था। इनके प्रथम गोरखनाथ, गोकुलनाथ, और सूरति मिश्र ने गद्य में ग्रन्थ रचे थे पर उनका गद्य ब्रज-भाषा में ही लिखा गया था। इस समय के उपर्युक्त दोनों कवियों ने खड़ी बोली के गद्य की नीव डाली जो भाषा-गद्य के लिए आज कल सर्वत्र प्रयोग की जाती है। इनके प्रथम भी कुछ लोगों ने खड़ी बोली में

गद्य-रचना की थी पर उनका प्रचार नहीं हुआ। अन्य सभी समयों से इस समय उत्तम कवि गणना में अधिक हुए पर न जाने क्यों इस काल का कोई भी कवि नवरत्न वाले कवियों की योग्यता को न पहुँचा।

लल्लूलाल तथा सदल मिश्र के पीछे राजा लक्ष्मणसिंह तथा राजा शिवप्रसाद अच्छे गद्य-लेखक हुए। इनमें प्रथम ने तो अधिकतर अनुवादों की रचना की और द्वितीय ने पाठशालाओं के निमित्त पाठ्य पुस्तकें विशेषतया बनाईं। इनके पीछे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र वर्त्तमान गद्य-प्रणाली के सुधारक और सुदृढ़ संस्थापक हुए। इन्होंने हिन्दी का इतना बड़ा उपकार किया कि इनके प्रोत्साहन और परिश्रम से सैकड़ों मनुष्य हिन्दी के उत्तम लेखक हो गये और काशी में हिन्दी की जड़ परम पुष्ट हो गई। हिन्दी में इस समय बहुत से ऐसे लेखक वर्त्तमान हैं जिन का गद्य स्वयं भारतेन्दु के गद्य से पूरी बराबरी करता है वरन् कहीं कहीं आगे भी निकल जाता है। इस स्थान पर हम वर्त्तमान गद्य-लेखकों के विषय कुछ लिखना आवश्यक नहीं समझते।

पद्माकर के पीछे देव काष्ठ जिह्वा, नवीन, पजनेस, सेवक, सरदार, कुमार मणिभट्ट, द्विजदेव, भौन, गदाधर भट्ट, औध, लछिराम, सहजराम, लेखराज, ललित और प्रतापनारायण मिश्र उत्तम कवि हुए। फिर भी यह अवश्य कहना पड़ता है कि यदि हरिश्चन्द्र को निकाल डालें तो रघुनाथ और पद्माकर के समय में जैसे उत्तम कवि हुए हैं उसके चतुर्थांश भी इस वर्त्तमान समय में नहीं हैं।

इससे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि अब कविता की अवनति हो रही है क्योंकि रघुनाथ और पद्माकर के समय में नवरत्न को निकाल डालने से सभी कालों के कवियों से अधिक और परमोत्तम कवि हुए हैं। आज कल भी बहुत से उत्तम कवि प्रस्तुत हैं पर यह भी कहना पड़ेगा कि वर्त्तमान काल गद्य का काल है और कम से कम थोड़े दिन अब पद्य के परमोत्तम कवि का होना दुर्लभ है। अब ऐसा समय आगया है कि प्राचीन प्रथा की पद्य-रचना भी धीरे धीरे उठती जाती है और भक्ति एवं प्रेम को छोड़ कर लोग पाश्चात्य प्रकार के विषयों पर पद्य-रचना अधिक पसन्द करते जाते हैं। यह बात उचित भी है। हिन्दी के भूतकाल वाले कवियों ने प्रधानतया धर्म्म, और शृंगार पर ही ध्यान रक्खा और इन विषयों पर उत्तम ग्रन्थ भी बहुत बन चुके। अब इन्हीं विषयों पर रचना करके एक तो भूत-काल वाले महाकवियों के सन्मुख यश प्राप्त करना दुस्तर है और दूसरे वही चर्वित चर्वण से कोई लाभ नहीं देख पड़ता। फिर यह समयानुकूल भी नहीं है। इन कारणों से पाश्चात्य प्रणाली से लाभ उठा कर भाषा में सामयिक कविता करके इसकी अधिकाधिक उन्नति करनी उचित है और यश प्राप्ति के लिए यही बुद्धिमत्ता की भी बात है।

सूर और तुलसी के समय तक भाषा में अनुप्रास का आदर तो था पर इस पर बहुत अधिक ध्यान नहीं रहता था। बिहारी-लाल तथा सेनापति ने इस पर विशेष ध्यान दिया, पर उधर मतिराम ने परमोत्तम भाषा लिख कर भी यमकादि का विशेष

मान नहीं किया। सो इस समय अनुप्रासपूरित कविता के विषय कुछ गड़बड़ सा था। इसी समय महाकवि देव का जन्म हुआ जिन्होंने पद मैत्री से परम प्रगाढ़ मित्रता रक्खी और उसका परमोत्तम प्रयोग किया। इसी समय से इसका सम्बन्ध भाषा-साहित्य से बहुत घनिष्ठ हो गया। पद्माकर ने तो इसे दोनों हाथों से अपनाया। पदमैत्री से इतना लाभ तो अवश्य है कि हिन्दी कविता के समान संसार में किसी भाषा की रचना ऐसी सौष्ठव और श्रुतिमधुर नहीं है। श्रुति-कटु का जितना बराव इस भाषा में है उतना किसी अन्य भाषा में नहीं है। पदमैत्री में इतना विचार अवश्य रखना चाहिए कि इसके लालच में भाव न बिगड़ने पावे और अनुचित शब्दों का प्रयोग न होने पावे। यदि ये दूषण बचाकर कोई पदमैत्री लावे तो वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

बहुत दिनों से थोड़े से कवियों का विचार तुकान्तहीन छन्द लिखने का है। आल्हा छन्द तुकान्तहीन होने पर भी परम ललित है। फिर भी अभी किसी को तुकान्तहीन छन्दों में कोई ग्रन्थ बनाने का साहस नहीं हुआ है। जिस दिन कोई उत्तम तुकान्तहीन ग्रन्थ बन जावेगा उसी दिन ऐसे छन्द भी चल जावेंगे।

इसी स्थान पर साहित्य का यह सूक्ष्म इतिहास समाप्त होता है। इसके पढ़ने से यह प्रकट होगा कि नवरत्न के कविगण कैसे कैसे समय में हुए और उनका प्रभाव साहित्य पर कैसा कैसा पड़ा। अब हम अधिक कुछ न कह कर यह क्षुद्र ग्रन्थ पाठकों की सेवा में अर्पित करते हैं। आशा है कि पाठक वृन्द इसे पसन्द कर

के हमारा श्रम सफल करेंगे। समालोचनायें अभी बहुत छोटी हैं। चाहिए कि विद्वान् पाठकगण एक एक कवि को लेकर बृहत् रूप से समालोचनाओं द्वारा हिन्दी-भंडार को भरें। यह ग्रन्थ इस ओर ध्यानाकर्षित करने को ही लिखा गया है। सहृदय पाठकों को यह न समझना चाहिए कि इन समालोचनाओं को हम लोगों ने नम्रता दिखलाने को छोटी एवं असन्तोषदायक कहा है। ये वास्तव में ऐसी हैं और विद्वानों के पूर्ण प्रयास बिना उत्तम और भारी आकार की समालोचनायें नहीं बन सकतीं। अकेले गोस्वामीजी आदि कवियों पर लेख सैकड़ों पृष्ठों के होने चाहिए।

लेखक—

गणेशबिहारी मिश्र,

श्यामबिहारी मिश्र,

शुकदेवबिहारी मिश्र।

तुलसीदास।

रामायन कर में लिये कविता कामिनि कन्त।
गंगा तट पर जात हैं तुलसी पूरन सन्त॥

# हिन्दी-नवरत्न

अर्थात्

## साहित्य के नव सर्वोत्तम कवि।

## गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी।

"आनन्दकानने ह्यस्मिन् तुलसीजङ्गमस्तरुः॥
कविता मञ्जरी यस्य राम-भ्रमरभूषिता* ॥ १ ॥"
"एक लहैं तप पुञ्जन के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं ॥ २ ॥"
"कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो ॥ ३ ॥"
"कविताकरता तीनि हैं तुलसी, केशव, सूर॥
कविता खेती इन लुनी सीला बिनत मँजूर ॥ ४ ॥"
"तुलसी गङ्ग दुवौ भये सुकविन के सरदार ॥ ५ ॥"
राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस विसेष पावा तिन नाहीं ॥६॥

---

* तुलसी जङ्गम तरु लसै आनँद कानन खेत।
कविता जाकी मञ्जरी राम-भ्रमर रस लेत॥

ऐसा कौन हिन्दी अक्षर का ज्ञान रखने वाला एवं "हिन्दी, हिन्दू, हिन्द" से कुछ भी सम्बन्ध रखने वाला हत-भाग्य पुरुष होगा जो महात्मा श्रीतुलसीदासजी महाराज के नाम, यश, एवं पीयूष-वर्षिणी कविता से थोड़ा बहुत भी परिचित न हो। आज हम इसी महर्षि-चूड़ामणि के पवित्र चरित्रों से अपनी मन्द लेखनी को पुनीत करने बैठे हैं। हिन्दी के अनेकानेक सुलेखकों ने समय समय पर इस महात्मा-विषयक गवेषणा में जितना श्रम किया है उतना शायद ही हिन्दी अथवा संस्कृत के किसी भी कवि पर किया गया हो। हमारी समझ में तो वेद भगवान् एवं श्रीमद्भगवद्गीता को छोड़ और किसी भी हिन्दू-ग्रन्थ पर इतना समय लोगों ने न व्यय किया होगा।

गोस्वामीजी का जन्म राजापुर, तहसील परगना मऊ, ज़िला बाँदा में संवत् १५८९ में हुआ था। राजापुर एक अच्छा क़स्बा है जो श्रीयमुनाजी के किनारे करवी रेलवे स्टेशन ( जी—आई—पी ) से १९ मील पर बसा है। यहाँ तुलसीदासजी की कुटी अब तक वर्तमान है जो गोस्वामीजी के शिष्य गणपतिजी के उत्तराधिकारी ब्रजलाल चौधरी के आधिपत्य में है और जहाँ अँगरेज़ों ने महात्माजी की स्मारकस्वरूप संगमरमर की एक तख़्ती लगा दी है। राजापुर में डाकघर भी है और करवी से वहाँ तक एक अच्छी कच्ची सड़क लगी है।

इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। स्वयं इनका नाम रामबोला था परन्तु वैरागी होने पर इनका

नाम तुलसीदास हुआ। इनका जन्म अभुक्त मूल में हुआ था। जान पड़ता है कि इनके माता पिता इनकी बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हो गये थे और ये दाने दाने को 'बिललाते' फिरते थे (देखिए "बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन जानत हो चारि फल चारि ही चनक को"। कवितावली) कुछ लोग समझते हैं कि इनके माता पिता ने इन्हें छोड़ दिया था पर यह बात ठीक नहीं। अवश्य ही अपनी कविता में इन्होंने ठौर ठौर अपना मातु-पितु द्वारा "तजा" जाना लिखा है पर इससे उनके शीघ्र ही "स्वर्गवासी" होने का तात्पर्य्य है। कहते हैं कि इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था जिससे इनके तारक नाम एक पुत्र भी हुआ पर वह बचपन में ही स्वर्गवासी हुआ। यह भी सुना जाता है कि गोस्वामीजी अपनी स्त्री पर बड़ा ही प्रेम रखते थे और उसके नैहर जाने पर एक बार वहीं जा पहुँचे। इस पर स्त्री ने कहा कि यदि आप इतना प्रेम परमेश्वर से करते तो न जानें क्या फल होता। तब तो तुलसीदासजी की आँखें खुल गईं और वे घर छोड़ चल दिये और वैरागी हो गये। इस कथा का उल्लेख प्रियादासजी ने भक्तमाल की टीका में किया है। कहा जाता है कि साधु होने पर एक बार अपनी स्त्री से इनका दैवात् साक्षात्कार हो गया पर इस अवसर पर जो दोनों में दोहावों द्वारा बात चीत होना कहा गया है वह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता।

•

घर से निकल गोस्वामीजी श्रीस्वामी रामानन्दजी महाराज के शिष्य महात्मा नरहरिदासजी के मन्त्र-शिष्य हो गये। इस समय

इनकी अवस्था प्रायः २५ वर्ष की होगी क्योंकि बहुत दरिद्री होने के कारण इनका शीघ्र विवाह होना अनुमानसिद्ध नहीं और इनके एक ही लड़का तब तक हुआ था। इन्होंने रामायण में लिखा है कि:—

"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकर खेत।
समुझि नहीं तस बालपन तब अति रह्यों अचेत" ॥

तदपि कही गुरु बारहि बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥

इससे जान पड़ता है कि उस समय इनकी अवस्था केवल दस बारह वर्ष की होगी। जान पड़ता है कि वैराग्य ग्रहण करने के पूर्व गोस्वामीजी नरहरिदासजी से विद्या भी पढ़ते थे और उसी समय इन्होंने उनसे कथा सुनी थी। पीछे से वैरागी होने पर गोस्वामीजी ने उन्हीं को अपना दीक्षा-गुरु भी कर लिया। ऐसा न मानने से प्रियादासजी का विवाह-सम्बन्धी कथन अप्रमाण मानना पड़ेगा जो नहीं माना जा सकता, क्योंकि एक तो उसके प्रतिकूल कोई भी माननीय प्रमाण नहीं है, दूसरे गोस्वामीजी के विवाह होने की कथा बहुत ही प्रचलित है और तीसरे प्रियादासजी के गुरु नाभादासजी गोस्वामीजी के मित्र थे और मिलने वाले थे और उन्हीं की आज्ञा से प्रियादास ने उन्हीं के भक्तमाल की टीका की है जिसमें गोस्वामीजी के विवाह का हाल वर्णित है। अतः बिना किसी दृढ़ प्रमाण के यह नहीं कहा जा सकता कि प्रियादासजी का कथन मानने योग्य नहीं है। गोस्वामीजी ने लिखा है कि:—

पूछ्यो ज्योंही कह्यो मैं हूँ चेरो ह्वै हौं रावरो जू
मेरे कोऊ कहूँ नाहीं चरन गहत हौं।
लोग कहैं पोच सो न सोच न सँकोच मेरे
ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं॥

इस कथन के आधार पर कुछ लोग विचार करते हैं कि इनका विवाह नहीं हुआ था। हमारी समझ में इनका यह कहना कि मेरे कोई भी नहीं है, कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं है क्योंकि इनकी स्त्री इनके चित्त में अपनी ओर से विरक्ति उत्पन्न करा के एक प्रकार से इनसे सम्बन्ध छोड़ ही चुकी थी और इनके कोई दूसरा सम्बन्धी न था। इनके इस कथन से कि मैं ब्याह नहीं चाहता हूँ, इनके विवाह होने के प्रतिकूल कोई भी अनुमान नहीं हो सकता।

गृह-त्याग के पीछे गोस्वामीजी प्रायः तीर्थ स्थानों में रहते रहे। ये महाशय मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथ-पुरी, शूकरक्षेत्र ( सोरों ) आदि स्थानों में जाया आया करते थे और अयोध्या में अधिक रहते थे, परन्तु इनका मुख्य वासस्थान काशी था जहाँ इनके स्मारक बहुत से स्थानों में अब तक वर्तमान हैं। इनमें से निम्न चार प्रसिद्ध हैं:—

( १ ) अस्सी पर गोस्वामीजी का घाट। यहाँ इनके स्थापित हनुमान्‌जी और इनकी गुफा है। यहीं ये विशेषतया रहते थे और इसी स्थान पर इनका शरीरपात भी हुआ।

( २ ) गोपाल मन्दिर। यहाँ श्रीमुकुन्दरायजी के बाग़ में इनकी एक कोठरी है जिसमें इनकी बैठक थी। यह स्थान विन्दुमाधवजी के समीप है।

( ३ ) प्रह्लादघाट।

( ४ ) संकटमोचन हनुमान नगवा के समीप अस्सी के नाले पर इन्हीं महाशय के स्थापित किये हुए अब तक वर्तमान हैं। सम्भवतः इन्हीं की प्रशंसा में संकटमोचन ग्रन्थ बना है।

गोस्वामीजी पहले हनुमान-फाटक पर रहते थे, फिर मुसल्मानों के उपद्रव के कारण गोपाल-मन्दिर में आये, और वहाँ बल्लभीय गोसाइयों से विरोध हो जाने से ये अस्सीघाट पर रहने लगे। अस्सी पर गोस्वामीजी ने अपनी रामायण के अनुसार रामलीला करनी आरम्भ कर दी थी जो वहाँ अब तक होती है। यह लीला काशी की सब लीलाओं से पुरानी है। ये महाशय कृष्णलीला भी कराते थे, और इनके घाट पर कार्तिक कृष्ण ५ को अब तक काली-दमनलीला होती है।

बनारस के एक खत्री टोडरमल ( प्रसिद्ध मन्त्री टोडरमल नहीं ) ख़ानख़ाना, महाराजा मानसिंह, मधुसूदन सरस्वती और नाभादासजी से इनकी मित्रता थी, और अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी इनके भाई थे। टोडरमल के कुटुम्बियों में कुछ झगड़ा हुआ था जिसमें गोस्वामीजी पञ्च नियत हुए थे। इसका फ़ैसल-नामा स्वयम् इनके हाथ का लिखा महाराजा बनारस के यहाँ अब तक रक्षित है। एक बार एक ब्राह्मण को हत्या लगी थी और वह

बहुत दीनतापूर्वक राम राम करता हुआ अपनी हत्या निवृत्ति की प्रार्थना करता फिरता था। इनको राम नाम उसके मुँह से सुन कर इतना प्रेम उत्पन्न हुआ कि इन्होंने उसे अपने साथ भोजन करा लिया जिससे उसकी हत्या छूट गई और वह पवित्र माना जाने लगा। गोस्वामीजी से एक बार मलूकदास भी मिले थे। अवध देश के मुक्तामणिदासजी की कविता को इन महाशय ने बहुत पसन्द किया था। ये महाशय एक बार लखनऊ भी आये थे, और वहाँ से चल कर कुछ दिन मलिहाबाद में रहे। कहते हैं कि वहीं एक भाट को इन्होंने अपने हाथ से एक रामायण लिख दी थी, जो वहाँ के महन्त जनार्दनदासजी के पास अद्यावधि वर्तमान है। इस पुस्तक को एक बार लगभग आध घण्टे तक हमने भी देखा परन्तु हमको इसके गोस्वामीजी के लिखित होने में सन्देह है। इनकी लिखी हुई अयोध्या-काण्ड अब तक राजापुर में गोस्वामीजी की कुटी पर वर्तमान है। उसके अक्षरों का फ़ोटो हमने देखा है। इन अक्षरों से मलिहा-बाद वाली पुस्तक के अक्षर नहीं मिलते और केवल आधही घण्टा में ढूँढ़ने पर हमें उसमें गङ्गा-उत्पत्ति की कथा वाला क्षेपक भी मिला। पण्डित महादेवप्रसाद त्रिपाठी ने अपने भक्तविलास में गोस्वामीजी का जो वर्णन किया है उसमें यह लिखा है कि गोस्वामीजी की सूरदासजी से भेट हुई थी। गोस्वामीजी को अन्त में कुछ दिन वायुरोग से पीड़ित रहना पड़ा था जिससे ये बहुत दुःखित हुए। इसी क्लेश में इन्होंने हनुमानबाहुक की रचना की थी। इस में ४४ छन्द हैं और इसके देखने से ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी

को कई मास पर्यन्त बाई से बहुत ही क्लेश रहा था। दोहावली में भी इस पीड़ा का वर्णन तीन दोहों में है। यह पीड़ा इनके दक्षिण बाहुमूल में थी। इसका वर्णन इन्होंने इस तरह किया है:—

"बात तरु मूल बाहुशूल कपि कछु बेली उपजी सकेलि कपि खेलही उखारिए"।

"आलस अनख परी हास की सिखावन है एते दिन रही पीर तुलसी के बाहु की"।

"आपने ही पाप ते त्रिताप ते कि शापते बढ़ी है बाहुबेदन न नेकु सहि जाति है। औषधि अनेक यन्त्र मन्त्र टोटकादि किये बादि भये देवतामनाये अधिकाति है॥ करतार भरतार हरतार कर्मकाल को है जग जाल जो न मानत इताति है। चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कह्यो रामदूत ढील तेरी बार मोंहि पीरते पिराति है।"

"अभिभूत वेदन बिखम होत भूतनाथ तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हों। मारिये तो अनायास काशी बास खास फल ज्याइए तो कृपा करि निरुज शरीर हों।"

"तुलसी तनु सर सुख जलज भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिए कपि केसरी किसोर"॥

जान पड़ता है कि इसके पीछे इनकी पीड़ा कुछ शान्त हो गई थी क्योंकि ये लिखते हैं:—

'"खाये हुते तुलसी कुरोग राँड़ राकसिनि केसरी-किसोर राखे बोर बरियाई है"। परन्तु फिर भी उससे इनकी पूर्ण निवृत्ति

नहीं हुई क्योंकि इसके पश्चात् के नौ छन्दों में फिर भी रोग से मुक्त होने की प्रार्थना की है। इन महाशय का अन्तिम दोहा यह है:—

राम नाम जस बरनि कै भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए अबहीं तुलसी सोन॥

इनकी मृत्यु के विषय में निम्न लिखित दोहा प्रसिद्ध है:—

सम्वत सोरह सै असी असी गङ्ग के तीर।
सावन सुकुला सत्तिमी तुलसी तज्यो सरीर॥

गोस्वामीजी के कुल-विषयक पण्डितों में मत-भेद है। किसी ने इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण और किसी ने सरयूपारीण माना है। राजा प्रतापसिंह ने भक्तकल्पद्रुम में इनको कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा है, परन्तु शिवसिंहसरोज में बेनीमाधवदास लिखित जीवनचरित्र के आधार पर इन्हें सरयूपारीण ब्राह्मण माना गया है। रामायण के प्रसिद्ध टीकाकार एवम् प्रेमी पण्डित रामगुलाम द्विवेदी ने भी इन्हें सरवरिया ही माना है, और उन्हीं के आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन ने भी इनको सरवरिया लिखा है। इनको सरयूपारीण मानने में दो आपत्तियां हैं। एक यह कि पूरा ज़िला बांदा और राजापुर के इर्द गिर्द कान्यकुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है न कि सरवरिया ब्राह्मणों की; सो यदि गोस्वामीजी द्विवेदी थे तो उनका कान्यकुब्ज होना विशेष माननीय है; दूसरे इनका विवाह पाठकों के यहां हुआ था जिनका कुल सरवरिया ब्राह्मणों में बहुत ऊँचा है और द्विवेदियों का उनसे नीचा; सो पाठकों की कन्या द्विवेदियों के

यहाँ नहीं ब्याही जा सकती क्योंकि कोई भी उच्च-वंशवाला मनुष्य अपनी कन्या नीच कुल में नहीं ब्याहता। कनौजियों में पाठकों का घराना द्विवेदियों से नीचा है। अतः पाठकों की लड़कियां द्विवेदियों के यहाँ ब्याह जाना उचित है। सुतराम् हम गोस्वामीजी को भक्त-कल्पद्रुम के लेखानुसार कान्यकुब्ज ब्राह्मण मानते हैं।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त बहुतसी अन्य साधारण एवम् आश्चर्यमयी घटनायें गोस्वामीजी के माहात्म्य-विषयक तथा अन्य प्रकार की बातें इंडियन प्रेस में छपी हुई रामायण के गोसाईंजी के जीवनचरित्र में विद्वान् सम्पादकों ने लिखी हैं जो उन पर विश्वास करने वाले या गोस्वामीजी के सविस्तर जीवन-वृत्तान्त जानने की इच्छा रखने वालों को पढ़ने योग्य हैं। इस लेख के लिखने में हमें उपर्युक्त लेख से गोस्वामीजी के जीवन चरित्र लिखने में सहायता मिली है।

गोस्वामीजी ने अपने विषय में बहुत कम बातें लिखी हैं। अतः उनकी जीवनी लिखने में बाह्य प्रमाणों की विशेष आवश्यकता रहती है। इनमें से निम्न लिखित प्रधान हैं:—

(१) बेनीमाधवदास कृत गोसांई चरित्र जिस का नाम शिवसिंहसरोज में लिखा है। शिवसिंहजी लिखते हैं कि उन्होंने उसको देखा है और उसमें बड़े विस्तार के साथ जीवन चरित्र वर्णित है। यह ग्रन्थ हम को शिवसिंहजी के पुस्तकालय में नहीं मिला और न अब इसका कहीं पता लगता है।

(२) नाभादास कृत भक्तमाल जो संवत् १६४२ से १६८० तक किसी समय बना है। इसमें गोस्वामीजी के विषय में १ छप्पै

दी है परन्तु उनके शिष्य प्रियादासजी ने संवत् १७६९ में भक्तमाल की टीका बनाई है जिसमें ११ कवित्तों द्वारा गोस्वामीजी का हाल वर्णन किया गया है।

(३) इन्हीं के आधार पर राजा प्रतापसिंह ने भक्तकल्पद्रुम और महाराजा रघुराजसिंह ने रामरसिकावली में भी गोस्वामीजी का चरित्र वर्णन किया है, और पण्डित महादेवप्रसाद त्रिपाठी ने भक्तविलास में भी इन महाशय का कुछ चरित्र लिखा है।

(४) डाक्टर ग्रियर्सन ने भी उपर्युक्त प्रमाणों को जाँच कर और गोस्वामीजी विषयक कहावतें एकत्र करके इनका चरित्र लिखा है।

(५) पण्डित रामगुलाम द्विवेदी एवम् पण्डित बन्दन पाठक ने भी गोस्वामीजी के ग्रन्थों पर बहुत ही सराहनीय श्रम किया है और जीवनचरित्र के अतिरिक्त इन महात्माओं ने गोस्वामीजी के ग्रन्थों पर तिलक भी किये हैं। छक्कनलालजी का श्रम भी इस विषय में सराहनीय है।

(६) वर्तमान काल में भी रामचरणदास, ज्वालाप्रसाद मिश्र, बैजनाथ कुर्मी एवम् सुखदेवलाल कायस्थ ने इनके ग्रन्थों पर उत्तम टीकायें लिखी हैं।

(७) सबसे पहले खड्गविलास प्रेस के स्वामी बाबू रामदीन-सिंह ने रामायण की परम शुद्ध प्रति एक उत्तम भूमिका के सहित प्रकाशित की थी और फिर इंडियन प्रेस प्रयाग के स्वामी बाबू चिन्ता-मणि घोष ने बड़े श्रम और व्यय से रामायण की एक अतीव शुद्ध

सचित्र प्रति संवत् १९५९ में प्रकाशित की। इसमें बहुत से प्राचीन प्रतियों से मिला कर शुद्ध पाठ लिखा गया है और महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी, बाबू राधाकृष्णदास, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू कार्तिकप्रसाद और बाबू अमीरसिंह ने इसको सम्पादित किया है इसमें ९३ पृष्ठ की उत्तम भूमिका दी गई है। इन्होंने इस रामायण के कठिन शब्दों की टिप्पणी भी दी है और जो कथायें कि रामायण में उदाहरणस्वरूप लिखी गई हैं उनका भी संक्षेप से वर्णन कर दिया है। ये दोनों प्रतियाँ रामायण की प्रशंसनीय हैं।

इनके अतिरिक्त गोस्वामीजी ने भी प्रसङ्गवश कहीं कहीं कुछ बातें अपने विषय में लिख दी हैं। इससे यह भी विदित होता है कि किसी समय लोग गोस्वामीजी से बहुत चिढ़ते थे और उन्हें बुरा समझते थे। यह बात इनके छः ग्रन्थों में कई जगह झलकती है। परन्तु यहाँ केवल एक छन्द दिया जाता है।

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी से बेटा न ब्याहब काहू कि जाति बिगारन सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को जाको रुचै सु कहै कछु ओऊ।
माँगि के खैबो मसीद को सोयबो लैबे को एक न देबे को दोऊ॥

इसमें गोसाईं जी स्पष्ट कहते हैं कि उनको चहै कोई कुछ भी कहै उनको किसी की बेटी से अपना बेटा नहीं ब्याहना है कि जिससे उसकी जाति बिगड़ेगी। वे चाहे मसजिद ही में क्यों न सोवैं किसी का इससे क्या! उनसे किसी से लेना एक न देना दो। पीछे से यह भी लिखा है कि उनका मान लोग ऋषियों के समान

करने लगे थे। कवितावली में इन्होंने प्रचण्ड महामारी का भी वर्णन किया है। इसीसे कुछ लोगों का विचार है कि गोस्वामीजी की बाहुपीड़ा भी महामारी का चिह्न है और इनका शरीरपात इसी रोग में हुआ, परन्तु रोग-पीड़ा का जैसा वर्णन इन्होंने महामारी वालों का किया है वैसा अपना नहीं किया। फिर इनकी बाहुपीड़ा कई मास या साल तक रही थी जैसा कि महामारी में नहीं होता।

ये महाशय स्मार्त वैष्णव थे। इन्होंने रामायण में लिखा है कि संवत् १६३१ के—

नवमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

किन्तु इस मङ्गलवार को उदयकाल में रामनौमी न थी वरन् मध्याह्नव्यापिनी थी; अतः स्मार्त वैष्णवों ही के मतानुसार उस दिन नवमी माननीय थी और शेष वैष्णवों के मत से रामनवमी बुध को थी।

गोस्वामीजी के नाम से निम्न लिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

( १ ) रामचरित मानस ( रामायण दोहा, चौपाई )

( २ ) कवितावली रामायण

( ३ ) गीतावली रामायण

( ४ ) छन्दावली रामायण

( ५ ) बरवै रामायण

( ६ ) पद्यावली रामायण

( ७ ) कुण्डलिया रामायण

( ८ ) छप्पय रामायण

( ९ ) कड़खा रामायण

(१०) रोला रामायण

(११) झूलना रामायण

(१२) रामाज्ञा

(१३) रामलला नहछू

(१४) जानकीमङ्गल

(१५) पार्वतीमङ्गल

(१६) कृष्णगीतावली

(१७) हनुमानबाहुक

(१८) सङ्कटमोचन

(१९) हनुमानचालीसा

(२०) रामसलाका

(२१) रामसतसई

(२२) वैराग्यसन्दीपिनी

(२३) विनयपत्रिका

(२४) कलिधर्माधर्मनिरूपण

(२५) दोहावली

रामचरितमानस में पीछे के कवियों ने स्थान स्थान पर नई कथायें लगा दी हैं जिनको अब क्षेपक कहते हैं। ये कविगण ऐसे परोपकारी थे कि इन्होंने अपना नाम तक नहीं लिखा और केवल यही इच्छा की कि इनकी कविता गोस्वामीजी के साहित्य में मिल जावे। कुछ क्षेपककारों ने रामायण में कथा की न्यूनता समझ कर

वह त्रुटि पूरी करने को अपनी ओर से उतनी कथा मिला कर लगा दी और कुछ महाशयों ने यह दिखलाने को कि वे भी गोस्वामीजी के समान काव्य कर सकते थे बहसा बहसी में नई कथा बना कर रामायण में चिपका दी। केवल बाल और लङ्का काण्डों पर क्षेपक-कारों ने विशेष अनुग्रह किया है। अयोध्याकाण्ड में किसी को क्षेपक लगाने का साहस भी नहीं हुआ। इनमें से रामसेना-वर्णन तथा महिरावण-बध सर्वोत्तम हैं और गङ्गोत्पत्ति एवं सुलोचना-सती-वर्णन भी अच्छा है। ये क्षेपक गोस्वामीजी की रामायण में ऐसे लग गये हैं कि प्रायः रामलीलाओं में वे भी खेली जाती हैं। फिर भी कहना ही पड़ता है कि मूल कथा के बीच में ये वैसी ही अखर जाती हैं जैसे हलुवा खाने में कङ्कड़ का टुकड़ा जान पड़े। उपर्युक्त दोनों प्रतियों में क्षेपक न होने के कारण से भी हम उन्हें उत्तम समझते हैं। गोस्वामीजी ने अपनी रामायण कबड़िया का गल्ला तो बनाया ही नहीं है कि उसमें जो छोड़ दो वह बैठ जावे। उन्होंने पूरा ग्रन्थ बनाने में उसके अंग प्रत्यङ्गों को अपने ग्रन्थ की गुरुतानुसार यथा योग्य छोटा और बड़ा बनाया है, अतः जिस किसी स्थान पर कोई अंग बढ़ या घट जायगा उसी जगह ग्रन्थ का रूप बिगड़ जावेगा। लोग यह समझ बैठे कि जब किसी कथा का वाल्मीकिजी अथवा व्यासजी ने उल्लेख किया तो गोस्वामीजी ने उसे न लिखने में ग़लती की। कम से कम उसे उस स्थान पर लिख देने में कोई दोष नहीं। परन्तु जिस आकार और प्रकार का ग्रन्थ वे महात्मा बनाते थे उसमें वे कथायें लिखी जा सकती थीं, परन्तु गोस्वामीजी की रचना में वे स्थान नहीं पा सकतीं। कुछ क्षेपकों का उल्लेख यहाँ किया जाता है:—

# बाल-काण्ड

( १ ) रावण-दुर्दशा तीन पृष्ठ की है। इसमें जहाँ गोस्वामीजी ने रावण के विजयों का वर्णन किया है वहाँ क्षेपककार ने उसमें त्रुटि समझ कर कई युद्धों में उसकी पूरी दुर्दशा कर डाली, यहाँ तक कि एक वृद्धा ने रावण का पैर पकड़ कर "गई दूरि धरि धरि झकझोरा। डारेसि सिन्धु मध्य अति जोरा"। गोस्वामीजी का यह प्रयोजन था कि रावण का महत्त्व और उसकी ज़बरदस्ती दिखा कर रामावतार का कारण प्रस्तुत करते परन्तु इस कवि ने उससे शुद्ध प्रतिकूलता करके अपनी समझदारी तथा कवित्व शक्ति दिखा दी। यदि रावण ऐसा निर्बल था तो उसके लिए रामावतार की क्या आवश्यकता थी ? इसकी कविता उत्तम है।

( २ ) गङ्गावतरण ( ८ पृष्ठ ) बुरा नहीं है परन्तु गोस्वामीजी राम को जल्दी से जनकपुर पहुँचानेवाले थे और इसी से वे अहि-ल्यादिक की कथाओं को छोड़ते गये हैं तो भी इस कवि ने उस जल्दी पर ध्यान न देकर बीच में यह राग अलाप दिया।

# लंका-काण्ड

( ३ ) राम-सेना का वर्णन ( ४ पृष्ठ ) उत्तमोत्तम भाषा में लिखा गया है और इसमें पूरी कविता है। इसमें अद्वितीय ज़ोर देख

पड़ता है और सभी बातें उत्तम कविता की वर्त्तमान हैं। इस महा-कवि ने क्याही उत्तम उत्तम उपमायें दी हैं। इस क्षेपक में कोई भी दोष नहीं है केवल इसका रावण से कहा जाना मात्र अयोग्य है। यदि यह रामायण में मिला दिया जावे तो उसकी छवि बढ़ा देवें। गोस्वामीजी ने सेना वर्णन-कहीं नहीं किया है सो इसके बढ़ा देने से कोई भी दोष नहीं है। उदाहरण—

यह जो आवत अचल समाना।
चौदह ताड़ ऊँच परमाना॥
रक्त कमल दल सम सब देहा।
जनु बिकस्यो सन्ध्या कर मेहा॥
हतै मेदिनी पूँछ भवाँई।
लंका सोंह चितव जनु खाई॥
हृदय गगन यहि के प्रभु भानू।
पंच पदुम कपि निकर पयानू॥
करै बज्र बासव कर भंगा।
उदयाचल कहँ लेइ उछंगा॥
पावँ धराधरि चापै पन्नग होय अकाज।
सैन अग्रसर देखहु यह अंगद युवराज॥

(४) सुलोचना-सती (१२ पृष्ठ) की भाषा अच्छी है परन्तु रावण इतना अपमान कभी न सहता कि उसकी पुत्रवधू राम से मेघनाद का शीस माँगने जाती। कथा की द्रुत गति को यह क्षेपक रोकता है। गोस्वामीजी ने केवल मेघनाद और कुम्भकर्ण का सूक्ष्म

युद्ध कह कर रावण के युद्ध में विस्तार किया है और उसीको सर्वोत्कृष्ट कहा है। तब मेघनाद की स्त्री को स्वयं मेघनाद से अधिक स्थान नहीं मिल सकता।

( ५ ) महिरावण-वध (८ पृष्ठ) कुछ कुछ उत्तम भाषा में लिखा गया है और कवि ने तुलसीदासजी की रचना शैली के अनुकरण करने में सफलता भी पाई है, परन्तु हनुमानजी के लंगूर कोट का पता न तुलसीदासजी में है और न वाल्मीकीय में। फिर जब महिरावण राम-लक्ष्मण को लाते समय लंगूर को कूद कर निकल जा सकता था तो कोट के अंदर जाने में उसको विभीषण का वेष बनाने की क्या आवश्यकता थी? इसका कारण नहीं जान पड़ता कि राम-लक्ष्मण इतने शक्तिहीन क्यों होगये थे कि उनसे हाथ पावँ भी नहीं डुलाया जाता था और बिना हनुमान की सहायता के उनका उद्धार होना ही असम्भव था। गोस्वामीजी प्रति दिन युद्ध की भीषणता को बढ़ाते गये हैं यहाँ तक कि रावण-बध का वर्णन सर्वोच्च कक्षा का है। महिरावण युद्ध के शिथिल होने से इसका क्रम भंग हो जाता है। इन बातों को छोड़ देने पर यह वर्णन उत्तम है।

( ६ ) नरांतक के बध ( ३५ पृष्ठ ) से भी उपर्युक्त युद्ध का क्रम बिगड़ता है। यह कथा परम मनोहर है परन्तु इसको इस रामायण में स्थान मिलना अनुचित है।

गोस्वामीजी के उपर्युक्त पचीस ग्रन्थों में बहुत से दूसरे लोगों के बनाये हुए हैं जिन्होंने भी क्षेपककारों की भाँति अपने ग्रन्थ का

प्रचार होने के कारण या गोस्वामीजी के समान कवित्व शक्ति का परिचय देने ही के अर्थ उनकी रचना तुलसीदासजी के नाम से की है। ठाकुर शिवसिंहजी ने लिखा है कि गोस्वामीजी ने ४९ कांड रामायण बनाई है और यही बात जन-समुदाय में भी प्रसिद्ध है, परन्तु उपर्युक्त सूची में ११ रामायणों के नाम दिये हैं जिससे उनके ७७ कांड हो जाते हैं अतः इनमें से चार अवश्य अन्य लोगों के रचित हैं, परन्तु हमें अन्य रामायणों के विषय में भी क्षेपक होने का पूरा संदेह है। यदि केवल चार ही को कल्पित मानें तो कड़खा, कुंडलिया, छप्पै, और बरवै रामायण को कल्पित मानना योग्य है, क्योंकि इनमें गोस्वामीजी के काव्य के कोई भी गुण नहीं पाये जाते और इनकी रचना परम शिथिल है। कड़खा रामायण का तो थोड़े ही दिनों से नाम सुन पड़ा है। गोस्वामीजी ने रामचरित-मानस में प्रसंगवशतः बहुत बार राम-कथा सूक्ष्मतया वर्णन की है। इन सूक्ष्म वर्णनों से विदित हो जाता है कि वे किस विषय को कितना ज़रूरी समझते थे। उन्होंने इतने बड़े मानस में भी लव-कुश-चरित्र या सीता-त्याग का वर्णन कहीं भी नहीं किया है और भरत की भक्ति तथा अन्य लोगों की भक्ति के वर्णन को प्रधानता दी है। इस दृष्टि से देखने पर इनकी बहुत सी रामायणें कल्पित जान पड़ेंगी। गोस्वामिकृत दोहावली में रामायण की कथा का वर्णन नहीं है वरन् भक्ति, नीति इत्यादि के स्फुट दोहे इसमें कहे गये हैं। यदि इनका कोई ग्रन्थ दोहावली रामायण कहा जा सकता है तो वह रामाज्ञा है क्योंकि उसके दोहों में क्रमबद्ध रामायण कही गई है परन्तु यह काव्य अत्यन्त ही शिथिल है और इसमें परशुराम

के आगमन की कथा बरात लौटती समय कही गई है जो तुलसी-दासजी के मत के विरुद्ध है। यह ग्रन्थ भी हम कल्पित समझते हैं। रामायणों में मानस के अतिरिक्त हम केवल कवितावली और गीतावली को गोस्वामीजी कृत समझते हैं।

"रामललानहछू" यद्यपि जनकपुर का वर्णन करता है किन्तु फिर भी उसमें नायन, भाटिन इत्यादि के यौवन का ऐसा शृंगार-पूर्ण वर्णन है कि जो गोस्वामीजी का नहीं हो सकता। फिर इसमें परिहास की मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि लक्ष्मण के विषय यहां तक लिख डाला गया कि वे दशरथ के पुत्र ही नहीं हैं। इसके कल्पित होने में कोई सन्देह ही नहीं हो सकता।

"पार्वती-मंगल" में १० पृष्ठ और १६४ छन्द हैं। इस में कालि-दास के अनुसार पार्वतीजी की तपस्या के पीछे उनकी प्रेम-परीक्षा के लिए स्वयं महादेवजी वृद्ध ब्राह्मण का रूप धर कर गये और जिस तरह की वार्ता कुमारसंभव में है, की। इसमें महादेवजी की बरात एवं विवाह समय का हास्य-योग्य वर्णन रामायण की भांति नहीं है। यह ऐसी रचना है कि जिसे शिवभक्त भी बना सकता था। यही कथा मानस में देखने और इन दोनों को मिलाने से जान पड़ता है कि ये दोनों कथानक एक ही व्यक्ति की रचना नहीं हो सकतीं। हम इस ग्रन्थ को भी कल्पित समझते हैं। इसकी कविता न तो शिथिल है न उत्तम।

"वैराग्य-संदीपिनी" में ४ पृष्ठ और ६२ दोहे हैं। इसकी कविता साधारण है और इसमें कवि ने ज्ञान को भक्ति का भूषण माना

है और कहा है कि अंतिम सुख शान्ति से मिलता है न कि भक्ति में। यह मत यथार्थ होने पर भी तुलसीदासजी के प्रतिकूल है इस कारण यह रचना उनकी नहीं हो सकती।

## बरवै रामायण

में सीता का शृङ्गाररस वर्णन विशेष रूप से किया गया है, परन्तु उसके पीछे तुलसीदास की आदत के माफ़िक जगत्-जननी इत्यादि विशेषणों से उसका दोष शान्त नहीं किया गया है। अयोध्या-काण्ड में भरत का और उत्तर-काण्ड में भक्ति का वर्णन नहीं है। अतः यह भी उनकी रचना नहीं जान पड़ती। इसमें ४ पृष्ठ और ६९ छन्द हैं।

अब हम मानस के अतिरिक्त गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों पर सूक्ष्मतया अपना मत प्रकट करते हैं।

## कवितावलि

में ५४ पृष्ठ और ३१८ छन्द हैं। इस में सवैया, झूलना और घनाक्षरी के अतिरिक्त और छन्द नहीं लिखे गये हैं। इसमें उत्तर-काण्ड समस्त ग्रन्थ के अर्धांश पर विस्तृत है और शेष अर्धांश में बाक़ी छहों काण्ड आ गये हैं। यह ग्रन्थ वास्तव में परमोत्तम है और इसमें अनेक सवैया एवम् दंण्डक बड़े ही उत्तम बन पड़े हैं। कतिपय सवैयों का माधुर्य्य तो कुछ कहते ही नहीं बनता और इसके छन्द ख़ूब ज़ोरदार हैं। प्राकृतिक वर्णनों की भी इस में ऊनता

नहीं एवम् ठौर ठौर पर हास्य की झलक भी इसमें अच्छी दी गई है। इसकी भाषा ब्रजभाषा-मिश्रित है। लङ्का-काण्ड तक इसमें हनुमानजी की प्रधानता है पर उत्तर-काण्ड में श्रीरामचन्द्रजी की ही भक्ति सर्वोपरि कर दी गई है और बाल-काण्ड में भी श्रीराम ही का समारोह है। इसके कतिपय कवित्तों में अपना नाम देने में कवि ने दो अक्षर बढ़ा दिये हैं जिससे उस पद-विशेष में छन्दो-भङ्ग की झपक आजाती है। इस ग्रन्थ में गोस्वामीजी ने निज विषयक बहुत सी बातें लिखी हैं जिनसे उनका हाल लिखने में अच्छी सहायता मिलती है।

कुछ लोगों का मत है कि हनुमान-बाहुक इसी ग्रन्थ का अङ्ग है। इन दोनों ग्रन्थों की कविता अवश्य ही मिलती है परन्तु इनके विषयों में बड़ा अन्तर है और ये एक ही ग्रन्थ नहीं हो सकते। कवितावलि में श्रीरामचन्द्र की बाललीला, लङ्का-दहन, हनुमानजी का युद्ध और काशी में महामारी की बीमारी का बड़ा ही विशद वर्णन हुआ है। उत्तर-काण्ड में कोई २० पृष्ठों में रामचन्द्र की स्तुति हुई है जिसमें रामायण में उल्लिखित सिद्धान्तों और अनुमतियों से कहीं भी विरोध नहीं पाया जाता एवम् वैसी ही बातें बार बार प्रतिपादित हुई हैं। हम को पहले सन्देह होता था कि शायद यह ग्रन्थ गोस्वामीजी का नहीं वरन किसी अन्य "तुलसी" नामक कवि का है क्योंकि—

(१) इसमें गोस्वामीजी की भाषा से पार्थक्य है।

(२) सुन्दर एवम् लङ्का-काण्डों में हनुमान का उत्कर्ष राम से भी अधिक बढ़ा दिया गया है। यहाँ तक कि कवि ने राम-लक्ष्मण का युद्ध

केवल तीन चार छन्दों में भुगता दिया है परन्तु हनुमान का संग्राम बड़े ही विस्तार एवम् समारोह के साथ वर्णन किया है।

( ३ ) इसकी रचना कविता-प्रणाली वाले लेखकों से अधिक मिलती है और गोस्वामीजी ऐसे कथा-प्रणाली वाले कवियों से बिलकुल पृथक हैं।

( ४ ) इस में भरतजी की महिमा बहुत कम कही गई है पर गोस्वामीजी भरत महाराज के बड़े ही भक्त थे। ध्यानपूर्वक सब बातों पर विचार करने से हमारा उपर्युक्त सन्देह जाता रहा और हमें निश्चय हो गया कि यह ग्रन्थ वास्तव में गोस्वामीजी का ही बनाया हुआ है। इसके कारण भी नीचे दिये जाते हैं—

( १ ) सबसे बड़ी बात तो यह है कि "विनयपत्रिका" से जो निस्सन्देह इन्हीं की रचना है, इस ग्रन्थ की कई बातें याथातथ्य मिल जाती हैं। उसमें इन्होंने लड़कपन में अपना अत्यन्त दरिद्री होना लिखा है सो बात कवितावली में भी पाई जाती है। दूसरे इन दोनों ग्रन्थों में इन्होंने स्पष्टतया अपना नाम "रामबोला" लिखा है जिससे सन्देह बहुत कुछ दूर हो जाता है और तीसरे इन दोनों ही ग्रन्थों में कवि ने लिखा है कि उसका ऋषिवत् मान होता था। सो यदि कवितावली किसी अन्य कवि की रची हुई मानी जावे तो यह भी मानना पड़ेगा कि ( क ) इस ग्रन्थ का रचयिता भी लड़कपन में वैसाही दरिद्री था जैसे गोस्वामीजी। ( ख ) उसका नाम भी पहले गोस्वामीजी की ही भांति "रामबोला" था और ( ग ) उसका भी गोस्वामीजी समान ऋषिवत् सम्मान अन्त में होने लगा

था एवम् वह भी इन्हीं की भाँति काशीजी में रहता था। अब हम पूछते हैं कि क्या यह सब बातें सम्भव हो सकती हैं! निस्सन्देह विनयपत्रिका और कवितावली एक ही कवि की रचनायें हैं और वह कवि सिवाय गोस्वामीजी के और कोई भी न था। विनय-पत्रिका को कोई मनुष्य तुलसीकृत मानने में नहीं हिचकता और उसके विषय में आगे चलकर हम अपने विचार लिखेंगे।

भाषा के पार्थक्य विषय में हमें यही ज्ञात होता है कि सवैया, दण्डक प्रायः ब्रज-भाषा में ही लिखे जाते हैं और तुलसी-दासजी से उद्भट कवि को दूसरे प्रकार की भाषा में भी उत्तम कविता कर सकना कोई बड़ी बात नहीं।

( २ ) हनुमान के प्रकाण्ड उत्कर्ष के विषय में भी यही कहा जा सकता है कि "राम ते अधिक रामकर दासा" के सिद्धान्ता-नुसार यह भी कोई बड़ी बात नहीं और हनुमाजी को श्रीराम-चन्द्र का दास तो गोस्वामीजी बराबर कहते ही गये हैं।

( ३ ) इसके विषय में नम्बर ( १ ) के अन्त में जो हम ऊपर लिख आये हैं वही इस कविता और कथा-प्रणाली वाली बात पर भी ठीक उतर जाता है।

( ४ ) इसमें सब बातें साङ्गोपाङ्ग नहीं लिखी गईं और इसीसे शायद भरत-विषयक अधिक बातें नहीं लिखी गईं।

यदि कहा जाय कि किसी कवि ने जान बूझ कर बेईमानी से तुलसीदास के नाम पर ढूँढ़ ढूँढ़ कर ऐसी ही बातें लिख दी हैं कि जिससे यह ग्रन्थ उन महानुभावजी का माना जाय तो इसका

उत्तर यह है कि एक तो ऐसा विचारने के लिए कोई भी प्रमाण नहीं; दूसरे हनुमान-बाहुक की कविता इससे इतनी कुछ मिलती जुलती है कि इन ग्रन्थों को कोई भी भिन्न भिन्न कवियों की रचना नहीं कह सकता। फिर हनुमानबाहुक के रचयिता की कवितायें और प्रार्थनायें इतनी सच्ची तबीयत से कही गई हैं कि उसे कोई कदापि जालिया और धोखेबाज़ नहीं कह सकता। तीसरे बाँह के दर्द का हाल गोस्वामीजी ने हनुमानबाहुक एवम् दोहावली में बार बार बड़े ही करुणोत्पादक शब्दों में कहा है और वही बात कवितावली के भी दो छन्दों में वर्णित है। इसे देख कर कोई भी नहीं कह सकता कि यह विषय बेईमानी से वर्णित कहा जा सकता है। अतः कवितावली अवश्य गोस्वामीजी रचित है।

इसकी रचना का काल पण्डितों ने संवत् १६६९ से १६७१ के बीच में स्थिर किया है। उनका यह भी मत है ( और हम भी ऐसा ही मानते हैं ) कि यह पुस्तक कोई स्वच्छन्द ग्रन्थ नहीं बरन् तुलसीकृत रामायण विषयक छन्दों का इसमें एकत्र संग्रह कर दिया गया है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इसमें ठीक क्रम और प्रबन्ध से कथा वर्णित नहीं। यथा—रामचन्द्र का जन्म, कैकेयी का वरदान, शूर्पणखा का वृत्तान्त, सीता-हरण, सुग्रीव-मैत्री, बालि-बध, मेघनाद-बध एवं राम-राजगद्दी का इसमें कुछ भी हाल नहीं है।

उदाहरणः—

पग नूपुर औ पहुँची कर कञ्जन
मञ्जु बनी मनि माल हिए।

नव नील कलेवर पीत भँगा
झलकैं पुलकैं नृप गोद लिए ॥
अरबिन्द सो आनन रूप मरन्द
अनन्दित लोचन भृङ्ग पिए ।
मन में न बसो अस बालक जो
तुलसी जग में फल कौन जिए ॥ १ ॥
संकर सहर सर नारि नर बारिचर विकल
सकल महामारी माया भई है ।
उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगात जल थल मीचु मई है ॥
देवन दयाल महिपालन कृपाल चित
बारानसी बाढ़त अनीति नित नई है ।
पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत
रामहू कि बिगरी तुही सुधारि लई है ॥ २ ॥

## हनुमानबाहुक ।

इसमें छप्पय, घनाक्षरी और सवैया छन्दों में रचना की गई है । इस में ७ पृष्ठ और ४४ छन्द हैं और विशेषतया हनुमानजी की स्तुति है । इसके कल्पित न होने के प्रमाण कवितावली में दिये गये हैं । यह एक बड़ा ही उत्तम ग्रंथ है और इसमें प्रत्येक स्थान पर कवि की सच्ची और आप-बीती घटनायें लिखी हैं । इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । यह महात्मा ऐसा धर्मात्मा था कि अपनी बाहुपीड़ा का कारण समझ नहीं सकता था । इसमें लिखा

है कि मैंने पातक नहीं किये हैं तब फिर यह पीड़ा क्यों पाता हूँ? यह महात्मा औषधादि से स्तुति को उत्तमतर समझता था परन्तु ऐसे प्रगाढ़ भक्त को भी एकाध स्थान पर देवताओं से अश्रद्धा सी होती जान पड़ती है। इस ग्रन्थ के उदाहरण गोस्वामीजी की जीवनी में मिलेंगे। भाषा आदि में यह कवितावली से मिलता है परन्तु कविता-प्रौढ़ता में उससे कुछ विशेष है।

## संकटमोचन

में केवल आठ घनाक्षरियों द्वारा हनुमानजी की साधारणतः उत्तम स्तुति की गई है। इसमें महिरावण का भी हाल दिया हुआ है। यह एक छोटा सा उत्तम स्तोत्र है और जान पड़ता है कि हनुमानबाहुक से पहले बना है क्योंकि इसमें यह माँगा गया है कि मेरे जो कुछ संकट हों वह हनुमानजी दूर करें। बाहुपीर उठने के पहले यह बना था। इसके किसी छन्द में गोस्वामीजी का नाम नहीं आया है परन्तु अन्त में यह दोहा दिया है।

यह अष्टक हनुमान को विरचित तुलसीदास।
गङ्गादास जु प्रेम सों पढ़ै होय दुख नास॥

गङ्गादास ने या तो इसे किसी समय सम्पादित किया होगा या स्वयम् बना कर गोस्वामीजी का नाम रख दिया होगा। इसमें निश्चय कुछ नहीं होता परन्तु अन्तिम अनुमान पुष्टतर जान पड़ता है।

## हनुमानचालीसा

में दो दो पदों की एक एक चौपाई गिनने से चालीस चौपाइयाँ आती हैं। इसमें हनुमानजी की परमोत्तम स्तुति है और इसे लोग प्रायः नित्य प्रति स्तोत्र की भाँति पढ़ते हैं।

## गीतावली-रामायण।

यह ११२ पृष्ठ और ३३० पदों की एक बहुत ही अपूर्व रामायण है। इसकी रचना क्रम-बद्ध की गई है और हिंडोला और होली इत्यादि का वर्णन इसमें उत्तम रीति से किया गया है और विशेषता यह है कि भाषा की आधुनिक प्रणाली की भाँति इस महाकवि ने किसी स्थान पर शृङ्गारवर्णन में भी कोई अश्लील या अनुचित कथन नहीं किया है। इसकी कथा रामायण की भाँति है केवल इतना भेद है कि अयोध्या को एक पत्र गुह ने भेजा था कि रामचन्द्रजी विराध को मार कर नर्मदा और विन्ध्याचल के बीच में बसे हैं, और उत्तर-काण्ड में रामचन्द्रजी की दिनचर्या, जानकी-त्याग और लव-कुश जन्म का भी वर्णन किया गया है, परन्तु उनके युद्ध को इन्होंने नहीं कहा। किष्किन्धा-काण्ड में बालि-मरण या सुग्रीव का राजतिलक का वर्णन कवि ने नहीं किया है केवल उन्हें राजा की तरह माना है। सुन्दर-काण्ड में हनुमानजी के सम्मुख सीताजी और रावण की बात चीत नहीं कराई गई है। इसके वर्णन बड़े ही विशद और ज़ोरदार हैं और इसकी भाषा बड़ी ही मधुर, गम्भीर

और प्रशंसनीय है। इसमें युद्ध का वर्णन कम किया गया है। इस का एक पद्य उदाहरणार्थ दिया जाता है:—

जब रघुबीर पयानो कीन्हों।
छुभित सिन्धु डगमगत महीधर सजि सारँग कर लीन्हों॥
सुनि कठोर टङ्कोर घोर अति चौंके बिधि त्रिपुरारि।
जटा पटल ते चली सुरसरी सकत न शम्भु सँभारि॥
भए बिकल दिगपाल सकल भय भरे भुवन दसचारि।
खर भर लङ्क ससंक दसानन गर्भ स्रवहिँ अरि नारि॥
पवन पंगु पावक पतङ्ग ससि दुरि गए थके बिमान।
गए पूरि सर धूरि भूरि भय अग थल जलधि समान॥
चली चमू चहुँ ओर सोर कछु बनै न बरनत भीर।
किलकिलात कस मसत कुलाहल होत नीर निधि तीर॥
जब रघुपति सँग सीय चली।
बिकल बियोग लोग पुर तिय कहँ अति अन्याव अली॥
कोउ कह मनि गन तजत कांच लगि करत न भूप भली।
कोउ कह दुःख कुबेलि कैकयी दुख बिष फलनि फली॥
एक कहँ बन जोग जानकी बिधि बड़ बिषम बली।
तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली॥

यह ग्रन्थ विनयपत्रिका से उत्तम नहीं तो उसके बराबर अवश्य है। इसके लालित्य व मधुरता की जितनी प्रशंसा की जाय योग्य है।

---

## छन्दावलीरामायण।

यह १७ पृष्ठ का एक छोटा सा ग्रन्थ है और इसमें विविध छन्दों में कथा कही गई है। इसकी कविता साधारण है। हमने इसकी कोई मुद्रित प्रति नहीं देखी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति हमारे पुस्तकालय में है।

उदाहरण।

सुभ सगुन अवध जनाय तेहि छिन होत मुद मङ्गल महा।
सीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत अमल जल सरजू बहा॥
सुभ अङ्ग फरकत भरत के हिय हुलसि सुभ आनँद लहा।
तेहि काल श्रीहनुमान प्रभु को आय सन्देसो कहा॥

रामसलाका, झूलना रामायण तथा रोला रामायण हमारे देखने में नहीं आये।

## पदावली-रामायण।

यह पचास पृष्ठ का एक बृहत् ग्रन्थ है और विशेषतया पदों में इसकी कथा कही गई है। राम-जन्म इसमें कुछ विस्तार से कहा गया है और कुछ उत्तम भी है पर कुल मिला कर यह ग्रन्थ शिथिल है। इसकी कोई मुद्रित प्रति हमारे देखने में नहीं आई, परन्तु एक हस्तलिखित प्रति हमारे पुस्तकालय में है।

उदाहरणः—

भरत जू कपि ते उरिन हम नाहीं।
सौ जोजन मरजाद सिन्धु की कूदि गयो छिन माहीं।

बिपिन बिध्वंसि जारि गढ़ खल हति सिय सुधि दिय हम काहीं ॥
ल्याय सजीवनि लछिमन ज्याये जे मम दाहिन बाहीं ।
तुलसीदास बलि बल हनुमत की श्री मुख जाहि सिहाहीं ॥

## जानकी-मंगल ।

इसमें १३ पृष्ठ और २१६ छन्द हैं। परशुरामजी का संवाद इसमें बरात लौटती समय कराया गया है। मानस व इसकी रचना में इतना ही अंतर है। इसमें जानकी जी के विवाह का वर्णन उत्तम रीति वा छन्दों द्वारा किया गया है। इसकी रचना प्रशंसनीय है और गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों से मिलती हुई है। उदाहरण देखिए—

मंगल बिटप मंजुल बिपुल दधि दूब अच्छत रोचना ।
भरि थार आरति सजहिँ सब सारंग सावक लोचना ॥
देत पाँवड़े अरघ चलीं लै सादर ।
उमगि चलेउ आनन्द भवन भुँइ बादर ॥

यद्यपि पार्वती-मंगल की रचना भी इससे मिलती है तथापि हम उसे कल्पित समझते हैं। मानस में गोस्वामीजी ने ये दोनों विवाह कहे हैं परन्तु पार्वती-विवाह की दुरवस्था और जानकी-विवाह की उत्तमता व लोकप्रियता दिखा कर अपने मुख्य उपास्य देव रामचन्द्रजी की प्रच्छन्न रूप से महिमा व प्रभाव प्रदर्शित किया है। यदि गोस्वामीजी ने पार्वती-मंगल भी बनाया होता तो वही बात यहाँ भी होती। जानकी-मंगल की रचना ऐसी उत्तम नहीं

है कि कोई दूसरा कवि वैसी न बना सके अतः इन दोनें की रच-नाओं की समानता हमारे इस मत की बाधक नहीं हो सकती।

## कृष्णगीतावली

में १४ पृष्ठ और ६१ पद हैं। इसमें श्रीकृष्णचन्द्रजी की बहुत सी लीलाओं का वर्णन किया गया है। इसकी रचना ख़ास ब्रज-भाषा में की गई है। इसमें दो छन्दों में बाललीला, फिर कई पदों द्वारा उराहना, ऊखल-बन्धन (जिसमें लकुटिया का वर्णन उत्तम है) गोवर्धन-धारण (बहुत ही मनोहर) कृष्ण-रूप-वर्णन (इसमें खंडिता के वर्णन में भी घृणित शृंगारी रचना नहीं की गई है) कृष्णजी का मथुरा-गमन और गोपी-विरह-वर्णन (उत्तम वर्णन किया गया है) उद्धव-संवाद (३६ पदों द्वारा विस्तारपूर्वक और बड़ा ही उत्तम और हृदयग्राही वर्णन है) और दो पदों द्वारा द्रौपदी-चीर-हरण कहा गया है।

गोस्वामीजी ने यह ग्रन्थ ठेठ ब्रजभाषा में लिखा है और वर्णन-शैली भी कृष्ण-गुण-गान करने वालों ही के समान है, परन्तु फिर भी इस कवि ने दिखला दिया है कि शृंगारविषय के वर्णन को भी सुकवि अनुचित प्रेम वर्णन से अलग रख कर भी उत्तम रीति से कह सकता है। यह ग्रन्थ बड़ा ही विशद है और गोस्वामीजी के सब विषयों को उत्तम रीति से बखान करने की शक्ति को पूर्णतया प्रमाणित करता है। इस छोटे से ग्रन्थ में उत्तम वर्णनों और रुचिर छन्दों की संख्या बहुत विशेष है और प्रेम-वर्णन भी इसमें बहुत उत्तम रीति से किया गया है। इन्होंने नायक-नायिकाओं के घृणित

प्रेम को छोड़ कर ऊँचे दर्जे के प्रेम का वर्णन किया है।

उदाहरणः—

वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं।
जोग जुगुति अरु मुकुति बिबिधि बिधि वा मुरली पर वारौं॥
नहिँ तुम ब्रज बसि नन्दलाल को बाल बिनोद निहारो।
नाँहिन रास रसिक रस चाख्यो ताते डेल सो मारो॥

ब्रज पर घन घमंड करि आये।
अति अपमान विचारि आपनो कोपि सुरेस पठाये॥
दमकति दुसह दसौ दिसि दामिन भो तम सघन गँभीर।
गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर॥
बार बार पबिपात उपल घन बरखत बूँद बिसाल।
सीत सभीत पुकारत आरत गोसुत गोपी ग्वाल॥

## सतसई।

इसमें ७४० दोहा हैं और अधिकतर दोहाओं में रामभक्ति अथवा भक्ति करने के उपदेश का वर्णन है। इसमें सात सर्ग हैं और यह श्री वेंकटेश्वर छापेखाने में छपी है। इसकी कविता अधिकतर उत्तम नहीं है परन्तु कुछ दोहे अच्छे भी हैं।

उदाहरणः—

का भाषा का संसकृत बिभव चाहिए साँच।
काम तो आवैं कामरी का लै करै कमाँच॥
तुलसी मीठे बचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
बसी करन इक मन्त्र है परिहरु बचन कठोर॥

ह्वै अधीन जाँचत नहीं सीस नवाय न लेइ।
ऐसे मानी मांगनहिँ को बारिद बिन देइ॥
तुलसी सब छल छांड़िकै कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा जिन देखी सब देह॥
राम काम तरु परिहरत सेवत कलि तरु ठूँठ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूँठ॥

## दोहावली।

इस ग्रन्थ में ५७३ दोहा हैं परन्तु इनमें से अधिकतर रामचरित-मानस एवं अन्य तुलसीकृत ग्रन्थों के हैं। इनमें से कितने ही सत-सई के भी हैं। विशेषतया यह ग्रन्थ एक संग्रह मात्र है पर इसके दोहाओं का संग्रह गोस्वामीजी ही के ग्रन्थों से हुआ है। संभव है कि कुछ दोहे नवीन भी इसमें हों। इस ग्रन्थ की रचना प्रशंसनीय है और रामचरितमानस के दोहे विशेषतया उत्तम हैं। इसमें भी सतसई की भाँति भक्ति का ही वर्णन हुआ है। भक्ति पक्ष की सिद्धि में क्या क्या छन्द इस महात्मा ने लिखे हैं और उसे पुष्ट करने में क्या क्या प्रमाण दिये हैं कि कुछ कहते नहीं बनता।

उदाहरण—

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर॥
तुलसी जो पै राम सों नाहिन सहज सनेह।
मूड़ मुड़ायो बादिही भांड़ भयो तजि गेह॥

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहु जो चाहसि उजियार॥
तुलसी तनु सर सुख जलज भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिये कपि केशरी किशोर॥
भुज तरु कोटर रोग अहि बरबस कियो प्रवेस।
बिहँग राज बाहन तुरत काढ़िय मिटै कलेस॥
बाहु विटप सुख बिहँग थल लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिये बेगि दीन हित लागि॥

## विनयपत्रिका।

इस ग्रन्थ में ९६ पृष्ठ और २८० पद हैं। इसको कवि ने गणेशजी की बन्दना से आरम्भ किया है और फिर शिव, देवी, गङ्गा, यमुना, काशी, हनुमान, अन्नपूर्णा इत्यादि की स्तुति में बहुत से उत्तम और मनोहर तथा गम्भीर पद लिखे हैं। बिन्दुमाधवजी का नखशिख तथा काशीजी व कामधेनु का रूपक दर्शनीय हैं। इसके पश्चात् श्रीरामचन्द्र आनन्दकन्द की स्तुति के पद कहे गये हैं। स्तुतियों में बड़े बड़े विशेषणों से बहुधा काम लिया गया है और इस ग्रंथ में रूपकों का बाहुल्य है। जप, भक्ति तथा नाम-माहात्म्य का इसमें विशेष वर्णन है और अन्त में सब प्रकार से नाम पर भरोसा रक्खा गया है। गोस्वामीजी ने अपने कुकर्मों पर भी बड़ा ज़ोर दिया है और अपने उद्धार पर इतनी विनती और किसी ग्रन्थ में नहीं की है।

इसमें गोस्वामीजी ने अपने विषय भी इधर उधर कुछ बातें लिखी हैं। इसमें अपना ब्राह्मण होना और बालकपन से मात, पिता

का वियोग वर्णन है। अपना पहला नाम और शिष्य होने के समय का भी हाल लिखा है। इस ग्रन्थ को एक प्रकार से अरज़ी की भाँति गोस्वामीजी ने लिखा है और अन्त में कहा है कि लक्ष्मणजी ने रामचन्द्रजी से इसको मंजूर करा दिया। इसमें गोस्वामीजी ने ब्रजभाषा के भी शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु संस्कृत-मिश्रित भाषा का प्राधान्य है। कई स्थानों पर संस्कृत की सन्धियाँ भी आ गई हैं और मिलित वर्णों का भी प्रयोग हुआ है। फिर भी भाषा में माधुर्य्य का अभाव नहीं है। विनय में उत्तम पदों का बाहुल्य अवश्य है परन्तु फिर भी यह सब स्थानों पर रोचक नहीं है और प्रायः उसी प्रकार के भाव बार बार आ जाने से एक साथ पढ़ने से इसमें तादृश मनोविनोद नहीं होता। फिर भी यह गोस्वामीजी के उत्तमोत्तम ग्रन्थों में एक है और इसमें गोस्वामीजी की आत्मोयता प्रायः सब स्थानों पर वर्तमान है।

उदाहरण—

सेइय सहित सनेह देह धरि कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक सन्ताप पाप रुज सकल सुमङ्गल रासी॥
मर्यादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिव लिङ्ग अमित अबिनासी॥

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि लोपित मङ्गल मग बिलसत बढ़त मोह माया मलु॥
भूमि बिलोकि रामपद अंकित बन बिलोकि रघुबर बिहार थलु।
शैल शृङ्ग भव भङ्ग हेतु लखु दलन कपट पाखण्ड दम्भ दलु॥
न करु बिलम्ब बिचारु चारु मति बरष पाछिले सम अगिले पलु॥

विद्वान् लोगों ने विनयपत्रिका के विषय को सात निम्न लिखित भागों में विभक्त किया है:—

दीनता, मानमर्षण, भय दर्शन, भर्त्सन, आश्वासन, मनोराज्य और विचार।

विनयपत्रिका में प्रायः सभी देवताओं की स्तुति की गई है, और इसके भाव सच्चे तथा मनोहर हैं। बहुत से पण्डितों का मत है कि यह गोस्वामीजी के ग्रन्थों में श्रेष्ठ है। हम भी इस ग्रन्थ को प्रशंसनीय समझते हैं। विनय-सम्बन्धी ऐसा अद्भुत और भावपूर्ण ग्रन्थ हमने अब तक किसी भी भाषा में नहीं देखा।

## कलि-धर्माधर्म-निरूपण।

इसमें १० पृष्ठों द्वारा दोहा चौपाइयों में कलि-धर्म कहा गया है। इसकी रचना और भाषा "रामायण" से बहुत मिलती जुलती हैं। यह एक उत्तम और प्रशंसनीय ग्रंथ है और इसके तुलसीकृत होने में कोई सन्देह नहीं है। खोज में गोस्वामीजी कृत ज्ञानकोपरि-करण, मंगल रामायण, गीताभाष्य, राममुक्तावली, और ज्ञानदीपिका नामक और ग्रन्थ मिले हैं पर ये हमने नहीं देखे।

## राम-चरित-मानस ( तुलसी कृत रामायण )।

राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवन मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि। भय भञ्जिनि भ्रम भेक भुवङ्गिनि॥
बुध बिसराम सकल जन रंजिनि। राम कथा कलि कलुख बिभञ्जिनि॥
असुर सेनसम नरक निकन्दिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनन्दिनि॥

सन्त समाज पयोधि रमासी। विश्व भार धर अचल छमासी॥
राम कथा सुन्दर कर तारी। संसै बिहँग उड़ावन हारी॥
राम चरित चिन्तामनि चारू। सन्त सुमति तिय सुभग सिँगारू॥
राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेख पावा तिन नाहीं॥

इस संसार-साहित्य के मुकुट की रचना का श्रीगणेश संवत १६३१ विक्रमीय राम नवमी भैामवार को हुआ था। गोस्वामीजी ने इसके आदि मेंसंस्कृत के छः श्लोकों द्वारा वाणी, विनायक, भवानी, शङ्कर, गुरु, कवीश्वर, कपीश्वर, सीता और मायाधीश राम नाम धारी ईश्वर हरि (रामाख्यमीशं हरिम्) की वन्दना की है और फिर सप्तम श्लोक में अपने ग्रन्थ के आधार और रचना का कारण लिखा है। ये महाशय वाल्मीकीय रामायण में कथित नाना पुराण निगमागम सम्मत एवम् अन्यत्र की बातों को अपना आधार मानते हैं, और राम-कथा अपने अन्तःकरण की प्रसन्नता के अर्थ कहते हैं। हिन्दी में गोस्वामीजी ने पांच सोरठाओं द्वारा गणेश, परमेश्वर (राम), विष्णु, शिव और गुरु नरहरिदास की वन्दना की है, और फिर २८ पृष्ठों तक ये वन्दनाएं लिखते चले गये हैं। यही रामायणांतर्गत बाल-काण्ड की जगद्विख्यात वन्दना है। इसमें कवि ने क्रम से गुरु, सन्त-समाज, सत्सङ्गति, खलगण, और जीव मात्र की स्तुति करके रामायण और कविता का कुछ हाल कहा है। अपनी प्रचण्ड निन्दा स्वयम् करके औरों से अपनी निन्दा न करने का इन्होंने अनुरोध किया है। फिर गोस्वामी ने व्यास आदि तथा कलि के कवियों एवम् नारद सुरसरिता, महेश, भवानी, वाल्मीकिजी इत्यादि इत्यादि प्रायः सभी देवता, दैत्य आदि तथा सभी पदार्थों की स्तुति

की है, जिसमें दुर्जनों और कुपात्रों की स्थान स्थान पर ख़ूब ही निन्दा व्यंग्य द्वारा कर दी है। इसके बाद इन्होंने यह लिख दिया है किः—

सियाराम मय सब जग जानी।
करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

गोस्वामीजी ने राम, नाम, कथा आदि का भी अच्छा माहात्म्य कहा है। अन्त में रामायण का एक बहुत बड़ा रूपक मानसरोवर से बाँधा गया है और उसमें रामचरितमानस की मानस से प्रायः सभी बातों में समानता दिखाई गई है।

गोस्वामीजी ने अपनी कथा पुराणों की भाँति अन्य महाशयों की वार्ता के स्वरूप में कही है। ऐसा करने से तुकान्त रखने एवं छन्दों के ख़ाली भागों के भरने का सुभीता रहता है। यह रामायण याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, शिव-पार्वती और कागभुशुण्डी गरुड़ का संवाद है। ये संवाद मिलाने को गोस्वामीजी ने सती-मोह, दक्ष-यज्ञ और पारवती-विवाह बड़े विस्तार के साथ कहे हैं। अन्तिम वर्णन में मदन-दहन भी आ जाता है।

बाबू सुखदेवलाल ने दोहा, चौपाई छन्दों आदि के विषय रामायण महामाला दिखाने का बहुत बड़ा प्रयत्न किया है और यह दिखाया है कि प्रत्येक स्थान पर आठ आठ चौपाइयों के पीछे दोहे और इसी प्रकार गणनानुसार अन्य छन्द हैं। यह मत २१ तथा २२ पृष्ठ की चौपाइयों के देखने ही से एवं अन्य कितने ही स्थानों पर यह गणना टूटने से खण्डित हो जाता है। उन्होंने अपना मत पुष्ट करने को जहाँ कहीं चौपाइयाँ अधिक हो गई हैं वहाँ उन्हें छोड़ दिया है और जहाँ कम हो गई हैं वहाँ दोहों का रद बदल कर दिया

है। उनका मत समर्थनीय नहीं है। यद्यपि चार पद मिल कर पिङ्गल-मतानुसार चौपाई बनती है तथापि इस प्रबन्ध में हमने औरों का अनुसरण करके दोही पदों की चौपाई मानी है। इसी प्रकार दोहा, सोरठा, चौपाई भी छन्द ही हैं परन्तु गोस्वामीजी ने इनसे इतर छन्दों को ही छन्द करके लिखा है अतः हम भी इस प्रबन्ध में ऐसा ही करते हैं। पृष्ठों की संख्या जहाँ लिखी हो वहाँ इंडियन प्रेस की छपी हुई रामायण की उत्तम बड़ी प्रति के पृष्ठ समझने चाहिए। ६८ पृष्ठ तक गोस्वामीजी ने एक प्रकार से रामायण की भूमिका लिखो है अतः उनको बाल-कांड के भाग होने पर भी हम वास्तविक बाल-कांड का प्रारम्भ ६८ वें पृष्ठ से समझते हैं जहाँ से कि राम-जन्म के कारणों का वर्णन प्रारम्भ हुआ है।

गोस्वामीजी ने अपने ग्रन्थ का नाम रामचरितमानस और उसके विभागों का सोपान रक्खा है, परन्तु संसार में उनके स्थान पर रामायण और कांड नाम अधिक प्रचलित हुए। अतः इस लेख में जहाँ मानस अथवा रामायण नाम आये हों या आवें वहाँ इसी ग्रन्थ से प्रयोजन है। इनके कांडों का वर्णन करने के प्रथम हम इनके विषय दो चार बातें लिखना चाहते हैं।

गोस्वामीजी राजा को ईश्वरांश समझते थेः—

साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस असंभव परम कृपाला॥

यद्यपि गोस्वामीजी कथा स्वान्तः सुखाय कहते थे परन्तु फिर भी उनकी अनुमति थी कि जिस कविता का बुध आदर न करें वह वृथा है :—

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं । सो श्रम बादि बाल कवि करहीं ॥

गोस्वामीजी ने पुरानी कथाओं के प्रतिकूल घटनायें लिखने और पुराणों के विरोध को इस प्रकार समर्थित किया है कि कल्प कल्प पर प्रभु का अवतार होता है और विविध प्रकार लीलायें होती हैं अतः विरोधों को कल्प भेद के कारण यथार्थ मानना चाहिए ।

इन्होंने इतनी निरभिमानता की है कि कागज़ कोरे पर लिख दिया है कि इनको भाव भेदादि नहीं ज्ञात हैं ।

गोस्वामीजी सरयू नदी को मानस-नन्दिनी कहते हैं । जान पड़ता है कि उन्होंने सरयू के उद्गम स्थान को देखा था । सरयूजी पहले कौड़ियाली नाम से मानस से निकलती हैं ।

निर्जीव पदार्थों की सजीवता की चर्म सीमा उस स्थान पर पहुँच गई है जहाँ हिमाचल ने सब वन, सागर, नदी, तालाबों को नेवता भेजा और सब कामरूप सुन्दर तनु धर के वहाँ जा पहुँचे ।

गोस्वामीजी रोदति बदति बहुत लिखते हैं ( रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहँ गई ) । विवाहों की गाली केशवदास ने अच्छी लिखी है । गोस्वामीजी अपनी कथाओं के सुनने का फल प्रायः कह देते हैं । कथाओं को कह कर गोस्वामीजी प्रायः उनका प्रभाव श्रोताओं पर वर्णन करते हैं ।

यथा—

सम्भु चरित सुनि सहज सोहावा । भरद्वाज मुनि अति सुख पावा ॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी । नैन नीर रोमावलि ठाढ़ी ॥
प्रेम विबस मुख आव न बानी । दसा देखि हरषे मुनि ज्ञानी ॥

जब भुशुंडी ने कथा समाप्त की थी तब गरुड़ की भी यही दशा हुई थी।

सादर खगपति पंख फुलाये।

अवतार का कारण इन्होंने यह कहा है कि जब जब धर्म की हानि होती है और ब्राह्मणों आदि को दुःख होता है तभी ईश्वर अवतार लेते हैं। यही गीता का भी मत है।

अन्य कवियों की भाँति ये भी नाम कहने में भी मुख्य नाम न कह कर उनका कभी कभी अर्थ मात्र कह देते हैं, यथा, हिरण्य कश्यप के स्थान पर कनक कशिप, हिरण्याक्ष के स्थान पर हाटकलोचन आदि। यदि कोई महाशय भूमिका को कुका अथवा सागराम्बराका कहें तो पता लगना कठिन हो जावे परन्तु नामों के विषय यह रीति भाषा और संस्कृत में प्रचलित है।

क्षत्री और राजाओं को ये कुटिल और अविश्वास पात्र समझते थे।

बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा॥

इन्होंने ब्राह्मणों को मांसाहारी लिखा है और यह भी लिखा है कि वे क्षत्रियों का परोसा खाते थे।

बिबिधि मृगन कर आमिष राँधा।

परसन लाग जबै महिपाला।

गोस्वामीजी इतने बड़े भक्त थे कि उत्तम मनुष्यों की कौन कहै वे राक्षसों तक को रामचन्द्रजी के सम्मुख लाने में उन्हें दर्शन करने के आनन्द में निमग्न कर देते थे। मारीच, विभीषण, और कुम्भकर्ण की भेट करने की दशा देखिए।

गोस्वामीजी शकुन, अशकुन का सदैव पूरा ध्यान रखते थे। इसमें केवल राम सीय के वनवास होने के प्रथम शकुन दिखाने में देखने मात्र को विभेद देख पड़ता है परन्तु ये उनकी वन-यात्रा मांगलिक समझते थे अतः शकुन दिखाना अनुचित न था।

संकर चाप जहाज सागर रघुबर बाहु बल।
बूड़े सकल समाज चढ़े जे प्रथमहि मोह बस॥

इस दोहे के विषय लोग यह कहते हैं कि जब गोस्वामीजी यह लिख गये कि सब समाज डूब गई तो उनकी लेखनी रुक गई और वे आगे कुछ न लिख सके क्योंकि सब समाज में तो जनक, विश्वामित्र और स्वयं राम भी थे, इस पर महावीरजी ने 'चढ़े जु प्रथमहि मोहबस' बना कर दोहा ठीक कर दिया। यह बात बिल्कुल उपहासास्पद है क्योंकि यह पद लिखने के लिये गोस्वामीजी पहलेही से चार चौपाइयों में 'डूबने वालों की समाज' बना चुके थे जो 'सब कर संसय अरु अज्ञानू' से 'चहत पार नहिँ कोउ कनहारा' तक लिखी है। तब उनकी लेखनी क्यों रुकती और 'चढ़े जो प्रथमहि मोहबस' लिखने को हनुमानजी को क्यों कष्ट उठाना पड़ता?

गोस्वामीजी ने रावण और वाण को धनुष यज्ञ में इस कारण उपस्थित नहीं किया कि उन्हें परशुराम द्वारा सब राजाओं को भयभीत कराना अभीष्ट था, और उन्होंने रावण व वाण की ऐसी दुर्दशा कराना उचित न समझा।

इनकी चौपाई प्रायः दीर्घांत होती हैं इसी कारण हज़ारों स्थानों पर इनको ह्रस्व शब्द दीर्घ करने पड़े हैं।

# बाल-काण्ड।

गोस्वामीजी ने रामावतार होने के कुछ कारण दिये हैं जिनको हमने बाल-काण्ड का आदिम भाग माना है। सबसे प्रथम जय और विजय का शाप, दूसरा जलन्धर युद्ध-सम्बन्धी उसकी स्त्री का शाप, तीसरा नारद-मोह और उनका विष्णु को शाप, चतुर्थ स्वायम्भुव मनु और सत्यरूपा रानी का तप करना और पञ्चम राजा भानु प्रताप को विप्रशाप होना है। इसमें नारद-मोह, मनु-तपस्या और भानुप्रताप की कथाएं बहुत ही उत्तम रीति से कही गई हैं। गोस्वामीजी ने लिखा है कि उपर्युक्त भानुप्रताप, उसका भाई अरिमर्दन, और उसका सचिव धर्मरुचि क्रम से रावण, कुम्भकरण और बिभीषण हुए। रावण और उसके कुटुम्बियों का प्रभाव और दिग्विजय इत्यादि का वर्णन गोस्वामीजी ने बहुत ही ज़ोरदार और उत्तम रीति से किया है और उसको यहाँ तक कहा है कि—"ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥" तत्पश्चात् निशाचर लोग बहुत ही अनीति करने और ब्राह्मणों को सताने लगे यहाँ तक कि—"अतिसय देखि धरम कइ हानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥" तब तो उसकी विनती सुन परब्रह्म परमेश्वर ने रामचन्द्र के रूप से अवतार लेने की प्रतिज्ञा की।

इधर अयोध्याधिपति महाराज दशरथ का चतुर्थपन आ चुका था तथापि अपने कोई पुत्र न देख उन्हें चिन्ता उत्पन्न हुई सो वशिष्ठजी

के परामर्श से उन्होंने शृङ्गी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया। इस यज्ञ का हव्य रानियों को इस प्रकार बाँटा गया कि कौशल्या को अर्ध भाग, कैकेयी को चतुर्थांश, और शेष के दो भाग कर कौशल्या और कैकेयी द्वारा सुमित्रा को दिये गये और रानियों के समय पर पुत्र उत्पन्न हुए। वाल्मीकिजी ने लक्ष्मणजी को।) तथा भरत और शत्रुघ्नजी को।) में रक्खा है परन्तु गोस्वामीजी तो शूरता के मुक़ाबिले में भक्ति को प्रधान मानते थे अतः उन्होंने भक्तशिरोमणि भरतजी को प्रधान रक्खा।

गोस्वामीजी ने बाललीला का वर्णन अच्छा किया है पर कहना ही पड़ता है कि सूरदास का यह वर्णन इनसे कहीं अच्छा बन पड़ा है। तुलसीदासजी ने श्रीरामचन्द्र का यश वर्णन किया है और सूरदासजी ने श्रीकृष्णचन्द्र का। गोस्वामीजी को ईश्वरत्व प्रदर्शित करने का बड़ा शौक़ था पर दुर्भाग्यवश उनके नायक श्रीराम ने ऐसा बहुत ही कम किया है। उधर सूरदासजी को इसका वर्णन बिलकुल नहीं रुचता था पर श्रीकृष्णचन्द्र का वह शौक़ बढ़ा चढ़ा हुआ था और जब देखिए तभी वे अपना ईश्वरत्व दिखलाया ही करते थे। अतः नायक को कवि और कवि को नायक अच्छे मिल गये थे सो लेखा डयोढ़ा मिलाने से ईश्वरत्व की मात्रा किसी में कहीं अणु मात्र भी ऊन नहीं पड़ने पाई है।

इसी समय विश्वामित्रजी राम-लक्ष्मण को माँगने आये। पहले दशरथजी ने उन्हें राजकुमार देने से इनकार कर दिया पर विश्वामित्रजी इस पर अप्रसन्न नहीं हुए। वे तो क्रोध न करने की प्रतिज्ञा

ही कर चुके थे सो केशवदासजी का इस अवसर पर यह लिखना कि "जान्यौ विश्वामित्र के क्रोध बढ़यो उर आय" अनुचित है। ताड़का और सुबाहु को मार विश्वामित्रजी का यज्ञ पूर्ण कर और अहिल्या को तार श्रीरामजी सीय स्वयम्बर देखने मिथिलापुरी जा पहुँचे। जनकपुरी में कुछ रामचन्द्रजी ही प्रधान न थे पर तो भी गोस्वामीजी ने उन्हीं की प्रधानता सभी बातों में सभी ठौर रक्खी है यहाँ तक कि वर्णन करने तो जनकपुरी का चले पर वहाँ भी राम ही का वर्णन होता रहा। यह न लिखा गया कि जनकपुर कैसा था और उसके निवासी कैसे थे बरन लिखा यह गया कि मिथिलापुरी के लोग रामचन्द्रजी को यों देखते और उनके विषय में यों बातें करते थे इत्यादि इत्यादि। बस, जहाँ देखिए वहाँ राम ही राम हैं। क्या विश्वामित्र जनक-संवाद, क्या धनुष-यज्ञ-वर्णन, क्या राम की वन-यात्रा और ऋषि-आश्रम-वर्णन, जहाँ हो वहीं राम की ही वार्ता प्रधान है और मुख्य विषय की बहुत कम। राम जहाँ जहाँ जाते थे उन स्थानों का वर्णन गोस्वामीजी को अन्य कवियों की भाँति अभीष्ट नहीं बरन सदैव उन स्थानों और पदार्थों के सहारे वर्णन राम ही का होगा। निदान यदि कोई भी ग्रन्थ पूरे तौर पर "रामायण" कहाने के योग्य है तो यही है, यही है, यही है, मानो "विरञ्चि त्रिरेख खिँचाई"।

"फुलवारी-वर्णन" गोस्वामीजी के ही मस्तिष्क से निकला है क्योंकि इसका वर्णन और किसी कवि ने नहीं किया। इस वर्णन से इन महाराज की अनुपम कवित्व-शक्ति और प्रौढ़ता शृङ्गार-रस वर्णन में भी प्रकट होती है।

रामचन्द्रजी जब से धनुष तोड़ने उठे और जब तक उन्हों ने उसे तोड़ा इस बीच में इस उद्दंड कवि ने कविता का अन्त कर दिया है। अन्य कवियों ने सभा भङ्ग होने पश्चात् श्रीराम द्वारा धनुष तोड़वाया पर गोस्वामीजी ने ऐसा करना उचित न समझ भरी सभा में ही राम-यश विवर्द्धित कराना ठीक माना। रामचन्द्रजी का नखशिख भी इस महा कवि ने सैकड़ों जगह लिखा है जो सभी ठौर उत्तम बन पड़ा है और कई ठौरों पर तो इन वर्णनों की शोभा अवर्णनीय बनी है। रामचन्द्रजी के यश बढ़ाने, एवं अन्य राजाओं का झगड़ा मिटाने, के विचार से ही गोस्वामीजी ने परशुराम को भी भरी सभा में ही बुलाया और उनसे बातें कराने में रामचन्द्र का गाम्भीर्य्य और गौरव इन्होंने ख़ूब ही निबाहा है। हाँ लक्ष्मण-परशुराम-संवाद अवश्य ही बुरा है जैसा कि आगे लिखा जायगा।

विवाह की रीतियाँ इन्होंने ख़ूब ही साङ्गोपाङ्ग लिखी हैं।

बाल-काण्ड में १८९ पृष्ठ हैं जिसमें ६८ पृष्ठों में भूमिका और शेष में कथा वर्णित है। यों तो समस्त बाल-काण्ड उत्तमोत्तम बन पड़ा है पर उसमें भी वन्दना, मदन-दहन, नारद-मोह, प्रतापभानो-पाख्यान, पृथ्वी एवं अहिल्या की स्तुति, राम-जन्म छन्द, फुलवारी-वर्णन और धनुष-यज्ञ बहुत ही अद्‌भुत हैं। इस काण्ड के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

[ १ ]

बन्दौं गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरि मय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

सुकृत सम्भु तन बिमल बिभूती। मङ्गल मञ्जुल मोद प्रसूती॥
जन मन मञ्जु मुकुर मल हरनी। किये तिलक गुन गन बस करनी॥
गुरु पद रज मृदु मञ्जुल अंजन। नैन अमिय दृग दोष बिभञ्जन॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनौं राम चरित भव मोचन॥

[२]

जनम सिन्धु पुनि बन्धु बिष, दिन मलीन सकलङ्क।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द बापुरो रङ्क॥

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। गसइ राहु निज संधिहि पाई॥
कोक सोक प्रद पङ्कज दोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥

[३]

नृप सब नखत करहिँ उजियारी। टारि न सकहिँ चाप तम भारी॥
उयउ भानु बिनु स्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा॥
रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन दिखाया॥
तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रकटी धनु बिघटन परिपाटी॥

[४]

सुरन कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार।
सम्भु बिरोध न कुसल मोहिँ, बिहँसि कह्यो अस मार॥

तदपि करब मैं काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
पर हित लागि तजइ जो देही। सन्तत सन्त प्रशंसहिँ तेही॥
अस कहि चलेउ सबहि सिर नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
तब आपन प्रभाव बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥

# अयोध्या-काण्ड ।

इस काण्ड की रचना अन्य काण्डों से इतनी उत्तमतर है कि इसकी प्रशंसा करने के लिए कोष में शब्द नहीं मिलते। जिस प्रकार की कथा जितनी उत्तमता से इस ग्रन्थ-रत्न में पाई जाती है उसकी आधी भी अन्यत्र नहीं मिलती। अयोध्या-काण्ड की रचना न केवल भाषा-साहित्य की बरन संसार के समस्त साहित्यों की रत्न है। ऐसी मनमोहनी कविता हमने किसी भाषा में नहीं देखी। इस काण्ड को उलटते ही जान पड़ता है कि मानो पाठक आनन्द-सागर में निमग्न हो जाता है। अलौकिकानन्द देने वाली और सुन्दर काव्य की इतनी उत्तम और प्रचुर सामग्री किसी और ग्रन्थ में नहीं मिलती। इसकी कथा यों है कि विवाह के पीछे रामचन्द्रजी बहुत दिनों तक अवध में रहते रहे तब राजा दशरथ ने उन्हें युव-राज करना चाहा। इस समय भरतजी अपने ननिहाल में थे। राजा की तृतीय रानी केकयी ने मन्थरा की सलाह से राजा से बर मांग कर भरत को युवराज कराया और रामचन्द्र को चौदह वर्ष के लिए बनबासी करा दिया। रामचन्द्र के साथ लक्ष्मण और सीता भी चले गये। इस स्थान पर केकयी मन्थरा एवं केकयी दशरथ की बातचीत में कविता ख़तम कर दी गई है। राम-लक्ष्मण और राम-सीता की बातचीत भी वैसीही है। कौशल्या के व्याख्यान से जान पड़ता है कि पुत्र-बधू का कैसा सम्मान होना चाहिए। रामचन्द्र गुह निषाद-पति से मिलकर चित्रकूट चले गये और इधर उनके बिरह में दशरथ ने तन त्याग दिया। भरत के

आने पर सभों ने उनसे राज्य ग्रहण करने का आग्रह किया परन्तु वे रामचन्द्र को बुलाने बन को सपरिवार और ससैन गये। यहाँ पर भरत के व्याख्यान देखने ही योग्य हैं, उनका वर्णन नहीं हो सकता। मार्ग में उनके प्रेम के वर्णन में कवि ने अपनी समस्त कवित्व-शक्ति ख़र्च कर डाली है। भरत को ससैन्य आते देख कर केवट-राज को गंगा के समीप तथा लक्ष्मण को चित्रकूट पर उनके युद्धोन्मुख होने का सन्देह उपस्थित हुआ। इन अवसरों पर गोस्वामीजी कृत वीररस का वर्णन बड़ा ही उत्तम हुआ है। इनके ग्रन्थों से विदित होता है कि ये महाशय सब प्रकार के वर्णनों को बड़ी ही सफलतापूर्वक कर सकते थे। राम और भरत के वार्त्तालाप में काव्य-प्रौढ़ता का अन्त हो गया है। ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर वार्त्तालाप कराने में किसी भाषा का कोई भी कवि समर्थ नहीं हुआ है। अयोध्या-कांड के वार्त्तालापों की यह ख़ास बात है कि किसीने कभी किसी दूसरे की बात नहीं मानी परन्तु इस सौंदर्य्य से बातचीत हुई कि किसी मनुष्य को अनुचित भाषी अथवा बुरा कोई भी नहीं कह सकता चाहे जितना विकट समालोचक वह क्यों न हो। भरतजी रामचन्द्रजी की पादुका लेकर और चित्रकूट के सब स्थानों को देख कर, अयोध्या लौट आये। अयोध्या-कांड के प्रथमार्द्ध के नायक रामचन्द्र और द्वितीयार्द्ध के भरत हैं। कहते हैं कि गोस्वामीजी ने पहले सीयस्वयंबर और अयोध्या-कांड की कथा बनाई थी और इतना बन जाने पर उन्हें समग्र रामायण बनाने की लालसा हुई और तब उन्होंने शेष ग्रन्थ भी बनाया। इस बात की पुष्टि इस द्वितीयार्द्ध में भरत के नायक हो जाने से होती है।

इस कांड में इन्होंने लिखा है कि गुरु रामचन्द्र से अधिक है—
तुमते अधिक गुरहिँ जिय जानी। सकल भाव सेवहिँ सनमानी॥
बाल-कांड में इन्होंने गुरु को शंकर रूप बताया है, 'बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।' गोस्वामीजी ने उत्तम कामों की नामावली वाल्मीकिजी और रामचन्द्र के वार्त्तालाप में गिनाई है। उससे समझ पड़ता है कि ये किस काम को कितना उत्तम समझते थे। इस कांड में १५३ पृष्ठ हैं। इसके वर्णनों में किसी स्थान को उत्तम और किसीको साधारण कहना गोस्वामीजी से घोर अन्याय करना है। इस कांड का एक अक्षर भी साधारण नहीं है। यह सब स्थानों पर एक रस परम मनोहर और औवल दर्जे का है। गोस्वामीजी हृष्टागण की परस्पर वार्त्ता बड़ी ही उत्तम करवाते थे। इसके उदाहरण जनकपुर के लोगों, राम की बनयात्रा के मार्ग वालों एवं भरत की बनयात्रा के मार्गस्थ जनों के कथनों में देख पड़ेंगे। इस कांड-रत्न की पूरी प्रशंसा करनी असम्भव है।

उदाहरण:—

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई, रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नैन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई, राखउँ प्रान जानकिहि लाई॥
कलप बेलि जिमि बहुबिधि लाली, सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा, जानि न जाय काह परिनामा॥
पलँग पीठि तजि गोद हिँडोरा, सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा॥
जिवन मूरि जिमि जुगवत रहिऊँ, दीप बाति नहिँ टारन कहिऊँ॥
सो सिय चलन चहति बन साथा, आयसु काह होय रघुनाथा॥
चन्द किरिन रस रसिक चकोरी, रबि रुख नैन सकइ किमि जोरी॥

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली, जियइ कि लवन पयोधि मराली ॥
सुरसर सुभग बनज बनचारी, डाबर याेग कि हंसकुमारी ॥

( २ )

कानन कठिन भयंकर भारी, घोर घाम हिम बारि बयारी ॥
कुस कंटक मग कंकर नाना, चलब पयादेहि बिन पद त्राना ॥
कंदर खोह नदी नद नारे, अगम अगाध न जाहिँ निहारे ॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा, करहिँ नाद सुनि धीरज भागा ॥
डरपहिँ धीर गहन सुधि आये, मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये ॥
नव रसाल बन बिहरन सीला, सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥

( ३ )

जे पुर गाँउँ बसहिँ मग माहीं, तिनहिँ नागसुर नगर सिहाहीं ॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये, धन्य पुन्यमय परम सुहाये ॥
जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं, तेहि समान अमरावति नाहीं ॥
परसि राम पद पदुम परागा, मानति भूरि भूमि निज भागा ॥

( ४ )

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ, जियत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥
समर मरन पुनि सुरसरि तीरा, राम काजु छन भंगु सरीरा ॥
भरत भाय नृप मैं जन नीचू, बड़े भाग अस पाइय मीचू ॥
स्वामि काज करिहौं रन रारी, जस धवलिहौं भुवन दस चारी ॥

( ५ )

कुटिल कुबन्धु कुअौसर ताकी, जानि राम बन बासु यकाकी ॥
करि कुमन्त्र मन साजि समाजू, आए करन अकंटक राजू ॥

कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई, आए दल बटोरि दोउ भाई ॥
जो जिय होति न कपट कुचाली, केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ॥
उठि कर जोरि रजायसु माँगा, मनहुँ बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा, साजि सरासन सायक हाथा ॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ, भरतहिँ समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फल पाई, सोवहु समर सेज दोउ भाई ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू, लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेइ भरतहिँ सैन समेता, सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥

( ६ )

तिमिरि तरुन तरनिहि मकु गिलई, गगन मगन मकु मेघहि मिलई
गोपद जल बूड़हि घट जोनी, सहज छमा बरु छाँड़इ छोनी ॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई, होइ न नृप मद भरतहि भाई ॥
लखन तुमारि सपथ पितु आना, सुचि सुबन्धु नहिँ भरत समाना ॥

( ७ )

तुम तौ देउ सरल सिख सोई, जो आचरत मोर हित होई ॥
जद्यपि यह समुझत हौं नीके, तदपि होत परितोष न जी के ॥
बादि बसन बिनु भूखन भारू, बादि बिरति बिनु बरम्ह बिचारू ॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा, बिनु हरि भगति जाइ जप जोगा ॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई, बादि मोर सब बिनु रघुराई ॥
मोहि समान को पाप निवासी, जेहि लगि राम सीय बन बासी ॥
केकइ सुवन जोग जग जोई, चतुर बिरंचि रचा मोहि सोई ॥
दसरथ तनय राम लघु भाई, दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई ॥

डरु न मोहिँ जगु कहइ कि पोचू , परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥
एकइ उर बस दुसह दवारी , मोहिँ लगि भे सिय राम दुखारी ॥

नम्बर तीन पर जो चार चैापाई उद्‌धृत की हुई हैं उनमें जितना साहित्य का सार कूट कूट कर भरा है उतना शायद संसार-सागर के किसी भाषा के किसी पद्य में कहीं भी न पाया जायगा। जहाँ तक हम लोगों ने कविता देखी या सुनी है हम ने इन पंक्तियों कासा स्वाद क्या अँग्रेज़ी क्या फ़ारसी क्या हिन्दी क्या उर्दू क्या संस्कृत, किसी भाषा में कहीं नहीं पाया।

अँग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध कवि शेक्सपियर कृत जूलियस सीज़र नामक ग्रन्थ में ऐण्टनी का एक व्याख्यान दिया हुआ है जिसके समान समस्त अँग्रेज़ी साहित्य में दूसरा व्याख्यान नहीं माना जाता, पर अयोध्या-काण्ड के अनेक व्याख्यानों के सामने उसका भी मान-मर्दित होता है। कहाँ तक प्रशंसा करें अयोध्या-काण्ड सा कोई दूसरा ग्रन्थ देखने में आना नितांत असम्भव प्रतीत होता है।

## आरण्य-काण्ड।

इसमें सूर्पनखा के कुरूप करने, खर, दूषण, त्रिशिरा के मारे जाने और सीता-हरण की कथा वर्णित है। इसमें ४२ पृष्ठ हैं। जान पड़ता है कि बदचलन स्त्रियों के नाक काटने की रीति रामचन्द्र ही की चलाई है। इसमें खर-दूषण-युद्ध और सीता-हरण की कथा उत्तम है। अन्त में नारद और रामचन्द्रजी के वार्तालाप में सन्तों के लक्षण उत्तम कहे गये हैं।

(१)

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥
अवलोकि खर तर तीर। मुरि चले निसिचर बीर।
भे क्रुद्ध तीनिउ भाय। जो भाजि रन ते जाय॥
तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान।
नभ उड़त बहु भुज मुण्ड। बिन मौलि धावत रुण्ड॥

(२)

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाय माथ स्वारथ रत नीचा॥
नवनि नीच कइ अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥

# किष्किन्धा-काण्ड।

इस में हनुमान द्वारा राम सुग्रीव की मित्रता हुई और राम ने बालि बानर राज का बध करके सुग्रीव को पम्पापुर का राजा कर दिया। उधर सुग्रीव राज्य करने लगे और इधर रामचन्द्र वर्षा भर प्रवर्षण पर्वत पर रहे। इस स्थान पर वर्षा तथा शरद ऋतु का बड़ा ही अच्छा और शिक्षाप्रद वर्णन है परन्तु उसका बृहदंश श्रीमद्भागवत से अनुवाद किया गया है। शरद ऋतु में सुग्रीव ने सीता खोजने को कपिगण भेजे। इस काण्ड में केवल १८ पृष्ठ हैं परन्तु इसकी कविता परम प्रशंसनीय है। प्रायः लोग 'मास

दिवस तहँ रहेउँ खरारी' के अर्थ लगाने में एक महीना नहीं मानते अतः हम बाल-काण्ड से एक प्रमाण दिये देते हैं।

कौतुक देखि पतङ्ग भुलाना। एक मास तेहि जात न जाना॥

मास दिवस का दिवस भा, मरम न जानै कोय।

गोस्वामीजी इस बात पर प्रायः ज़ोर दिया करते हैं कि राम बड़े ही कृपालु हैं और फिर भी यदि लोग उन्हें न भजें तो वे क्यों दुखारी न हों? इसमें मित्रता के विषय उत्तम विचार कहे गये हैं। पण्डितों का विचार है कि इस काण्ड से गोस्वामीजी ने काशीजी में रचना आरम्भ की है क्योंकि इसकी बन्दना में काशीजी की स्तुति पहले पहल की गई है।

उदाहरणः—

(१)

जे न मीत दुख होहिँ दुखारी। तिनहिँ बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मीत क दुख रज मेरु समाना॥
जिन के असि मति सहज न आई। ते सठ हठि कत करत मिताई॥
बिपति काल कर सत गुन नेहा। स्तुति कह सन्त मीत गुन एहा॥

(२)

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपइ मन मोरा॥
दामिनि दमकि रह न घन माहीं। खल कइ प्रीति यथाथिर नाहीं॥
बरसहिँ जलद भूमि नियराये। यथा नवहिँ बुध बिद्या पाये॥
सिमिटि सिमिटि जल भरइ तलावा। जिमि सतगुन सज्जन पहुँ आवा॥

खोजत कतहुँ मिलइ नहिँ धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहिँ दूरी ॥
ऊसर बरषइ तिनु नहिँ जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ॥

(३)

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कइ जसि करनी ॥
जल संकोच बिकल भइ मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा ॥

(४)

राम काज लगि तव अवतारा। सुनि कपि भयउ परबताकारा ॥
सिंह नाद करि बारहि बारा। लीलहि नाघौं जलधि अपारा ॥

## सुन्दर-काण्ड।

इसमें हनुमानजी समुद्र कूद कर लङ्का को गये और वहाँ सीताजी से मिल कर, अक्ष कुमारादि को मार कर मेघनाद द्वारा पकड़े गये। फिर लङ्का दहन करके उन्होंने रामचन्द्र से सब हाल कहा और वे सब सेना लेकर समुद्र के किनारे आये। यहीं बिभीषण राम से मिले। गोस्वामीजी ख़ास हनुमानजी के भक्त न थे नहीं तो उनके समुद्र लांघने पर यह लिख कर कि 'उमा न कछु कपि की अधिकाई, प्रभु प्रताप जो कालहि खाई,' उनके समस्त यश के गाहक क्यों बन बैठते? इनका तो यह सिद्धान्त था कि 'पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते, मानिय सकल राम के नाते' सो जिसका राम से जितना सम्बन्ध होता है ये उसको उतनाही माननीय समझते हैं।

गोस्वामीजी ने मन्दोदरी के सम्मुख सीता से रावण की बात चीत कराई है और फिर भी सीता प्रति रावण से यह कहला दिया कि अगर तू एक बार मेरी ओर देख ले तो मन्दोदरी आदि रानी तेरी अनुचरी करें। यह बात हमें अनुचित जान पड़ती है।

इस काण्ड में लङ्का-वर्णन उत्तम है। इस में ३२ पृष्ठ हैं।

उदाहरणः—

हैं सुत सब कपि तुमहि समाना। जातु धान भट अति बलवाना॥
मोरे हृदय परम सन्देहा। सुनि कपि प्रकट कीन्ह निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बल बीरा॥
सीता मन भरोस तब भयउ। पुनि लघु रूप पवन सुत लयऊ॥

(२)

देह बिसाल परम हरुवाइ। मन्दिर ते मन्दिर चढ़ि जाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। लपट झपट बहु कोटि कराला॥

# लंका-काण्ड।

इस काण्ड में सेतु-रचना, अंगद की बसीठी, मेघनाद, कुम्भकर्ण और रावण का युद्ध और पतन, सीता का अनल-प्रवेश, और बिभीषण के सिंहासनारूढ़ होने के वर्णन हैं। इसकी वन्दना उत्तम है और एक स्थान पर रामचन्द्र का ध्यान भी अच्छा दिखाया गया है। चन्द्रमा पर उक्तियां और उनमें आप-बीती का वर्णन भी अच्छा हुआ है। अंगद पैज में राज-सभा की गाम्भीर्य्य का ध्यान नहीं रक्खा गया है। गोस्वामीजी का युद्ध वर्णन प्रति दिन घोरतर

होता गया है और अन्त में रावण ने लक्ष्मण तक को पराजित कर दिया है। गोस्वामीजी ने उत्तरोत्तर युद्धोत्कर्ष बढ़ाने के विचार से मेघनाद युद्ध में उतनी उद्दण्डता नहीं दिखाई। वाल्मीकीय रामायण के देखने से जान पड़ता है कि मेघनाद ने दो बार राम-लक्ष्मण समेत समस्त सेना को जीत लिया और जब सब पुरुष प्रधान अचेत हो गये तो उस दशा में उनका मारना युद्ध-नियम के विरुद्ध समझ कर वह विजयी होकर लङ्का को चला गया। गोस्वामीजी ने नागपाश-वर्णन में केवल इतना ही कह दिया कि, ' नागपास बस भये खरारी " परन्तु वाल्मीकिजी ने कहा है कि उसने सब पुरुष प्रधानों के अंग प्रत्यंग बाणों द्वारा इस भाँति बेधित कर दिये थे कि किसी को हिलने की भी शक्ति नहीं रही थी। परन्तु वाल्मीकीय रामायण में युद्ध की दिनों दिन वह उत्कर्षता नहीं हुई है जो गोस्वामीजी को अभीष्ट थी। यही गुण ग्रीस के प्रसिद्ध कवि होमर में पाया जाता है जिसके कारण यूरोपीय साहित्य में उसकी बड़ी प्रशंसा है। गोस्वामीजी ने रावण द्वारा एक ही समय में क्रमशः रामचन्द्र को मूर्छित और बिभीषण, हनुमान और बानरी-सेना को पराजित करा दिया है और इसी प्रकार एक बार रामचन्द्र के अतिरिक्त शेष सेना को पराजित व मूर्छित करा दिया है। इतना करने पर भी गोस्वामीजी ने लङ्का के किसी भी वीर को पूर्णरूपेण विजयी होकर कभी नहीं जाने दिया और या तो किसी द्वारा उसे पराजित करा दिया या दुर्दशा करा डाली। एक बार मेघनाद और दूसरी बार रावण ने जब राम-समेत समस्त सेना को पराजित किया तब भी वे प्रसन्नतापूर्वक लङ्का नहीं जाने पाये वरन् दोनों ही को

जामवंत द्वारा मूर्छित होना पड़ा। इसी भाँति जब कुम्भकर्ण कपि सेना पराजित कर लङ्का जा रहा था और अपने भाई का अपमान मिटाने को बालि के भाई को काँख में दाबे था तब निर्बल सुग्रीव द्वारा उसके नाक कान कटवा लिये गये। गोस्वामीजी ने कुम्भकर्ण एवम् रावण के युद्ध बड़े ही भयंकर और प्रभावोत्पादक लिखे हैं और रावण का युद्ध बड़ी ही उत्तमता से कहा है।

ये महाशय रामभक्त होने के कारण रावण तथा अन्य निशाचर को दुष्ट, खल इत्यादि की उपाधियों से सदैव भूषित किया करते थे। इस महा कवि ने लङ्का और उत्तर-काण्डों में विविध व्यक्तियों द्वारा श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति बहुत ही उत्तम कराई है। प्रत्येक बिनती में निराला ही आनन्द प्राप्त होता है। समस्त रामायण में इस प्रकार की बिनतियाँ पचास साठ से कम न होंगी, और इसी प्रकार रामचन्द्र के शिखनखों की बाहुल्य है। इन दोनों विषयों की रचना में इस महाकवि ने अपनी अलौकिक कवित्व-शक्ति और पांडित्य का चमत्कार दिखलाया है।

लंका-कांड में बहुत लोगों ने कई स्थानों पर कई बार रावण को युद्ध न करने के वास्ते समझाया और मंदोदरी ने तो अनेक बार ऐसा किया परन्तु क्या मारीच क्या बिभीषण क्या माल्यवान क्या मंदोदरी क्या कुम्भकरण, सभों ने रामचन्द्र को परमेश्वर मान कर उसे उपदेश दिया है। मन्त्र-दाताओं में केवल प्रहस्त ने रामचन्द्र की ईश्वरता नहीं दिखलाई है और उसका उपदेश भी क्या ही प्रभाव-पूर्ण और गम्भीर है, और उससे प्रहस्त का पांडित्य और शूरता विदित होती है।

प्रथम बसीठि पठाइय नीती , सीतहिँ देइ करिय पुनि प्रीती ॥
नारि पाइ फिरि जाहिँ जो तौ न बढ़ाइय रारि ।
नाहिँ त सनमुख समर महँ तात करिय हठि मारि ॥
यह मत जो प्रभु मानहु मोरा , उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ॥

केवल मेघनाद ने रावण को कभी शिक्षा नहीं दी और उसे गोस्वामीजी ने बड़ा ही पितृभक्त, आज्ञाकारी, कार्य-कुशल तथा शूर माना है। जब माल्यवान के शांति उपदेश से रावण क्रोधित हो रहा था तब मेघनाद ने केवल इतना कहा कि—

कौतुक प्रात देखियहु मोरा , करिहौं बहुत कहत हौं थोरा ॥

और उसके इतने ही कथन पर रावण को पूर्ण विश्वास आगया। रामचन्द्रजी ने अयोध्या लौटते समय पहिले प्रयाग और अयोध्या का दर्शन करके तब त्रिवेणीजी में स्नान किया। इसमें कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है क्योंकि विमान ऊँचा उठने के कारण प्रयाग से अयोध्या देख पड़ना असम्भव नहीं।

उदाहरण—

( १ )

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा, उतरे सैन सहित अति भीरा ॥
सैल सृंग यक सुन्दर देखी , अति उतंग सम सुभ्र बिसेखी ॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए , लछिमन रचि निज हाथ डसाए ॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला , तेहि आसन आसीन कृपाला ॥
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा , बाम दहिन दिसि चाप निखंगा ॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना , कह लंकेस मन्त्र लगि काना ॥

बड़ भागी अंगद हनुमाना , चरन कमल चापत बिधि नाना ॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन , कटि निखंग कर बान सरासन ॥
यहि बिधि करुना सीव गुन धाम राम आसीन ।
ते नर धन्य जु ध्यान यहि रहत सदा लवलीन ॥

( २ )

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी , परम प्रताप तेज बल रासी ॥
मत्त नाग तम कुम्भ बिदारी , ससि केसरी गगन बनचारी ॥
बिथुरे नभ मुकता हल तारा , निसि सुन्दरी केर सिंगारा ॥
बिष संजुत कर निकर पसारी , जारत बिरहवंत नर नारी ॥

( ३ )

देखु बिभीषन दच्छिन आसा , घन घमंड दामिनी प्रकासा ॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा , होइ बृष्टि जनु उपल कठोरा ॥
कहइ बिभीषन सुनहु कृपाला , होइ न तड़ित न बारिद माला ॥
लंका सिखर रुचिर आगारा , तहँ दस कंधर केर अखारा ॥
छत्र मेघ डंबर सिरधारी , सोइ जनु जलद घटा अतिकारी
मन्दोदरी श्रवन ताटंका , सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥

( ४ )

जरत बिलोकेउँ जबहि कपाला , बिधि के लिखे अंक निज भाला ॥
नर के कर आपन बध बाँची , हँसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची ॥
सो मन समुझि त्रास नहिं मोरे , लिखा बिरंचि जरठ मति भोरे ॥

( ५ )

नभ चढ़ि बरखइ बिपुल अँगारा , महि ते प्रकट होहिं जलधारा ॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची , मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ॥
बरखि धूरि कीन्हेसि अँधियारा , सूझ न आपन हाथ पसारा ॥

( ६ )

मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ ।
उतरि दुर्ग ते बीर बर सनमुख चलेउ बजाइ ॥

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता , धन्वी सकल लोक-विख्याता ॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा , कहँ अंगद हनुमत बल सींवा ॥
कहाँ बिभीषनु भ्राता द्रोही , आजु सठहि हठि मारउँ ओही ॥
अस कहि कठिन बान संधाने , अतिसय क्रोध स्रवन लगिताने ॥
सर समूह सो छाड़इ लागा , जनु सपच्छ धावहिँ बहु नागा ॥
जहँ तहँ परत देखियहि बानर , सनमुख होइ न सके तेहि अवसर ॥
भागे भय व्याकुल कपि रिच्छा , बिसरी सबहिँ जुद्ध की इच्छा ॥
सो कपि भालु न रन महि देखा , कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेखा ॥

मारेसि दस दस बिसिख सब परे धरनि कपि बीर ।
सिंह नाद गरजत भयउ मेघनाद रनधीर ॥

( ७ )

भये क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे ।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद भय मारुत ग्रसे ॥
मंदोदरी उर कम्प कम्पति कमठ भू भूधर त्रसे ।
चिक्करहिँ दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ॥

इस कांड में ८० पृष्ठ हैं और इसकी कविता उत्तम है ।

## उत्तर-काण्ड ।

इसमें रामचन्द्र का अयोध्या-गमन, रामाभिषेक, राम-राज्य, देवताओं द्वारा राम-स्तुति, सन्त-महिमा, राम द्वारा प्रजाओं का

उपदेश, काग भुशुंडि का पूर्व जन्म-वृत्तान्त और मोह, ज्ञान-भक्ति भेद, और राम-कथा-माहात्म्य का वर्णन है। काग-भुशुंडि के पूर्व जन्म में गुरु-माहात्म्य पर ज़ोर दिया गया है तथा कलि-वर्णन भी है और भुशुंडि मोह में राम-बाल-लीला का अच्छा वर्णन हुआ है। ज्ञान-भक्ति-भेद में ज्ञान-दीपक के परम परिश्रम से जलाये जाने और परम सुगमता से बुझ जाने का कथन कुछ उपहासास्पद हो गया है। गोस्वामीजी ने भक्ति को प्रधान रक्खा है। इन्होंने निम्न दोहे द्वारा नानक, कबीर, दादूपन्थादि की निन्दा की है:—

कलि मल ग्रसेउ धरम सब गुपुत भये सद ग्रन्थ।
दम्भिन निज मत कलपि करि प्रकट कीन्ह बहु पन्थ॥

जिस प्रकार गोस्वामीजी ने कलिधर्म के विषय भविष्य वाणी सी कही है उसी प्रकार भारतेन्दुजी ने भी किया है। इन वर्णनों से इन कविरत्नों की पैनी दृष्टि तथा संसार-चक्र की गति परखने की शक्ति प्रकट होती है। कुछ महाशयों का मत है कि उत्तर-कांड रामायण के कांडों में सर्वोत्कृष्ट है। हमारे मत में इस कांड द्वारा गोस्वामीजी ने अपने मतों का पूरा वर्णन अवश्य किया है परन्तु काव्य की दृष्टि से हम इसे ऐसा नहीं मान सकते। इसमें विनती, कलिधर्म्म, भुशुंडि कथा और ज्ञान-दीपक का वर्णन अच्छा है। रामचन्द्रजी के आने के समय भरत की उत्कंठा भी ख़ूब दिखाई गई है।

काव्योत्कृष्टता की दृष्टि से हम सातों कांडों को निम्नानुसार क्रम-बद्ध करेंगे:—

अयोध्या, बाल, उत्तर, लंका, किष्किन्धा, सुन्दर, आरण्य।

रावण के विषय इस महाकवि ने लिखा है कि:—

बोस पयोधि अगाध अपारा । को अस बोर जु पावै पारा ॥

इसी प्रकार गोस्वामीजी के साते कांडों के विषय कहा जा सकता है कि:—

सात पयोधि अगाध अपारा। को अस सुकबि जो पावै पारा ॥

उत्तर-कांड में ८२ पृष्ठ हैं और इसकी कविता सर्वथा प्रशंसनीय है।

उदाहरणः—

(१) जै सगुन निर्गुन रूप राम अनूप भूप सिरोमने ।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने ॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे ।
जै प्रनतपाल दयाल प्रभु संयुक्त सक्ति नमामहे ॥
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी ।
नख निर्गता सुर बन्दिता त्रैलोक्य पावनि सुरसरी ॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक जिन लहे ।
पद कंज द्वंद मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे ॥

[२]

जो कछु झूँठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुनवन्त बखाना ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी । कलिजुग सोइ ज्ञानी बैरागी ॥
जाके नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
मारग सोइ जाकहँ जोइ भावा । पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
नारि बिबस नर सकल गोसाईं । नाचहिँ नट मरकट की नाईं ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी । भजहिँ नारि पर पुरुष अभागी ॥

पर तिय लम्पट कपट सयाने। लोभ मोह ममता लपटाने॥
नारि मुई घर सम्पति नासी। मूड़ मुड़ाय भए संन्यासी॥
बहु दाम सँवारहिँ धाम जती। बिषया हरि लीन्हि गई बिरती॥
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥
धनवन्त कुलीन मलीन अपी। दुज चिह्न जनेउ उघार तपी॥
कलि बारहि बार दुकाल परै। बिन अन्न दुखी सब लोक मरै॥
अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिँ मूढ़ न धर्मरता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं॥
लघु जीवन संबत पञ्चदसा। कलपान्त न नास गुमान असा॥

[३]

जय राम रमा रमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनम्॥
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुञ्ज दिवाकर तेज अनी॥
बहु रोग बियोगनि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ये॥
भव सिन्धु अगाध परे नर ते। पद पङ्कज प्रेम न जे करते॥
अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिनके पद पङ्कज प्रीति नहीं॥
अवलंब भवंत कथा जिनके। भव भीति कदापि नहीं तिनके॥
नहिँ राग न रोष न मान मदा। तिनके सम वैभव वा बिपदा॥
सनमान निरादर आदरहीं। सोइ सन्त सुखी बिचरन्त मही॥

[४]

जोबन जुर केहि नहिँ बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥
चिन्ता साँपिनि काहि न खाया। को अस जाहि न व्यापी माया॥

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस बीरा॥
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनइ पारा॥
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥
सोइ सरबग्य गुनी बर ग्याता। सोइ महि मंडन पण्डित दाता॥
धरम परायन सोइ कुल जाता। राम चरन जा कर मन राता॥
नीतिनिपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक सोइ जाना॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जोइ छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा॥
साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद बिरक्त संन्यासी॥
जोगी सुर अरु तापस ज्ञानी। धरम निरत पण्डित बिज्ञानी॥
तरहिँ न बिनु सेये मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥

वह न जाने कौन पवित्र घड़ी थी जब महात्मा तुलसीदासजी ने रामचरितमानस निर्माण करने के लिए अपनी लेखनी सञ्चालित की थी। हिन्दुओं को ऐसा शुभ मुहूर्त बहुत बार नहीं आया। इस ग्रन्थरत्न की २२ कोटि हिन्दुओं में जो महिमा है उसका उल्लेख करना हमारी निर्बल लेखनी की शक्ति से बाहर है। समस्त भूमण्डल के सप्तमांश मानवजाति की आज दिन यह पुस्तक वेद, बाइबुल, ज़ंदावस्ता, क़ुरान, या जो कुछ कहिए हो रही है। इसका आधि-पत्य हम लोगों पर जितना प्रबल है उतना शायद बाइबुल का ईसा-इयों पर भी न होगा। हमको आश्चर्य्य होता है कि जिस समय यह कविकुल-चूड़ामणि लेखनी हाथ में ले अपनी पीयूष-वर्षिणी कविता द्वारा संसार को आप्यायित करने लगता होगा उस समय स्वर्गीय

कविवरों की आत्मायें आनन्द सागर के तरङ्गों में किस प्रकार हिलोरें लेने लगती होंगी। जितना सर्वप्रिय यह ग्रन्थरत्न है उतना कोई भी अन्य ग्रन्थ नहीं हो सकता। केवल अक्षर ज्ञान रखने वालों से लेकर वेदान्ती पर्य्यन्त इसका समानरूप से आदर करते हैं और "निज पौरुष परमान ज्यौं मसक उड़ाहिँ अकास" के अनुसार इसकी प्रशंसा करते हैं। इसकी कविता में ऐसी कुछ मोहिनी शक्ति है और भिन्न भिन्न रुचि वाले मनुष्यों के उपयोगी इसमें इतनी बातें मिलती हैं कि सभी श्रेणियों के मनुष्यों को इससे आनन्द मिलता है। दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ अभी पठन-पाठन की प्रथा समीचीन रूप से प्रचलित नहीं होने पाई है और अच्छे से अच्छे ग्रन्थों को मुद्रण का सौभाग्य ही प्राप्त नहीं होता और यदि हुआ भी तो दो तीन संस्करणों के आगे बढ़ना बहुत ही कठिन है। ऐसी दशा में भी इस ग्रन्थरत्न के हज़ारों ही संस्करण वास्तव में हो गये होंगे और होते जाते हैं और अधिकांश संस्करणों में दस हज़ार से कम प्रतियाँ नहीं छापी जातीं। प्रेस वालों के वास्ते तो वास्तव में महात्मा तुलसीदासजी कल्पवृक्ष ही हो गये हैं क्योंकि जब उन्हें कोई काम न हुआ तो झट रामायण की दस पाँच हज़ार प्रतियाँ छाप डालीं और लाभ उठाने लगे। रोचकता में भी यह ग्रंथ अद्वितीय है। ग्राउस साहब ने अँगरेज़ी गद्य में और मुंशी द्वारिकाप्रसाद उफ़ुक ने उर्दू पद्य में इसका अनुवाद किया है। कोई भी सुकवि इतना बड़ा भक्त नहीं हुआ है इसी कारण इतना भक्ति पूर्ण काव्य करने में समर्थ नहीं हुआ। हज़ारों मनुष्य नित्य प्रति पूजा के साथ इसका पाठ करते हैं और इसके आद्योपान्त पाठ

करने की प्रथा बहुत प्रचलित है। एक बार एक मुंशीजी से हमने कहा कि हम तो रामायण का सदैव इस क्रम से पाठ करते हैं कि श्रीगणेश से इति श्री पर्य्यन्त करके फिर प्रारम्भ से ही लगा लगा दिया। इस पर मुंशीजी गद्गद होकर तुरन्त ही बोल उठे कि जनाब यह तो क़ायदा ही है। यह क्या कि "आज यहाँ कल वहाँ; मेंढक की तरह उछलता फिरे"। अनेक स्थानों पर रामायण-समाज स्थापित हैं और ठौर ठौर बाजे के साथ इसका गान किया जाता है। पुराणों की भाँति इसका पाठ होता है जिसे सुनने को सहस्रों नर-नारी एकत्र होते हैं। यह सौभाग्य आज तक हिन्दी के किसी भी अन्य ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हुआ। इसकी पुस्तकें देवालयों में रक्खी रहती हैं और उनका देवताओं की भाँति पूजन होता है। जन्त्रों में मढ़ कर लोग इसे गले और बाहु में बाँधते हैं। कहाँ तक कहा जाय गीता की भाँति यह ग्रन्थरत्न भी हिन्दू-धर्म में इतना मिल गया है कि उसका एक अंग हो गया है। इस ६०० पृष्ठ के बृहद्ग्रन्थ में प्रायः सभी विषय आ गये हैं। गोस्वामीजी ने प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में संस्कृत के श्लोकों और भाषा-छन्दों द्वारा देवताओं की स्तुतियाँ कीं हैं और उत्तर-काण्ड में आठ श्लोकों की एक रुद्राष्टक बनाई है। इस ग्रन्थ की बहुत से कवियों ने स्तुतियाँ, आरती, श्लोक इत्यादि बनाये हैं।

राम बाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान कर, सुरतरु तुलसी तोर॥

गोस्वामीजी के ग्रन्थों के विषय जो कुछ हमें कहना था ऊपर कह चुके, और अब उनके ग्रन्थों और विशेषतया रामायण के

आधार पर उनके गुण-अवगुण का कुछ भाग यथाशक्ति यहाँ दिखाने का प्रयत्न करते हैं। शेष वर्णन आगे यथा स्थान मिलेगा।

( क १ ) गोस्वामीजी कथा वर्णन में कोई बात यकबारगी नहीं कह देते वरन आनेवाली बड़ी बड़ी घटनाओं की प्रथम से सूचना दे देते हैं कि जिससे पाठक को उनका दिग्दर्शन प्रथम से हो रहे। इसी प्रकार औचित्य और अनौचित्य के विषय भी ठौर ठौर पर कुछ लिखते रहते हैं जिसमें पाठक उनसे सहमत हो जावें।

दच्छ न कछु पूँछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता॥

यहाँ कवि दक्ष के प्रतिकूल पाठकों का क्रोध भड़का रहा है।

तुलसी जसि भवितव्यता, तइसिय मिलइ सहाइ।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लइ जाइ॥

यहाँ भानुप्रताप पर आनेवाली विपत्ति का दिग्दर्शन कराया गया है यद्यपि अभी उसका कहीं पता भी नहीं है।

देखि राम छबि कोउ अस कहई। जोग जानकी यह बर अहई॥
असि प्रतीति तिनके मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥

बाल-काण्ड से ही राम-विषयक—

प्रीति पुनीत भरत कइ देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिसेखी॥

पुर नारि सकल पसारि अंचल, बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिय सुचारिउ भाइ यहि पुर, हम सुमंगल गावहीं॥

( बाल-कांड )

सब के उर अभिलाख अस, कहहिँ मनाइ महेस।
आप अछत जुबराज पद, रामहिँ देइ नरेस॥

सुबस बसिहि पुनि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुएहु मेटि जाइहि नहिँ काऊ॥
सीयकि पिय सँग परिहरिहि, लखन कि रहिहहिँ धाम।
भरत कि भोगब राजपद, नृप कि जियहिँ बिनु राम॥
भोरेहु भरत न पेलिहहिँ, मन महँ राम रजाइ।
करिय न सोच सनेह बस, कहेउ राउ बिलखाइ॥

यह वाक्य जनक ने अपनी रानी से जब भरत राम को मनाने गये थे तब कहा था (अयोध्या-काण्ड)। "निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाइ प्रन कीन" (यह प्रण रामचन्द्रजी ने सीता-हरण के प्रथम किया था)।

यहि लागि तुलसीदास इनकी कथा संछेपहि कही।
रघुबीर सर तीरथ सरित तन त्यागि गति पैहैं सही॥

त्रिजटा का स्वप्न भी इसका प्रमाण है (सुन्दर-काण्ड)।

जो तेहि आजु बधे बिन आवौं। तो रघुपति सेवक न कहावौं॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरिहि सुरारी॥
(लङ्का-काण्ड)

(क २) ये महाशय अपने को तुरन्त मुख्य कथा पर पहुँचा देते हैं और अरोचक तैयारियों में समय नष्ट नहीं कराते।

तापस नृपहिँ बहुत परितोखी। चला महा कपटी अति रोखी॥
नृप हरखे पहिँचानि गुरु, भ्रमबस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर, बिप्र कुटुम्ब समेत॥
(बाल-काण्ड)

इनको रावण का कथन शीघ्रता से करना था अतः केवल तीन चौपाइयों में उस राजा भानुप्रताप का नाश कह दिया जिसकी कथा आठ पृष्ठ से कहते चले आते थे।

खर दूषन पहँ गइ बिलखाता। धिक धिक तव पौरुष बल भ्राता॥
तेहि पूँछा सब कहेसि बुझाई। जातु धान सुनि सैन सजाई॥
(आरण्य-काण्ड)

(क ३) गोस्वामीजी अमुकोवाच कहाये बिना बात कहा देते हैं परन्तु यह विदित हो जाता है कि किसने बात कही। इसका उदाहरण उपर्युक्त छन्द भी है।

अति सै देखि धरम कइ हानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥
गिरि सरि सिन्धु भार नहिँ मोही। जस मोहिँ गरुव एक पर दोही॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥
जो बसिष्ठ कछु हृदय बिचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा॥
(बाल-काण्ड)

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बन्धु न होइ मोर यह काला॥
(किष्किन्धा-काण्ड)

निसिचर मारि तुम्हैं लै जैहैं। तिहुँ पुर नारदादि जस गैहैं॥
हैं सुत सब कपि तुमहि समाना। जातु धान भट अति बलवाना॥
(सुन्दर-काण्ड)

(क ४) बड़ी बड़ी घटनाओं में गोस्वामीजी आकाश-वाणी करवा दिया करते थे।

महादेवजी मन में जब सती-त्याग का निश्चय करके चले तब—

चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥

पार्वतीजी के तपस्यांत पर जो गगन गिरा हुई थी वह कुछ उचित से विशेष लम्बी है।

मनु और सत्यरूपा जब तपस्या करते थे तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश उनके पास आये और बोले कि वर माँगो परन्तु वह नहीं बोले, इस पर ईश्वर ने उन्हें अनन्य-भक्त समझा और—

माँगु माँगु बर भइ नभ बानी। परम गँभीर कृपामृत सानी॥

तब उन्होंने परमेश्वर के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की और ईश्वर ने दर्शन देकर उनके यहाँ अवतार लेना भी स्वीकार किया। इससे विदित होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश से गगन-गिरा से कोई सम्बन्ध नहीं था।

राजा भानुप्रताप के यहाँ गगन-गिरा बहुत छोटी होकर भ्रामक हो गई और राजा के शापित हो जाने पर राजा की निर्दोषता के बाबत उसे फिर कहना पड़ा।

राम-जन्म-सम्बन्धी गिरा कुछ भ्रामक है। इसमें कहा गया है कि मैं कश्यप अदिति को वरदान दे चुका हूँ और वही दशरथ और कौशल्या रूप हैं जिनके यहाँ मैं अवतार लेकर नारद वचन सत्य करूँगा। मेरा अवतार परमशक्ति के समेत होगा। यह वाणी ब्रह्माजी समेत सब देवताओं ने सुनी थी और इसके विषय लिखा है कि—

गगन ब्रह्म बानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥

अतः यह वाणी स्वयम् ईश्वर की थी और गोस्वामीजी ने रामचन्द्र को परमेश्वर मान कर उन्हें "बिधि हरि बिष्णु नचावन हारे" कहा भी है। फिर नारद वचन सत्य कैसे हुआ क्योंकि उन्होंने तो विष्णु को शाप दिया था। बात यह है कि गोस्वामीजी परब्रह्म को विष्णु से पृथक् और बड़ा मानते थे और उन्हीं का अवतार राम को मानते थे, परन्तु कभी कभी उनको परब्रह्म और विष्णु में भ्रम हो जाता था। इस गिरा में मनु सत्यरूपा के स्थान पर कश्यप अदिति का नाम भ्रमवश आ गया है क्योंकि मनु सत्यरूपा की तपस्या में कह दिया गया है कि वही दशरथ और कौशल्या होंगे।

एक बार भरत-विषयक लक्ष्मण का सन्देह निवृत्त करने को और दूसरी बार भुशुण्डी विषयक लोमस का आशीर्वाद सत्य करने को गगन-गिरा हुई थी। रामायण में कुल आठ बार गगन-गिरा हुई।

( क ५ ) गोस्वामीजी निन्द्य मनुष्यों पर कथा-वर्णन में सदैव बड़ा क्रोध प्रकट करते हैं।

देखा सुबस करम मन बानी। तब बोला तापस बक ध्यानी॥

एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि।

तापस नृपहिँ बहुत परितोषी। चला महा कपटी अति रोषी॥

बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोप गृह जाहु।

यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मतिमन्द।

यहि पापिनिहिँ बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ॥

कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥

सुरपति सुत धरि बायस भेखा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥

अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
तासन आइ कीन्ह छल, मूरख अवगुन गेह॥

इसी भाँति निशाचरों को बात बात पर गालिप्रदान किया गया है।

(क ६) गोस्वामीजी ने रामायण की कथा में अपनी ओर से कुछ बढ़ा घटा देना स्वयम् लिख दिया है कि—"नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगदितः क्वचिदन्यतोपि" सो इनकी कथा कहीं वाल्मीकिजी से पृथक् हो जाती है। इन्होंने स्वयम्बर के समय सीताजी को छोटी कन्या की भाँति नहीं दिखलाया है और रामचन्द्र से धन्वा सभा में भङ्ग कराया है न कि सभा हो जाने के पीछे एकान्त में। जनकजी का प्रण केवल धनुष उठाने और चढ़ाने का था नकि उसे तोड़ने का परन्तु सज्जित करके उसे रामचन्द्रजी ने तोड़ भी डाला था अतः रामजी से स्वल्प मात्र दूषण हटाने को इन्होंने उसके भंग करने ही का प्रण कराया है। इन्होंने रामचन्द्र का प्रभाव बढ़ाने के अभिप्राय से परशुरामजी को सभा में बुलाया। अन्य रामायणों में बरात लौटती समय रास्ते में परशुराम का आना कहा गया है। गोस्वामीजी ने यह नहीं लिखा कि परशुराम का तेज भी रामचन्द्र ने ग्रहण किया। इसका कारण यह है कि ये रामचन्द्रजी को परमेश्वर और परशुरामजी को विष्णु का अवतार मानते थे अतः परमेश्वर में वैष्णव तेज का होना कैसे लिखते। जयंत ने काग होकर सीता के चरण में चोंच नहीं लगाई थी वरन् उन्हें वस्त्रहीन करने का प्रयत्न किया था। गोस्वामीजी ने अपनी भक्ति के कारण उसकी प्रेमासक्ति न लिख कर चरण में चोंच• मारना लिख दिया है।

( क ७ ) इन्होंने समय और स्थान को कहीं कहीं बहुत बढ़ा कर लिखा है—बीते संबत सहस सतासी, तजी समाधि संभु अबिनासी। कह मुनि तात भयउ अँधियारा, जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा। ( यह सत्तर जोजन भानु प्रताप एक ही दिन की शिकार में चले गये थे ) मास दिवस का दिवस भा मरमु न जानइ कोइ।

( क ८ ) युद्ध वर्णन में इन महाशय ने प्रथम दिन हनुमान और अंगद को प्रधान रक्खा है और एक ही दिन के युद्ध में "आधा कटक कपिन संहारा"। द्वितीय दिन मेघनाद की प्रधानता रही, परन्तु ये विजयी निशाचरों को भी किसी न किसी प्रकार नीचा दिखा दिया करते थे। मेघनाद ने जब लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया तब वह उन्हें उठा ही न सका, और इसी प्रकार उन्हें मूर्छित करके रावण भी नहीं उठा सका और हनुमानजी के मूका लगने से आपही गिर पड़ा। इसी प्रकार कई और घटनायें कही गई हैं जिनका उल्लेख हम लङ्का-काण्ड की समालोचना में कर चुके हैं। जान पड़ता है कि गोस्वामीजी की भक्ति इन्हें निशाचरों की प्रसन्नता में कुछ न कुछ दुख मिला देने पर बाधित करती थी। तृतीय दिन कुम्भकर्ण ने समस्त बानरीय सेना पराजित कर दी और रामचन्द्रजी को पहले पहल घोर युद्ध करके उसका बध करना पड़ा। रामचन्द्र की द्वितीय दिन की लड़ाई बहुत स्वल्प है। चौथे दिन मेघनाद ने समस्त सेना को बहुत व्याकुल किया और लक्ष्मण को मोहित करके रामचन्द्र को भी नागपाश से बाँध लिया। मेघनाद बध के पश्चात् पाँचवें दिन स्वयम् रावण युद्धार्थ आया। इस अवसर पर उसके पराक्रम को

कुम्भकर्ण और मेघनाद से अधिक दिखाने के अभिप्राय से इन्होंने पहले बिभीषण से यह विचार कराया कि रथी रावण से राम पियादे कैसे लड़ सकेंगे, और फिर इन्द्र से भी यही सोच विचार करा के रथ भिजवा दिया। कुम्भकर्ण और मेघनाद के युद्ध में कभी इसका विचार भी किसी को नहीं हुआ था। केशवदास ने भी कुछ यही समझ कर लिखा है "चढ़ि हनूमंत पर रामचन्द्र तब रावण रोक्यो जाई"।

वाल्मीकिजी ने लक्ष्मणजी के रावण द्वारा शक्ति लगने पर द्रोणाचल मँगवाया है परन्तु गोस्वामीजी ने यह महत्त्व इस कारण मेघनाद को दिया है कि रावण का गुरुत्व वे भली भाँति स्थापित करने वाले थे ही तब मेघनाद को कुछ भी बड़ाई न मिलने पर उसका वीरत्व बिलकुल फीका पड़ जाता। छठे दिन रावण का यज्ञ विध्वंस किया गया और वह बड़े क्रोध में युद्ध को आया। इसी दिन पहले पहल राम-रावण युद्ध हुआ है। इस दिन रावण ने एक बार राम के सारथी और दूसरी बार घोड़ों को गिरा दिया और दोनों बार उन्हें स्वयम् राम ही ने उठाया। इससे जान पड़ता है कि युद्ध इतना विकराल हो रहा था कि किसी दूसरे को बीच में आने का साहस नहीं हुआ। प्रथम तीन दिन की लड़ाइयों में बानरों ने युद्ध राम की ओर से आरम्भ किया परन्तु अन्तिम दिनों में निशाचरों ही की तरफ़ से लड़ाई शुरू हुई। सातवें दिन रावण ने बड़ी प्रचण्डता के साथ युद्धारम्भ किया और रामचन्द्र के अतिरिक्त समस्त सेना को पराजित व मूर्छित कर दिया और फिर बड़े ही

क्रोध और उद्दण्डता के साथ राम-रावण का लोमहर्षण युद्ध हुआ। इस युद्ध को गोस्वामीजी ने बड़ी उत्तम और प्रभावशाली भाषा द्वारा बड़ी उत्तम रीति से वर्णन किया है, और यही दशा रावण के पहले दो दिन के युद्धों की भी रही थी। अन्त में बहुत से अपशकुन होकर रावण का बध हुआ है। सात दिन के युद्ध में एक दिन स्फुट, एक दिन कुम्भकर्ण, दो दिन मेघनाद, और तीन दिन रावण का युद्ध हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि गोसांईजी का युद्ध-वर्णन शिथिल है, परन्तु हमारी समझ में उसमें शैथिल्य का नाम तक नहीं है। हाँ उन्होंने युद्ध का बहुत विस्तार नहीं किया है।

भवभूतिजी ने अपने महावीर चरित्र में लिखा है कि रावण ने धनुष भङ्ग होने पर परशुराम को राम के ऊपर भिजवाया कि अलग ही अलग शत्रु नाश हो जाय तथा ताड़का, सुबाहु, मारीच, खर, दूषण, त्रिशिरा, विराध कबन्ध, आदि सब रावण ही की कोशिश से भेजे गये थे। परन्तु तुलसीदासजी ने यह बातें नहीं रक्खीं हैं।

( ख ) इन महाशय ने अपने नायक तथा उपनायक गण का शील गुण आद्योपांत एक रस निर्वाह कर दिया है। शील गुण कथन करने में इस महाकवि ने पूरा ध्यान दिया है और उसमें पूरी सफलता भी इन्हें प्राप्त हुई है।

( ख १ ) रामचन्द्र को गोस्वामीजी ने सब गुणों का आकर माना है। जो कोई इन्हें देखता था वह इनके रूप को देखते ही मग्न हो जाता था। विश्वामित्र, परशुराम, जनक, जनकपुरवासी, गुह, मार्ग के ग्रामवासी, सूर्पणखा, और खर, दूषण तक इनका रूप देख कर

मोहित हो गये थे। निरभिमानी इतने थे कि ये विश्वामित्रजी के पैर तक चापते थे और सरल स्वभाव इतने थे कि इन्होंने सीता के देखने और उन पर मोहित होने तक का हाल विश्वामित्रजी से कह दिया। गम्भीरता इतनी थी कि ये विश्वामित्र की आज्ञा पाते ही बे धड़क धनुषभङ्ग के वास्ते खड़े होगये। इसी प्रकार परशुराम को देख कर सब लोग डर गये थे परन्तु इनको कुछ भी हर्ष विषाद नहीं हुआ। ब्राह्मणों को इतना मानते थे कि परशुरामजी के हज़ारों दुर्वाक्य कहने पर भी इनको क्रोध न आया। इनकी सर्वप्रियता इनके अभिषेक का विचार सुनते ही दशरथ के प्रधान कृपापात्र सुमन्त के हर्ष गद्गद हो जाने से विदित होती है। भरत का ये सबसे विशेष प्यार करते थे और लक्ष्मण को भी इतना चाहते थे कि उनके पीछे नारिहानि तक सहना इन्हें स्वीकार था। गुरु-महिमा तो इन से कोई सीख सकता है। आत्म-त्याग इनमें इतना अधिक था कि इन्हें यह जान पड़ा कि—

बिमल बंस यह अनुचित एका। अनुज बिहाइ बड़ेहि अभिषेका॥

प्रजा इनका इतना प्यार करती थी कि इनके वियोग में उनको जीना भी दुःखप्रद था। जो कोई इनको देखता था वही इनकी सेवा को उद्यत हो जाता था और सच्चे प्रेम के ये इतने वश थे कि अनार्य शवरी के जूँठे वेर तक इन्होंने खाये।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाइँ न काऊ॥
जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

भरत के आगमन पर ये इतने प्रेम-गद्गग हो गये कि—

उठे राम अति प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निखङ्ग धनु तीरा॥

गोस्वामीजी ने इनके शील, संकोच, और दयालुता की बारंबार प्रशंसा की है। मुनियों का कष्ट देख कर इन्होंने निशिचर हीन महि करने की प्रतिज्ञा की, और सुग्रीव की विपत्ति देख कर इनकी भुजा फड़क उठी। ये महाराज बड़े ही दृढ़-प्रतिज्ञ थे, यहाँ तक कि जब कभी इन्हें लङ्का-विजय में सन्देह होता था तो सीता के न मिलने या अपनी बदनामी का उतना शोक नहीं करते थे जितना कि विभीषण को लङ्का न दे सकने का। आज्ञाकारी इतने थे कि दशरथ की आज्ञा को इन्होंने दशरथजी की अनिच्छा होने पर भी पालन किया। बालि को ओट से मारने का कारण यह जान पड़ता है कि बड़े शत्रु को छल से भी मारने में दोष नहीं है इसको प्रमाणित करना इन्हें अभीष्ट था। रामचन्द्रजी बालि के अनुचित व्यवहारों से उससे क्रुद्ध थे परन्तु उसने ज्यों ही दीन-वाक्य कहे कि इनका सब क्रोध तुरन्त शांत हो गया। इतने दयालु होने पर भी इन्हें उचित क्रोध आता था।

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी॥
जेहि सायक मैं मारा बाली। तेइ सर हतउँ मूढ़ कहँ काली॥

इनके चित्त में कृतज्ञता इतनी अधिक थी कि इन्होंने हनुमान से यह कहा कि—

प्रति उपकार करौं का तोरा। सन्मुख है न सकत मुख मोरा॥

इनका यह प्रण था कि—

कोटि बिप्र अघ लागइ जेही। आए सरन न त्यागउँ तेही॥

इनकी शूरता, पांडित्य आदि के उदाहरण समस्त रामायण से विदित हैं। गोस्वामीजी रामचन्द्र को परब्रह्म का अवतार मानते थे।

(ख २) श्रीसीताजी को गोस्वामीजी ने आदिशक्ति का अौतार माना है। इनके शील गुण में कवि ने पतिप्रेम और सभय प्रकृति को प्रधान रक्खा है। रामचन्द्र के बन जाने पर भी इनसे वियोग सह्य न हो सका और ये उनके साथ ही चली गईं। स्वयंबर में राजाओं का उपद्रव और परशुराम का आगमन होने पर ये बहुत सभीत हो गई थीं और मारीच-पुकार को रामचन्द्र की आवाज़ समझकर इन्होंने भय के कारण मर्म-वचन तक कह कर लक्ष्मण को राम के पास भेज दिया। रावण ने एक महीने में बध करने की इन्हें धमकी मात्र दी थी परन्तु इनको सचमुच डर मालूम हुआ कि—

मास दिवस बीते मोहिँ मारिहि निसिचर पोच॥

इतनी भीरु होने पर भी इन्होंने रावण की अनुचित बातचीत पर उसे ख़ूब फटकारा था। इनके अति रूपवान होने के कारण ही बहुधा इन्हें क्लेश सहन करना पड़ा है। इनकी प्रकृति का सार निम्न छन्दों द्वारा विदित होता है—

तब रावन निज रूप दिखावा। भइ सभीत जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। आइ गए प्रभु खल रहु ठाढ़ा॥

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सोइ छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥

(ख ३) भरतजी में रामचन्द्रजी का अलौकिक प्रेम बहुत ही विशेष था और यह बात सब लोगों पर भले प्रकार से विदित भी थी जैसा कि स्वयम् दशरथजी ने कैकेयी से कहा था कि—

चहत न भरत भूप पद भोरे। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरे॥

और प्रजा वर्ग में भी यदि कहीं कोई भ्रम वश कह देता था कि भरतजी भी माता के कुमन्त्र में शरीक हैं तो दूसरे तुरन्त ही उसकी बात का खंडन कर देते थे। भरतजी का प्रेम गोस्वामीजी ने हद पर पहुँचा दिया है जिससे कि विशेष वर्णन करना असम्भव है। उसको कवि ने यहाँ तक वर्णन किया है कि—

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जात मन बिधि हरि हर को॥

इन्होंने बड़े गम्भीर होने पर भी अपनी माता की कुटिलता देख कर उन्हें बुरा भला कहा जो अनुचित भी नहीं है। इतनी अधिक अपराधिनी होने पर भी जब शत्रुघ्न मंथरा को मारने लगे तो इन्होंने उसको छुड़ा दिया। गोस्वामीजी ने इनकी बुद्धिमत्ता और वक्तृत्व शक्ति के भी अच्छे उदाहरण दिखलाए हैं। स्वार्थ-त्याग की मात्रा इनमें इतनी अधिक थी कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जिस राज्य के कारण राजाओं में प्रति दिन झगड़े बखेड़े हुआ करते हैं और जिसके कारण भाई भाई और बाप बेटों तक में युद्ध हुआ करते हैं उसी राज्य को पाकर भी छोड़ देना इन्हीं के समान महानु-भाव का काम था। स्वार्थ-त्याग का इसके समान उदाहरण इस स्वार्थी संसार में मिलना कठिन है। अपनी उत्तरदायिता को यह इतना समझते थे कि अंत में जब रामचन्द्र ने बनबास और अयोध्या के लौटने का भार इन्हीं पर छोड़ दिया तब इन्होंने लौटने के लिए हठ नहीं किया क्योंकि पिता की आज्ञा उल्लंघन करना घोर पाप था। इनमें पराक्रम भी असीम था। इनके एक ही बिना फर-

बाण से हनुमान ऐसा वीर भी गिर पड़ा जिस पर इन्होंने उनसे कहा कि—

चढु मम सायक सैल समेता। पठवउँ तोहिँ जहँ कृपानिकेता॥

गोस्वामीजी को इनके पराक्रम वर्णन करने का अवसर कभी नहीं मिला अतः उन्होंने इस स्थान पर इन्हीं दो चार छन्दों द्वारा इनका बल भलीभाँति प्रदर्शित करा दिया। यह हनुमान के गिरने की घटना गोस्वामीजी ही के मस्तिष्क से निकली है। कृत्तिवास ने इसे कुछ और भी बढ़ा दिया है। इनका रूप रामचन्द्र से इतना मिलता था कि इन्हें व रामचन्द्र के पहचानने में लोग सन्देह किया करते थे। यद्यपि समस्त अयोध्या-कांड में भी रामचन्द्रत्व वर्तमान है तथापि उत्तरार्द्ध अयोध्या-कांड के वास्तविक नायक यही महात्मा हैं। हम इन्हीं के साथ अयोध्या में जाते, फिर जाकर रामचन्द्र से मिलते, और बन का परिभ्रमण करके ससैन्य अयोध्या लौट आते हैं। द्वितीयार्ध अयोध्या-कांड में यही वर्णन है और उसमें राम का वर्णन उतना ही है जितना कि वह भरत से सम्बन्ध रखता है। अंत में गोस्वामीजी कहते हैं कि—

भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिँ।
सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भवरस बिरति॥

पूरन भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जो बन सुर नर मुनि भावन॥

गोस्वामीजी ने भरतजी को ईश्वर का चतुर्थांश माना है। सरस्वतीजी ने इन्द्र से भरत के विषय यह कहा है कि—

मोसन कहत भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥

इस वाक्य से गोस्वामीजी ने यह भी स्पष्टतापूर्वक कह दिया कि बुराई का प्रभाव केवल दुर्बल-चित्त मनुष्यों पर पड़ता है न कि दृढ़चित्त महानुभावों पर। वास्तव में गोस्वामीजी ने सब बातों में भरत को राम की परछाहीं माना है। भरतजी के विषय श्रीरामजी स्वयम् लक्ष्मण से कहते हैं कि—

तात तुम्हारि सपथ पितु आना।
सुचि सुबन्धु नहिँ भरत समाना॥

( ख ४ ) लक्ष्मणजी में रामचन्द्र के विषय आज्ञा-पालन और स्नेह के भाव ख़ूबही मिल गये थे। इन्होंने राम के लिए माता, पिता, भाई, स्त्री, राजसुख आदि सभी कुछ छोड़ दिया। जिस समय राम के साथ ये वन को जाने वाले थे और इन्हें भय था कि वे ले जायँ अथवा न ले जायँ वहाँ ये—

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। दीन मीन जनु जल ते काढ़े॥

इनको अधिक बातचीत करना पसन्द न था। ये वाक्यशूर न होकर कर्म-शूर थे। जब राम ने समुद्र से रास्ता माँगा तब इन्हें बुरा लगा और जब उसे धमकाने को धनुष-बाण उठाया तब ये प्रसन्न हुए। कर्म्म शूरता और युद्ध-शूरता के साथ ही साथ इनमें क्रोध की मात्रा भी बहुत अधिक थी, यहाँ तक कि ये दासियों तक को पीटा करते थे।

हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्हि लषन सिष अस मन मोरे॥

जिस समय स्वयम्बर में जनक ने पृथ्वी को वीर-विहीन कह दिया

उसी समय इन्हें पूरा क्रोध हो आया। इसी प्रकार राजाओं की युद्ध-चेष्टा को देख कर भी इन्हें क्रोध हो आया था। राम के बनबास होने से इन्हें दशरथ, केकयी और भरत पर अत्यन्त क्रोध था, यहाँ तक कि स्वयं सुमन्त के सम्मुख इन्होंने दशरथ के प्रतिकूल कटु वाक्य कह दिया। और भी

कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥
आय बना भल सकल समाजू। प्रकट करौं रिस पाछिलि आजू॥
केकयि कहँ पुनि पुनि मिले जिय कर छोभ न जाय॥

इनमें चपलता की मात्रा भी बहुत बढ़ी चढ़ी थी और ये परशुराम से राम के सामने लड़े ही पड़ते थे। इसी प्रकार राम को थोड़ा सा भी क्रोधित देख कर ये सुग्रीव को मारने पर उद्यत होगये। साहसी इतने कि थे कोई कैसा भी बली क्यों न हो, ये उससे लड़ने को प्रस्तुत हो जाते थे। इन्होंने यहाँ तक कह डाला कि यदि शंकर भी सहाय करें तो भरत को और वैसेही मेघनाद को मार डालूँगा। मेघनाद को इन्होंने मारा।

( ख ५ ) हनुमानजी अनुपम भक्त, बली और साहसी थे। इनको राम-काज जितना प्रिय था उतना अपना जीवन न था। इन्होंने सुरसा से कहा था कि मैं सीता की सुधि राम को सुना कर फिर तेरा अहार बनने का तुझे वचन देता हूँ परन्तु तू मुझे अभी जाने दे। जानकीजी से अजर अमर और बलनिधि होने का बर पाकर ये इतने प्रसन्न न हुए जैसे कि यह सुन कर कि राम तुझ पर कृपा करेंगे। सुग्रीव के राम काज भुला देने पर इन्होंने उन्हें सचेत किया

था। जामवन्त से अपने बल की प्रशंसा सुन कर इनका इतना साहस बढ़ा कि ये पर्वताकार होगये। रामचन्द्र को इन्हीं पर अधिक भरोसा था अतः जब सब बानर जानकीजी को खोजने जाते थे तब उन्होंने मुद्रिका इन्हीं को दी थी। कठिन कार्य्यों के करने पर सदा येही नियोजित होते थे, यथा समुद्र पार जाना, लंका से सुषेण वैद्य का लाना, लक्ष्मण के वास्ते रात भर में ही द्रोणाचल से औषधि लाना आदि। ये इतने बलवान् थे कि इन्होंने द्रोणाचल को उठा लिया और एक ही एक मुष्टिक मार कर मेघनाद, कुम्भकर्ण, रावण आदि योधाओं तक को गिरा दिया। जहाँ ये महाशय मुशकिल कार्य्यों पर भेजे जाते थे वहाँ सुखद कार्य्यों पर भी जाने का इन्हीं का हक़ समझा जाता था। लंका में विजयवार्त्ता सुनाने को जानकीजी के पास और रामागमन सुनाने को भरतजी के पास भी यही भेजे गये थे। यह सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त हुआ कि भरत, लक्ष्मण आदि के होते हुए भी अयोध्याजी में यही पूजित हुए और इनकी हनुमानगढ़ी आज तक वर्त्तमान है। गोस्वामीजी ने लिखा है कि हनुमान का नाम लेते ही भूत प्रेत निकट नहीं आते। बाहु-पीर-निवारणार्थ गोस्वामीजी ने इन्हीं की स्तुति की है।

( ख ६ ) अंगद भी रामचन्द्र के सच्चे भक्त थे। मरते समय बालि रामचन्द्र को इनकी बांह पकड़ा गया था। इनके चातुर्य्य और बल पर सब को भरोसा था। जिस समय सम्पाति से डर कर सब बानरों के प्राण सूखे जाते थे और किसी को कोई उपाय नहीं सूझता था उस समय इन्होंने जटायु का हाल कह कर सब

के प्राण बचाये। रावण के यहाँ राम का दूत होकर जाने का सन्मान सर्वसम्मति से इन्हीं को प्राप्त हुआ और राम ने इनकी बुद्धि पर पूरा भरोसा करके कहा कि—

बहुत बुझाय तुमहिँ का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काज हमार तासु हित होई। रिपु सन किहेहु बतकही सोई॥

अतः रामचन्द्र ने इनके अधिकार पर कोई भी सीमा नहीं रक्खी थी और पूरा अधिकार देकर इन्हें लंका भेजा था। रावण की बातों का बरजस्ता उत्तर देना इनकी चतुरता को प्रकट करता है। जब इन्होंने पावँ रोपा और वह किसीसे न उठा तब स्वयं रावण उसे उठाने को चला। उस समय इन्होंने चतुरता से पैर हटा कर उसको ख़ूब ही उत्तर दिया कि—

मम पद गहे न तोर उधारा।
गहेसि न राम चरन सठ जाई।

गोस्वामीजी ने इनको भी हनुमानवत् दिखाने के अभिप्राय से इनके द्वारा भी लंका जाने पर रावण के एक पुत्र का बध कराया है। इनके पैर को कोई भी न उठा सका। एक बार इन्होंने रावण को भी गिरा दिया था। गोस्वामीजी ने इनका युद्ध हनुमानजी के समान ही वर्णन किया है केवल समुद्र उलङ्घन में कहला दिया कि—"अंगद कहा जाउँ मैं पारा। जिय संसै कछु फिरती बारा"। इनको राम ने किष्किन्धा का युवराज नियत किया था। इनका शील गुण भी हनुमान की छाया सा था।

( ख ७ ) सुग्रीव को राम ने बालि मार कर राजा कर दिया था। चित्त से यह सन्तवत था परन्तु राज्य पाने पर कुछ विषय-

वश हो गया परन्तु हनुमान के समझाने से तुरन्त सँभल गया और जानकीजी की खोज में इसने बानर भेजे। इन्होंने यहाँ तक कहा कि—"विषय मोर हरि लीन्हेसि ज्ञाना"।

( ख ८ ) बिभीषण को गोस्वामीजी ने बड़ा भारी भक्त माना है। इन्होंने रावण से बिगड़ कर राम का आश्रय ग्रहण किया और फिर निशाचरों के संहार कराने में इन्होंने पूरा योग दिया। हमको इनका भाई भतीजों के मारे जाने की युक्तियाँ बताना अच्छा नहीं लगा। इनको अनार्य्यवर्ग की जातीयता का बिल्कुल ध्यान न था। रावण से बिगड़ कर जब ये रामचन्द्र के यहाँ चले गये उसके पश्चात् तो चाहे इनके बचाव में कुछ कहा भी जा सके पर सुन्दर-काण्ड में जो हनुमानजी को इन्होंने सीताजी का पता दे दिया और फिर हनुमान को मारे जाने से बचा कर पूँछ जलाना मात्र स्थिर रक्खा इसमें ये राजविद्रोह एवं विश्वासघात के दोषी अवश्य हुए। इनका चरित्र भक्ति के अतिरिक्त बड़ा निन्द्य है। हमने केशवदास की समालोचना में इनके परिचय की पूरी आलोचना की है। विशेष वहाँ से देखिए।

( ख ९ ) जामवन्त ऋक्षराज थे। इनकी वृद्धावस्था और बुद्धि-प्रखरता के कारण राम ने इन्हें मन्त्री बनाया था और सब बातों में इनका मत माना जाता था। परम वृद्ध होने पर भी इनका पराक्रम ऐसा था कि इन्होंने मेघनाद को मूर्च्छित कर दिया और इनकी लात खा कर रावण भी अर्द्ध रात्रि पर्य्यन्त अचेत पड़ा रहा। इन्हीं ने प्रोत्साहित करके हनुमान को लङ्का भेजा था और अङ्गद को यह कह कर न भेजा कि—"किमि पठवउँ सबही कर नायक"।

( ख १० ) रावण लङ्का का राजा और रामचन्द्र का प्रधान शत्रु था। इसने सीता-हरण करके रामचन्द्र को अपार दुःख दिया। यह ब्राह्मणों का नहीं बरन देवताओं का शत्रु था और ब्राह्मणों को इसी कारण सताता था कि उनके यज्ञादि न कर सकने से देवतागण दीन हीन होकर आपही पस्त हो जायँगे। रामचन्द्र से यह इसी विचार से लड़ा था कि यदि वे परमेश्वर हों तो उनके हाथों समर में शरीर त्यागे और यदि कोई मनुष्य ही हों तो दोनों भाइयों को जीत उन की स्त्री हर ले। इस पुरुषरत्न में शौर्य्य, पराक्रम, आत्मनिर्भरता, अभिमान और राजनैतिज्ञता कूट कूट कर भरी थीं। इसकी हिम्मत कभी साहस त्याग नहीं करती थी और सूझ भी प्रथम श्रेणी की थी यहाँ तक कि बात का समुचित उत्तर यह तत्काल ही दे देता था। विवाद में इसकी बुद्धि बड़ी ही पैनी थी। राजनैतिज्ञता तो यहाँ तक बढ़ी चढ़ी थी कि अपने मतलब के लिए मारीच जैसे छोटे आदमी को भी प्रणाम करके मिला और उसके गड़बड़ करते ही साम, दाम की बात एक दम किनारे रख विषम भय वाला अस्त्र प्रयोग कर बैठा कि जिससे मारीच को फिर जिह्वा हिलाने की भी हिम्मत न पड़ी। रामचन्द्र का पत्र इसने बायें हाथ से लिया और चारों वेद तक जानते हुए भी उसे स्वयं न पढ़ मन्त्री से ही बँचवाया। राजनैतिज्ञता के मामले में अनुचित उचित का वैसा बड़ा विचार यह नहीं करता था और श्रीराम लक्ष्मण की अनुपस्थिति में भी इसने सीताहरण कर ही लिया। इसमें यह भी सम्भव है कि रावण ने ऐसा यह सोच कर किया हो कि उसकी मान-हानि तो शूर्पनखा के नाक कान कटने से हो ही चुकी सो वह भी शत्रु की अवश्य ही मान-

हानि कर ले क्योंकि खुले तौर पर यदि शत्रु प्रबल हुआ तो ऐसा न हो सकना सम्भव था। शूरता इसमें इतनी अधिक थी कि रामचन्द्रजी से युद्ध करते हुए भी इसने उनकी समस्त सेना को कई बार पराजित कर दिया। बाणविद्या में श्रीराम की और मल्लयुद्ध में हनुमानजी की यह पूरी टक्कर लेता था यहां तक कि अञ्जनीकुमार का भी इससे लड़ने में दम उखड़ ही तो गया और उन्हें "संकट" पड़ गया। आत्मनिर्भरता का यह हाल था कि यों भी यह "सहज अशंक" कहलाता था। श्रीराम की चढ़ाई का हाल जान कर भी यह नृत्य देखता रहा और सब के मर जाने पर बोला कि-"निज भुज बल मैं बैर बढ़ावा। देहौं उतर जो रिपु चढ़ि आवा"। यह मरते मरते भी यही कहता रहा कि-"कहाँ राम रण हतौं प्रचारी"। मन्दोदरी के रोने, गाने और समझाने बुझाने को इतना तुच्छ समझता था कि उसे सिवा हँस कर टाल देने के कभी ध्यान-योग्य ही न समझा। मेघनाद और कुम्भकरण के मरने पर यह अवश्य रोया पर स्त्रियों को रोते देखते ही रोना बन्द कर उन्हें समझाने लगा। अभिमान की मात्रा इसमें इतनी अधिक थी कि अपने मस्तक में ब्रह्मा का यह लेख बाँच कर कि यह मनुष्य के हाथ से मारा जायगा यह हँस पड़ा और ब्रह्मा को इसने सठियाया समझ लिया। जटायु को देख सोचा कि-"मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा"। वैसे ही बिभीषण के विषय यही कहता था कि-"करत राज लङ्का शठ त्यागा। होइहि जव कर कीट अभागा"। रामचन्द्रजी को सिवाय "तपसी" और "तापस" के और कभी कुछ न कहा। शौर्य्य, आत्मनिर्भरता और अभिमान के कारण यह कभी किसी का मत नहीं मानता था

और इसने मारीच, बिभीषण, प्रहस्त, शुक, मन्दोदरी, कुम्भकरण, मालवन्त एवं कालनेमि की सलाह पर कभी ध्यान न दिया। इसने एक काम बिलकुल बेजा किया सो यह है कि बिभीषण को लात मार दी। हनुमानजी की सुन्दर-काण्ड वाली भारी वक्तृता के उत्तर में इसने क्या ही चतुरता से कहा—"मिला हमहिँ कपि गुरु बड़ ज्ञानी"। इसके मुकुट गिर पड़ने पर जब सभासदगण घबड़ाये तब यह कैसी चतुरता से बोला कि "सिरहु गिरे सन्तत सुभ जाही। मुकुट गिरे कस असगुन ताही?" रामचन्द्रजी की बहुत सी बातें सुन यही कहा कि "बैर करत तब नहिँ डरे, अब लागत प्रिय प्रान"। निदान रावण को तुलसीदासजी राम का बैरी होने के कारण जा-बेजा तो सदा ही कहा करते थे पर इसका शील गुण उन्होंने बहुत ही अच्छा निबाहा है।

(ख ११) मन्दोदरी के शील गुण में भय एवं अहिवात रक्षा ही प्रधान हैं। भय और स्नेह के मारे ये रावण को बहुत कड़ी कड़ी बातें तक समझाते समझाते कह बैठती थीं पर उसने इनकी बातों पर कभी यथार्थ ध्यान न दिया।

(ख १२) कुम्भकरण रावण का छोटा भाई था पर वह इसकी बड़ी इज़्ज़त करता था यहाँ तक कि इसके "शठ" कह देने पर भी रावण कुछ न बोला। यह बड़ा ही प्रबल वीर था और रावण को इस पर बड़ा भरोसा था। इसमें अकेले ही एक सेना के बराबर शक्ति थी, तभी तो श्रीरामचन्द्र और उनकी समस्त सेना से लड़ने यह अकेला ही और बिलकुल निरस्त्र चल खड़ा हुआ था।

( ख १३ ) मेघनाद के अद्वितीय पितु-भक्ति और शूरता प्रधान गुण थे। रावण ने इसको भला बुरा जब जो कुछ करने को कहा इसने बिना आगा पीछा विचारे वैसा ही किया। और सभों ने रावण को रामचन्द्र से न लड़ने को समझाया पर इसने ऐसा कभी विचारा तक नहीं। तभी तो रावण इसके मरने पर यही कह कर विलपने लगा कि "हा सुत सन्तत आज्ञाकारी"। यह इन्द्र तक को जीत चुका था जिससे रावण को इस पर बड़ा भरोसा था। सुन्दर-काण्ड में हनुमानजी की बड़ी शूरता की बातें सुन कर भी रावण जानता था कि मेघनाद को जो आज्ञा दी जायगी उसे वह पूरीही करेगा सो उसने कह दिया था कि "मारेसि जनि सुत बाँधेसि ताही"। कुम्भकर्ण के मरने पर रावण विकल हुआ तब भी शूर-शिरोमणि पितु-भक्त मेघनाद ने यही कह कर समझाया कि "देखेहु काल्हि मोरि मनुसाई"। इसका शील गुण बड़ाही निर्दोष दिखलाया गया है।

( ख १४ ) दशरथ। उत्कट पुत्रस्नेह और सत्यप्रियता मानो इनके बाँट पड़े थे पर वृद्धावस्था तक ये कामी बने रहे। इन्होंने यहाँ तक कहा कि मैं चाहे नरक जाऊँ पर राम मेरी निगाह के ओट न हों परन्तु वचन फेर लेने का इन्हें इतने पर भी ध्यान न आया। अन्त को इन्होंने इसी पर प्राणही दे दिये।

( ख १५ ) कौशल्या और देवियों के शील गुण में गोस्वामीजी ने अणुमात्र भी भेद नहीं रक्खा है। यद्यपि कैकेयी ने राम को बनबास दिया तथापि कैकयी को इन्होंने राम की माता ही कहा—

जो पितु मातु कहैं बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

दशरथ को स्वर्गबास हो जाने पर भी जब भरत आये तो ये उन्हें मिलने के वास्ते उठ कर दौड़ीं। ये दशरथ के साथ सती हो जाना चाहती थीं परन्तु भरत के कहने से व राम के दर्शनाभिलाष से रह गईं। इन्होंने भरत से राज्य अंगीकार करने को बहुत हठ किया जिससे इनका महत्त्व प्रकट होता है। निम्न लिखित दोहे से यह जान पड़ता है कि इन्हें भरत के आत्म-हत्या कर लेने का भय था।

लखन राम सिय जाहिँ बन, भल परिनाम न पोच।
गहबरिहिय कह कौसिला, मोहिँ भरत कर सोच॥

पुत्र बधू से इनका व्यवहार अनुकरणीय था। इन्होंने कभी किसी को कोई अनुचित बात नहीं कही।

(ख १६) **कैकेयी** पहले राम का बड़ा प्यार करती थी पर इसके चित्त में कुछ सन्देह कभी था क्योंकि यह उनकी "प्रीति-परिच्छा" ले चुकी थी। इसका चित्त ऐसा अभिमानी था कि यह कहती थी "नैहर जन्म भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई"। यह चित्त की बुरी न थी क्योंकि इसने "अपने चलत न आज लगि अनभल काहुक कीन" और सौतिया-डाह इसे बिलकुल न था यहाँ तक कि रामचन्द्र के युवराज होने के विषय में दशरथजी ने इसकी सम्मति लेने की कुछ भी आवश्यकता न समझो और पहले पहल इसने यह बात सुन कर आनन्द मनाया

और कहा "रामहि तिलक साँच जो काली। माँगु देहुँ मन भावत आली।" अन्त में इसके द्वारा रामचन्द्र को दुख उठाना पड़ा। इससे गोस्वामीजी को इसे गाली दिये बिना नहीं रहा जाता और भरत की माता होने के कारण इसका बचाव भी करते ही बनता है और शारदा द्वारा मति पलटना एवं भावी इत्यादि की बातें लानी पड़ती हैं। तो भी कहना ही पड़ता है कि गोस्वामीजी से राम भक्ति के मारे इसका शील गुण ठीक न उतारते बना और देवी सी कह कर इसे उन्होंने अन्त में पूरी पिशाची कर डाला और महा अनुचित बातें इसके मुँह से कहा डालीं।

(ख १७) सुमंत का इतना सम्मान था कि रामचन्द्र उनको पिता के समान मानते थे। ये महाशय जाति के सूत थे। इसी कारण गोस्वामीजी ने इनके कुल का परिचय नहीं दिया है। ये महाशय राम से इतना सच्चा स्नेह रखते थे कि राम के बनबास पर इनको वास्तव में बड़ा ही क्लेश हुआ था। इनका मान रामचन्द्र के यहाँ घर के बड़े बूढ़ों के समान होता था।

(ख, १८) गुह निषादपति को रामचन्द्र से इतना सच्चा स्नेह था कि उनके वास्ते यह भरत से लड़कर मरने को तैयार हो गया था, और भरत के साथ रास्ता चलने में इतना प्रेम-मग्न हो गया था कि चलते चलते रास्ता भूल गया।

(ख, १९) शिवजी रामचन्द्र के अविचल भक्त थे यहाँ तक कि इन्होंने सती सी स्त्री को इसी अपराध पर त्याग दिया कि उन्होंने सीता का रूप धारण कर के राम की परीक्षा ली थी। ये रामचन्द्र

के बाल रूप को मानते थे। ये रामचन्द्र से कम थे परन्तु और सब से बड़े थे। रामचन्द्र का ध्यान करते ही शिवजी प्रेमोन्मत्त हो जाते थे। ये अपना अपमान सहन कर सकते थे परन्तु और किसी माननीय को न मानने का अपराध क्षमा नहीं कर सकते थे।

( ख, २० ) काग भुशुंडी भी रामजी के बाल रूप के अविचल भक्त थे। जब गरुड़जी का भ्रम किसी से दूर न हो सका तब महादेवजी ने उनको इनके पास भेजा जहाँ जाने पर उनका सन्देह पूर्णतया निवृत्त हो गया।

शिवजी, कागभुशुंड और गोस्वामीजी की भक्ति में कोई भेद नहीं था। इन तीनों की उपासना सब तरह समान थी।

( ग, १ ) विप्र गण की महिमा को गोस्वामीजी ने सदा गान किया है और यह कहा है कि गुणवान अथवा गुणहीन सब प्रकार के ब्राह्मण पूज्य हैं। इन्होंने अन्य कवि गण की भाँति द्विज शब्द से ब्राह्मण का बोध कराया है यद्यपि वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों द्विज हैं। ये कहते हैं कि विप्र कोप से कोई भी नहीं बचा सकता और कुलनाश हो जाता है। अन्तिम बात पर इन्होंने बड़ा ज़ोर दिया है। विवाह के समय महादेवजी एवं राम ने ब्राह्मणों को नमस्कार करके तब कुछ किया। युद्ध करने के प्रथम राम ने 'बिप्र चरन पङ्कज सिर नावा'। ये कहते हैं कि—

( १ ) मङ्गल मूल बिप्र परितोषू। दहै कोटि कुल भूसुर रोषू॥

( २ ) सापत ताड़त परुष कहन्ता। बिप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता॥

पूजिय बिप्र सील गुनहीना। नहिन सूद्र गुन ज्ञान प्रबीना॥

( ३ ) सब दुज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिँ सिंहासन॥
( ४ ) पुन्य एक जग महँ नहिँ दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर सब देवा। जो तजि कपट करइ दुज सेवा॥
( ५ ) सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि तोषक ब्रत दुज सेवकाई॥
अब जनि करसि बिप्र अपमाना। जानसि बरम्ह अनन्त समाना॥
इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला। काल दण्ड हरि चक्र कराला॥
जो इन कर मारा नहिँ मरई। बिप्र रोष पावक सोउ जरई॥
( ६ ) दुज निन्दक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥

( ग २ ) गोस्वामीजी ने इन्द्र पर्य्यन्त देवताओं को मनुष्यों से कुछ ही बड़े और ऋषि मुनियों से बहुत कम माना है। नारदजी ने जब काम जीतने का हाल इन्द्र सभा में कहा तो नारद के इस महत्त्व पर सब देवताओं को आश्चर्य्य हुआ। देवता बड़े स्वार्थी और कभी कभी कपटी भी हो जाते हैं। उनको राक्षसों से इतना भय था कि यद्यपि वे राम को परमेश्वर जानते थे तथापि निशाचरों के युद्ध में उन्हें राम-पराजय का भय उपस्थित हो जाता था यहाँ तक कि वे दो एक बार भागे और ऐसे समयों पर भी ऋषि मुनि स्थिर रहे।

( १ )

देव दनुज नर किन्नर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बैताला॥
तिनकी दसा न कह्यौं बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेऽपि काम बस भये बियोगी॥

( २ )

सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
ऊँच निवास नीचि करतूती । सकहिं न देखि पराइ बिभूती ॥
बार बार गहि चरन सकोची । चली बिचारि बिबुध मति पोची

( ३ )

कपट कुचालि सीवँ सुर राजू । पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥
काक समान पाक रिपु रीती । छली मलीन न कतहुँ प्रतीती ॥
लखि हँसि हिय कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवा निज बानू ॥

इन वर्णनों को वेद की बन्दनाओं से मिलाने से कैसा आश्चर्य होता है ?

(ग) गोस्वामीजी अन्य सभी देवताओं का पूजन केवल इसी मतलब से करते थे कि उनके सहारे श्रीराम की भक्ति प्राप्त और दृढ़ हो, यहाँ तक कि शिव तक की वन्दना किसी अन्य कारण से इन्होंने कभी न की । यथा—

( १ )

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धास्स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥

(२)

सिव सेवा कर फल सुत सोई । अबिरल भक्ति राम पद होई ॥

विनयपत्रिका में गणेश, सूर्य्य, शिव और अन्य सभी देवताओं की स्तुति करने में गोस्वामीजी केवल रामभक्ति का वर मांगते थे और कुछ नहीं ।

तुलसीदासजी रामभक्त का यह एक लक्षण मानते थे कि “बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू” । इसके अनेक उदाहरण हैं ।

महादेवजी की बालकांड के प्रारम्भ में कवि ने इतनी बड़ी कथा इस कारण से लिखी है कि श्रोता की पात्रता राम-कथा सुनने की विदित हो जाय।

यथा—

प्रथम कह्यौं मैं शिव-चरित, बूझा मरम तुम्हार।
सुचि सेवक तुम राम के, रहित समस्त बिकार॥

इनका यह विचार था कि—

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। मानिय सकल राम के नाते॥

इसी कारण ये शिव, भरत, कौशल्या, दशरथ, हनुमान इत्यादि को इतना मानते थे। और कहाँ तक कहें सीताजी भी इसके परे न जा सकीं क्योंकि "सुमिरत रामहि तजहिँ जन तिनु सम बिषय बिलास, । राम प्रिया जग जननि सिय कछु न आचरज तासु॥" देवताओं में यह शिव को राम का सबसे बड़ा भक्त मानते थे इसीसे उन्हें यह सबसे बड़ा देवता कहते हैं, यहाँ तक कि उन्हें विष्णु से भी बढ़ा दिया है। जिस समय सब देवता विष्णु के साथ शिवजी से ब्याह करने की प्रार्थना करने आये तब शिवजी ने उनको अन्य देवताओं से पृथक भी न माना और वे यही बोले कि "कहहु अमर आयहु केहि हेतू?" फिर विष्णुजी को उनसे बात करने तक की हिम्मत न हुई और सबकी ओर से ब्रह्मा ने कहा कि देवगण शिवजी का विवाह देखने को उत्सुक थे। इस स्थान पर विष्णुजी शिवजी से बहुत ही छोटे दिखलाये गये हैं। इसके पहले परब्रह्म श्रीरामजी शिव को विवाह करने का आदेश कर गये थे और उनसे शिवजी ने कहा था कि "नाथ बचन पुनि मेटि न

जाहीं" एवं "सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥" इसीसे तो ब्रह्मा विष्णु और अन्य देवताओं की विनती सुन महादेवजी ने "·········समुझि प्रभु बानी। ऐसोइ होउ कहा सुख मानी॥" तुलसीदासजी राम और विष्णु में इतना बड़ा अन्तर समझते थे कि शिव राम के दास थे और विष्णु शिव के वैसे ही दास थे। विष्णु अर्थात् हरि और शिव वाला अन्तर विनयपत्रिका में यों दिखलाया गया है कि—

"जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं।
"बेद बिदित तेहि पद पुरारि पुर कीट पतंग समाहीं॥

एवं "सिद्धसनकादियोगीन्द्रवृन्दारका विष्णुविधिवन्द्य चरणारविन्दम्" (ये शिव हैं)। इधर राम का यह हाल है कि:—

"जो सम्पति सिव रावनहिँ, दीन्हि दिये दस माथ।
सो सम्पदा बिभीषनहिँ, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥"

शिव,भुशुंडी, एवं गोस्वामीजी के प्रभु और कोई नहीं केवल "दशरथ अजिर बिहारी राम" थे। यथाः—

"पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रकट परावर नाथ।
"रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ॥

## (घ १) निर्गुन और सगुन ब्रह्म।

गोस्वामीजी सगुण ब्रह्म के उपासक थे और इनका मत था कि निर्गुन ब्रह्म ध्यान-गम्य नहीं और सगुन ब्रह्म का ध्यान करना सहल है। जितने महानुभावों का वर्णन इन्होंने किया है उन सभी

को सगुणोपासक ही रक्खा है ( यथा शिव, भुशुंडि, सरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त, आदि ) यहाँ तक कि भगवान वेद को भी इन्होंने सगुणवादी माना है। इनके मत से सगुणोपासक मोक्ष नहीं चाहते और न ईश्वर में लीन होते हैं।

तातें मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिँ भेद भगति बर लयऊ॥

वेदा ऊचुः—

जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभव गम्य मन पर ध्यावहीँ।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीँ॥
सगुन उपासक परम हित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मोहिँ, जिनके दुज पद प्रेम॥

( घ २ ) गोस्वामीजी ने रामचन्द्र को परब्रह्म ज्योतिस्वरूप माना है और उनको ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि का उत्पत्तिकर्त्ता और शासन-कर्त्ता कहा है, और उन्हें सर्वव्यापी, अनीह, अनाम, अरूप परब्रह्म का अवतार वर्णन किया है। इन्होंने सती व कागभुशुण्ड के मोह में ब्रह्मा, विष्णु और महेश इत्यादि के अनेक रूप वर्णित किये हैं परन्तु राम का रूप कहीं भी दूसरा नहीं कहा। इन्होंने जगत को प्रकाश्य और राम को जगत का प्रकाशक, अनीह, अनन्त और अज-अद्वैत माना है। परन्तु परब्रह्म का रूप इन्होंने वही वर्णन किया है जो विष्णु का है ( मनु और सत्यरूपा रानी की कथा देखिए )। इसी प्रकार सीताजी को इन्होंने आदि-शक्ति का अवतार माना है। राम सीता के इन सब गुणों को इन्होंने सैकड़ों स्थानों पर कहा है परन्तु फिर भी इस बात पर ये ज़ोर देते गये हैं कि ये दस-

रथ अजिरबिहारी राम का वर्णन कर रहे हैं। इन सब बातों के होते हुए भी इन्होंने कहीं कहीं राम को विष्णु और सीता को लक्ष्मी का अवतार भी कह दिया है।

अति हरख मन तन पुलक लोचन सजल पुनि पुनि कह रमा।
नख निरगता सुरवन्दिता त्रयलोकपावनि सुरसरी।

इस स्थान पर कवि ने सीता-राम को लक्ष्मी-नारायण माना है। नारदमोह के सम्बन्ध में भी इन्हें ऐसा ही भ्रम हो गया था। शेष स्थानों पर राम-सीता परब्रह्म और आदिशक्ति माने गये हैं।

आदि सकति जेहि जग उपजाया, सो अवतरिहि मोरि यह माया।
उमा, रमा, ब्रह्मानि बन्दिता, जगदम्बा सन्तत अनिन्दिता।
एक अनीह अरूप अनामा, अज सच्चिदानन्द परधामा।
व्यापक बिस्वरूप भगवाना, तेइ धरि देह चरित कृत नाना।
आदि अन्त कोउ जासु न पावा, मति अनुमान निगम अस गावा।
बिनु पग चलइ सुनइ बिनु काना, कर बिनु करम करइ बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु बानी बकता बड़ जोगी।
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा, गहइ घ्रान बिनु बास असेखा।
जेहिँ इमि गावहिँ बेद बुध, जाहि धरहिँ मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान॥

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू, मायाधीस ग्यान-गुन-धामू।
संभु बिरंचि विष्णु भगवाना, उपजहिँ जासु अंस ते नाना।
ऐसे प्रभु सेवक बस अहईं, भगत हेतु लीला तनु गहईं।
सुनि सेवक सुरतरु सुरधेनू, बिधि हरि हर बन्दित पद रेनू।

सारद कोटि अमित चतुराई, बिधि सतकोटि अमित निपुनाई।
विष्णु कोटि सम पालन करता, रुद्र कोटि सत सम संहरता।

निरवधि निरूपम राम सम नहिँ आन निगमागम कहैं।
जिमि कोटि सत खद्योत रबि कहँ कहत अति लघुता लहैं॥

( घ ३ ) रामचन्द्र के विषय इनका इतना ऊँचा विचार था इस कारण जब रामचन्द्र के विषय ये कोई साधारण मनुष्यों के समान घटना वर्णन करते थे तो दो एक शिफ़ारशी बातें अवश्य लिख देते थे। ऐसे छन्द रामायण में स्थान स्थान पर भरे पड़े हैं:—

जाकी सहज स्वास स्रुति चारी, सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।
लव निमेष महँ भुवन निकाया, रचइ जासु अनुसासन माया।
भगत हेतु सोइ दीनदयाला, चितवत चकित धनुष मखसाला।
जासु त्रास डर कहँ डर होई, भजन प्रभाव देखावत सोई।
सुमिरत जाहि मिटइ भव भारू, तेहि स्रम यह लौकिक व्यवहारू।
निगम नेति सिव ध्यान न पावा, माया मृग पीछे सोइ धावा।

( ङ १ ) ज्ञान, भक्ति। गोस्वामीजी ने भक्ति का दर्जा सबसे ऊँचा रक्खा है। इस विषय पर समस्त रामायण में गोस्वामीजी ने ठौर ठौर बहुत कुछ लिखा है और आरण्य एवं उत्तर-काण्डों में अपना मत साफ़ साफ़ उत्तम रीति से लिखा है। यह महापुरुष अविचल भक्त था। भगवान वेदव्यास ने श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान-भक्ति के विषय बहुत कुछ कहा है। उनका एवं हिन्दू-दर्शनशास्त्रों का मत है कि मोक्षपद बिना ज्ञान के नहीं मिल सकता और ज्ञान

दृढ़ करने की भक्ति एक भारी साधन है। गोस्वामीजी ने इस मत को पूर्ण रूप से प्रकट में नहीं ग्रहण किया है यद्यपि वास्तव में उन्होंने इसे माना है।

वे कहते हैं कि ज्ञान से केवल मोक्ष पदवी प्राप्त हो सकती है परन्तु ज्ञान होना इतना कठिन है कि उसका मिलना वस्तुतः असम्भव है और वह केवल घुणाक्षर न्याय मिल सकता है और यदि कहीं मिल भी गया तो बिना भक्ति स्थिर नहीं रहता, अतः भक्तिहीन ज्ञानी को मोक्ष पद मिल कर भी स्थिर नहीं रह सकता। भक्ति से भी केवल मोक्ष मिलता है परन्तु भक्ति मोक्ष की साधन मात्र नहीं है, बरन्—

राम भगति सोइ मुकुति गोसाईं, अन इच्छित आवै बरियाईं।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा, संसृति मूल अविद्या नासा।
भोजन करिय तृप्ति हित लागी, जिमि सुअसन पचवइ जठरागी।
असि हरि भगति सुगम सुखदाई, को अस मूढ़ न जाहि सुहाई।

इनका मत है कि क्रोध बिना द्वैत भाव के हो नहीं सकता क्योंकि जब जीव मात्र ईश्वरमय अर्थात् एक हैं, तो क्रोध किस पर करै? और जब द्वैत मत हुआ तो अज्ञान आही गया। जब मनुष्य की द्वैत बुद्धि छूट जाय तब वह परमेश्वर के बराबर हो जाता है। ऐसा होना वस्तुतः असम्भव है, अतः ज्ञानी होना भी असम्भव है।

क्रोध कि द्वैतक बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
माया बस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान॥

ज्ञान पुरुषरूपी है और भक्ति एवम् माया स्त्री रूपी। स्त्री और पुरुष में जल्दी प्रेम हो जाता है, परन्तु स्त्री के रूप पर स्त्री नहीं

मोहती । अतः ज्ञान पर माया का प्रभाव जल्दी हो जाता है और भक्ति पर उसका प्रभाव नहीं होता । फिर ईश्वर-भक्ति पर सानुकूल है अतः भक्ति से माया डरती है और उसके पास नहीं आती । इधर दैववशात् पूरा परिश्रम सध जाने और ज्ञान-दीपक के जल जाने पर भी स्त्री रूपी माया अंचल वायु से उस दीपक को बुझा देती है । जब मनुष्य पूरा विरागी हो जावे तभी उसे भक्त समझना चाहिए । गोस्वामीजी का यह मत समझ पड़ता है कि पूर्ण भक्ति प्राप्त हो जाने पर अविद्याजनित अंधकार दूर हो जाता है और भक्त को बिना चाहे हुए पूर्ण ज्ञान और मोक्ष प्राप्त होता है और भक्ति द्वारा इतनी दृढ़ता हो जाती है कि माया उसके निकट नहीं आ सकती । परन्तु भक्तिहीन ज्ञान या तो हो ही नहीं सकता और यदि होता भी है तो इतना अस्थिर रहता है कि वह थोड़े ही में माया के फन्दे में पड़ जाता है । सो ज्ञान बड़ा ही कठिन और दुष्प्राप्य है एवम् भक्ति बहुत ही सुगमता से प्राप्त हो सकती है । रामचन्द्र कहते हैं कि भक्त और ज्ञानी दोनों मेरे पुत्र के समान हैं परन्तु मैं ज्ञानी को प्रौढ़ और भक्त को बालक के समान समझता हूँ; अतः जिस प्रकार माता छोटे बालक की सँभाल रखती है इसी भाँति मैं भक्त की हर समय रक्षा किया करता हूँ। भक्ति सगुणोपासना से प्राप्त होती है जिसके नामजाप और चरित्रगान ये दो मुख्य साधन हैं और ये बातें सत्सङ्ग से प्राप्त हो सकती हैं । इसी कारण नामोपासना और ईश्वर-गुणगान से परमेश्वर की प्रसन्नता होती है । ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करना ही भक्त की अन्तिमेच्छा है, यद्यपि ऐसा करने में उन्हें ज्ञान और मोक्ष अवांछित प्राप्त हो जाते

हैं। गोस्वामीजी ने नवधा भक्ति वर्णन की है, यथा—( १ ) सन्तों का सङ्ग करना, ( २ ) राम-कथा श्रवण करना, ( ३ ) गुरु-पद सेवा, ( ४ ) निःकपट राम-गुन-गान, ( ५ ) राम में दृढ़ विश्वास पूर्वक नाम-जाप, ( ६ ) दम, शील, विरति, सज्जनानुमोदित धर्म इत्यादि, ( ७ ) राममय जगत को देखना और राम से सन्त को अधिक मानना, ( इसका प्रथमार्द्ध अनन्य भक्ति है यथा "सो अनन्य असि जाहि की, मति न टरै हनुमन्त, मैं सेवक सचराचर रूप रासि भगवन्त ), ( ८ ) सन्तोष करना और परदोष न देखना, ( ९ ) छल-हीन हो हर्ष-विषाद छोड़ राम का भरोसा रखना। इनमें से जिसके पास एक भी हो वह परमेश्वर का प्रिय है। गोस्वामीजी में नवधा भक्ति थी।

गोस्वामीजी ने लिखा है कि राम-भक्त चार प्रकार के होते हैं और चारों को नाम का आधार है। इनमें परमेश्वर को ज्ञानी विशेष प्यारा है। भक्तिहीन ज्ञान का दर्जा गोस्वामीजी ने भक्ति से बहुत नीचा रक्खा है, और यह भी लिखा है कि भक्ति बहुत कम मनुष्यों में है। अतः इनकी रुचि वाले मनुष्यों ने और स्वयम् इन्होंने जहाँ कहीं वरदान माँगा है वहाँ भक्ति ही का माँगा है। इन्होंने उत्तम मनुष्यों की इस प्रकार श्रेणियाँ बाँधी हैं जिनका माहात्म्य उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है:—धर्मव्रत धारी, विषय-विरक्त, सम्यक् ज्ञानी, जीवन्मुक्त, ब्रह्म-निरत, विज्ञानी, भक्त।

जे ज्ञानमान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाय सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

सरुज सरीर बादि बहु भोगा । बिनु हरि भजन बादि जप जोगा ॥
सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञाना । करनधार बिनु जिमि जलजाना॥

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निरबान।
ज्ञानवन्त अपि सोपि नर, पशु बिनु पूँछ बिषान ॥

भगति हीन गुन सुख सब ऐसे । लवन बिना बहु बिञ्जन जैसे ।

उपर्युक्त कारणों से ये महाशय राम नाम को रामचन्द्र से भी अधिक मानते हैं यथा—

करहुँ कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिँ नाम गुन गाई ॥

गोस्वामीजी की भक्ति उनके रचित ग्रन्थों से प्रत्येक स्थान पर छलकती है । उत्तम मनुष्यों का तो कहना ही क्या है वे दुष्ट राक्षसों तक को भी भक्त ही कहते हैं ग्रैार यह बात प्रायः हर एक के मरते समय कह देते हैं कि "मरती बार कपट सब त्यागा" । यही दशा मारीच, काल-नेमि, मेघनाद, कुम्भकर्ण, रावण इत्यादि सभी के विषय में लक्षित होती है, यद्यपि मारीच ने मरते समय भी ज़ोर से लक्ष्मण का नाम लेकर धोखा ही दिया ग्रैार इसी धोखे में पड़ कर सीता ने लक्ष्मण को ज़बर्दस्ती राम के पास भेजा ग्रैार वे स्वयम् रावण के फन्दे में पड़ीं ।

( ङ २ ) सत्सङ्ग के बिना भक्ति, विवेक, ग्रैार मोहहानि नहीं हो सकती । नौ प्रकार की भक्तियों में एक सत्सङ्ग भी है, परन्तु राम-कृपा के बिना सत्सङ्ग भी नहीं हो सकता । सत्सङ्ग से कौन बड़ा नहीं हो जाता ग्रैार कुसङ्ग से कौन नहीं बिगड़ जाता ?

को न कुसङ्गति पाइ नसाई।
केहि न सुसङ्ग बड़ापन पावा।

भगति सुतन्त्र सकल सुख खानी। बिनु सतसङ्ग न पावहिं प्रानी॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट सङ्ग जनि देइ बिधाता॥
राम कथा के ते अधिकारी। जिनके सतसङ्गति अति प्यारी॥

तात सरग अपबरग सुख, धरहु तुला यक अंग।
तुलइ न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसङ्ग॥

(ङ ३) गोस्वामीजी ने दो प्रकार की माया कही है। एक राक्षसों की और दूसरी परमेश्वर की। राक्षसों की माया केवल युद्धादि में काम आती थी और उससे युद्ध करने वालों को मोहित और विस्मित किया जाता था तथा उन पर अस्त्र, जल, अग्नि, पवन इत्यादि का उत्पात किया जाता था और वह प्रभावशाली अस्त्रों से निवृत्त भी हो सकती थी। परमेश्वर की माया जगत् को नचाती है, यहाँ तक कि "नारद सिव बिरञ्चि सनकादी" भी उसके पंजे में फँस जाते हैं। जीव उस माया के बस में रहता है परन्तु माया ख़ुद राम के बस में है और इसी कारण भक्ति करनेवाले को माया नहीं व्यापती। वह दो प्रकार की है विद्या और अविद्या।

मैं अरु मोर तोर ते माया। जेहिँ बस कीन्हे देव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मनुजाई। सो सब माया जानेउ भाई॥
तेहि कर भेद सुनउ तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥
एक रचै जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नाहिँ निज बल ताके॥

एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥
सो प्रभु भ्रू व बिसाल खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥

उत्तर-काण्ड की समालोचना के उदाहरण नम्बर (४) में भी माया का वर्णन है।

इन दोनों मायाओं के अतिरिक्त एक देवताओं की भी माया होती थी जो साधारण मनुष्यों को मोहित कर सकती थी। उसी द्वारा मन्थरा और केकयी मोही गईं थीं और अवधवासी जब राम को बुलाने भरत के साथ बन को गये थे तब वे भी मोहित किये गये थे, परन्तु यह स्वयं भरत को मोहित न कर सकी। कुम्भकर्ण की मति बर माँगने के समय भी इसीसे फेरी गई थी। इसका प्रयोग शारदा को प्रेरित करके किया जाता था।

(ङ ४) तपस्या को भी तुलसीदासजी ने बड़ा पद दिया है—

तप बल रचइ प्रपंच बिधाता। तप बल बिष्णु सकल जग त्राता॥
तप बल सम्भु करइँ संघारा। तप बल सेस धरइँ महि भारा॥
तप अधार सब स्रृष्टि भवानी। करहु जाइ तप अस जिय जानी॥

(ङ ५) गोस्वामीजी ने स्त्रियों की हर जगह पर निन्दा की है। यद्यपि उन्होंने सीता और कौशल्या इत्यादि की स्तुति भी की है परन्तु वह स्तुति रामचन्द्र के सम्बन्ध के कारण की गई है। गोस्वामीजी ने स्त्रियों को सहज जड़, सहज अपावन, अनधिकारिणी, अज्ञ, कह कर नारि-चरित्र को गम्भीर समुद्र कहा है और लिखा है कि स्वतन्त्र हो कर ये बिगड़ जाती हैं।

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धरम बिचारि समुझि कुल रहहीं। ते निकिष्ट तिय स्रुति अस कहहीं॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥

इन्होंने स्त्रियों की जाँच की कसौटी बड़ी कड़ी रक्खी थी इसी से विदित होता है कि ये उनसे असन्तुष्ट रहते थे।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखति नारी॥
राखिय नारि जदपि उर माहीं। शास्त्र नृपति जुवती बस नाहीं॥
पाय उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥

अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि।

ढोल गवाँर सूद पसु नारी। इन्हें ताड़ना की अधिकारी॥
नारि सुभाउ साँच कबि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
सहसा, अनृत, चपलता, माया। भय, अबिवेक, असौच, अदाया॥
साँचु कहइँ कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिम्ब मुकुर गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥

का नहिँ पावक जरि सकइ, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ॥

गोस्वामीजी की माताजी इनकी बाल्यावस्था में मर गईं थीं और अपनी स्त्री से ये अप्रसन्न हो गये थे; इनके वैरागी होने के कारण उच्च श्रेणी की स्त्रियाँ इन्हें नहीं मिलती थीं और केवल निम्न श्रेणी की स्त्रियों को ये इधर उधर देखते होंगे। अतः स्त्रियों के विषय इनको अनुभव अच्छा न था। यही कारण है कि इन्होंने

उनकी निन्दा की है। परन्तु फिर भी ऐसे महात्मा और महाकवि को बिना सोचे इतनी प्रचण्ड निन्दा करना अनुचित था।

(ङ ६) भाग्य—गोस्वामीजी भाग्य पर विश्वास रखते थे क्योंकि उन्होंने यह कहलवाया है—

होइहि सोइ जु राम रचि राखा।

जोगी जटिल अकाम तनु, नगन अमङ्गल बेख।

अस स्वामी यहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख॥

सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान साँच कह लोगू॥
कोउ न काहु दुख सुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता॥
करम प्रधान बिस्व रचि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा॥

परन्तु ये महाशय प्रायः विपत्ति-पीड़ित आदमियों को समझाने के अर्थ कार्मिक सिद्धान्तों द्वारा उन्हें आश्वासित करते थे। कार्य्य कुशलता को ये कर्म्मों के आसरे नहीं रोकना चाहते थे। यथा—"कादर मन कर एक अधारा, दैव दैव आलसी पुकारा"। "सो परन्तु दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताइ। कालहि कर्महि ईसुरहि मिथ्या दोष लगाइ"। इन्होंने यह भी लिखा है कि राम और शिव की कृपा से कर्म के लेख मिट भी सकते हैं। यथा—

रामचरित चिन्तामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिँगारू॥
मन्त्र महामनि विषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
जो तप करइ कुमारि तुम्हारी। भाविहु मेटि सकैं त्रिपुरारी॥

बावरो रावरो नाह भवानी।

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रङ्कन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी॥

(च १) यद्यपि गोस्वामीजी ने हर प्रकार से दीनता की है और निरभिमानिता भी ख़ूब ही दिखाई है परन्तु फिर भी उनको यह अवश्य विश्वास था कि उनकी रचना परमोत्तम होती है और सेवाय खलों के और कोई उनका उपहास न करेगा। तुलसीदासजी को समालोचकों से बड़ा भय था औ उन्होंने भविष्य और वर्तमान समालोचकों से बड़ी विनती द्वारा तर्क छोड़ कर कथा सुनने का अनुरोध किया है।

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाइँ बुद्धि बल बानी॥
अस बिचारि जे परम बिरागी। रामहिँ भजइँ तरक सब त्यागी॥
पुनि सब ही बिनवों कर जोरी। करत कथा जेहिँ लागु न खोरी॥
छमिहँहिँ सज्जन मोरि ढिठाई। सुनहँहिँ बाल बचन चितु लाई॥
समुझि बिबिधि बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहैं जे संका। मोंहि ते अधम ते जड़मति रंका॥
हँसिहहिँ कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषन धारी॥
खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिँ कलकंठ कठोरा॥
हँसिहहिँ बक दादुर चातकहीं। हँसहिँ मलिनखलबिमलबतकहीं॥

(च २) गोस्वामीजी की कविता का उपहास तो किसी ने नहीं किया परन्तु बहुत लोग इनके काव्य के इतने अधिक अर्थ करते हैं कि वे उपहासास्पद हो जाते हैं। इनमें से बहुत महाशयों ने ऐसे अर्थ निकाले हैं जो प्रशंसनीय भी हैं परन्तु कहना ही पड़ता है

कि शब्दों को तोड़ मरोड़ कर अर्थ निकालना कवि की आत्मा को क्लेश देना है। हम इस स्थान पर एक उत्तम और एक उपहास-योग्य अर्थ नीचे लिखते हैं:—

मुक्ति जनम महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस सम्भु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥
जरत सकल सुर वृन्द, बिखम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपाल सङ्कर सरिस॥

महि=म अक्षर को; अघ हानि कर=अघ हानिक र=र अक्षर अघ हानि करने वाला है। जहँ=र और म अक्षरों में। सो कासी=सोक असी=शोक के लिए तलवार। ज रत=जिसमें रत हैं। शङ्कर=कल्यान करने वाला। इस प्रकार अर्थ लगाने से उपर्युक्त दोहे कासी और शिव की स्तुति से राम नाम की स्तुति में हो जाते हैं। म को मुक्ति का जन्म जानो, और र को ज्ञान खानि और पापहानि करने वाला जानो, जिस र और म में शम्भु-भवानी वास करते हैं उस शोक के तलवार को क्यों न सेवै? जिस राम में बिषम गरल पान करने वाला (शिव) एवं सब सुरवृन्द रत हैं, हे मतिमन्द! उसको क्यों नहीं भजता? उस कल्यानकर के समान कृपालु कौन है?

बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसकानी॥
बिनय प्रेम बस, भई भवानी! (लाना तो) खसी माल। मूरति मुसकानी।

सीता ने कहा बिनय—प्रेम हो चुका, भई भवानी हो! लाना तो बकरों का समूह। इस पर तो मूर्ति भी मुस्कराई कि अब अच्छा बलिदान मिलेगा।

( छ १ ) गोस्वामीजी पात्रों से बातचीत कराने में कभी कभी उसको वाजिब से ज़्यादा करा देते थे।

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनउ तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृखा हमार॥

कुपथ माँगु रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी।

यह भगवान ने उस समय जब नारद ने राज-कन्या विवाहने के वास्ते उनसे रूप माँगा था नारद से कहा था। इसमें दोहा भर कह देना उचित था परन्तु चौपाई कह देने से उनकी भविष्य कुटिलता ऐसी प्रकट होगई कि जिसे कोई पागल भी समझ जाता।

धुवाँ देखि खर दूषन केरा। सूपनखइ तब रावन प्रेरा॥
बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कइ सुरति बिसारी॥
करसि पान सोवसि दिन राती। सुधि न तोहिं सिर पर आराती॥
राज नीति बिनु धन बिनु धरमा। हरिहिं समर्पे बिनु सत करमा॥
बिद्या बिनु बिवेक उपजाए। स्रम फल किए पढ़े अरु पाए॥
संग ते जती कुमन्त्र ते राजा। मन ते ज्ञान ज्ञान ते लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति असि सुनी॥

रिपु, रुज, पावक, पाप, प्रभु इन गनिय न छोट करि।
अस कहि बिबिधि बिलाप करि लागी रोदन करन॥

यहाँ नाक कान कटने पर सूर्पनखा को नीति और धर्म्म शास्त्र के सिद्धान्तों को उपदेश देने की कोई इतनी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती जितनी कि अपने दुख कहने की।

# बाल-काण्ड ।

(छ २) रामचन्द्र की महिमा बढ़ाने को गोस्वामीजी ने अन्य देवताओं की प्रायः निन्दा कर दी है। सती-मोह इस कथन का पूर्ण प्रमाण है। सतीमोह में विधि, हरि, हर, इत्यादि के अनेक रूप देख पड़े परन्तु रामचन्द्र, लक्ष्मण, और सीता के दूसरे रूप नहीं देख पड़े। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि लक्ष्मणजी भी विधि, हरि और हर से बड़े थे। "जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव कछु प्रगट देखावा॥" यह वही मसल हुई कि "मरे पर सौ दुर्रे।" परन्तु ऐसा रामचन्द्र से कराना बहुत ही अनुचित हुआ। जब कोई दुखित हो तो उस समय उसे और दुखित करना कौनसी महानुभावता है। सती से झूंठ बोलाना भी अनुचित हुआ। गोस्वामीजी ने सती की दुर्दशा का तो सविस्तर वर्णन किया है परन्तु दक्ष यज्ञ विध्वंस तीन ही चौपाइयों में कह डाला। "सती मरत हरि सन बर माँगा, जनम जनम शिव पद अनुरागा।" यहाँ पर हरि से बर मँगवाना भी बेजा है। महादेवजी के विवाह में इन्होंने परछन तक न होने दी और महादेव का स्वरूप देखते ही मैना मारे डर के भाग कर घर में घुस गई और पार्वती को लेकर रोने लगी, "जेहि बिधि तुम्हैं रूप अस दीन्हा। तेहिं जड़ बर बाउर कस कीन्हा"। समस्त रनिवास में हाहाकार पड़ गया। इसका कोई कारण नहीं जान पड़ता। मैना तो प्रथम से जानती थी कि पार्वती को कैसा बर मिलेगा और उसीके वास्ते पार्वती ने तप ही किया था तब फिर यह हाहा-

कार क्यों कराया गया। साधारण स्त्रियों की भांति मैना अत्यन्त अदृढ़ चित्त कैसे हो सकती थी? महादेवजी का विवाह इस कारण बिगाड़ा गया कि जिसमें रामचन्द्र के विवाह की शोभा बढ़ जावे। इस महाकवि की रामायण ही के आधार पर जहाँ कहीं बड़ा गड़ बड़ या ख़राबी होती है लोग प्रायः यह कहते हैं "कि महादेव की बरात है"। कुमारसंभव व शिवपुराण में महादेवजी का विवाह बड़ा ही उत्तम वर्णित है।

गोस्वामीजी ने महादेव से कहवाया है कि :—

अनुज जानकी सहित निरन्तर। बसहु राम प्रभु मम उर अंतर।

सो क्या महादेवजी लक्ष्मण का भी ध्यान धरते थे? परन्तु गोस्वामी ने उसमें भालु कीशों को निकाल दिया यही उनकी बड़ी अनुग्रह हुई।

इसी प्रकार परशुरामजी से यह कहला दिया कि:—छमहु छमा मन्दिर दोउ भ्राता।

उत्तरकांड में गोस्वामीजी ने माया का वर्णन करते हुए "नारद शिव बिरंचि सनकादी" को लोभ, मोह, काम आदि सभी दुर्वासनाओं का शिकार बना दिया है।

जो सम्पति सिव रावणहिँ दीन्हि दिए दस माथ।
सो संपदा बिभीषनहिँ सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

से भी इनकी निन्दा की वृत्ति पूरी तरह प्रकट होती है। दो एक स्थानों पर गोस्वामीजी ने वाक्य-रचना अशुद्ध की है—

देखि उमहिँ तप खिन्न सरीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा॥
प्रभु सरबज्ञ दास निज जानी। माँगु माँगु बर भइ नभ बानी॥

इन दोनों स्थानों पर 'भइ' के स्थान पर 'किय' कर देने से ठीक हो सकता था।

जो कछु आयसु ब्रह्मैं दीन्हा। हरखे देव बिलम्ब न कीन्हा॥

इसमें जो के पीछे सो किया गया यह नहीं लिखा इतनी कमी है।

परन्तु इन दो एक क्षुद्र व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियों को कोई भी दोष नहीं कह सकता क्योंकि यह आर्षप्रयोग समझना चाहिए। इस महाकवि ने परशुराम और लक्ष्मण का संवाद ऐसा उपहास-योग्य बनाया है कि जैसा करने में स्यात कोई क्षुद्र कवि भी लज्जित होता। इन्होंने परशुराम और लक्ष्मण को ऐसा दिखलाया है कि मानो एक ओर महाक्रोधी, निर्बल, अभिमानी और चिढ़नेवाला बुड्ढा खड़ा हो और दूसरी ओर एक बड़ा ही नटखट बिगड़ा हुआ ठठोल लौंडा, जिसको बड़े छोटों का कुछ भी लिहाज़ न हो। यह वर्णन गोस्वामीजी के सहज-गाम्भीर्य के बिल्कुल ही अयोग्य है। परशुराम के ये वाक्य कि—

उतरु देत छाँड़ौं बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुमारे॥
बोले रामहिँ देइ निहोरा। बचइ बिचारि बन्धु लघु तोरा॥

साफ व्यंजित करते हैं कि वे अपने चित्त में जानते थे कि युद्ध में उनसे कुछ भी किया न होगा अतः वे लक्ष्मण को क्षमा करने के बहाने ढूँढ़ते थे। यहाँ तक कि राम को भी चित्त में विचारना पड़ा कि:—

'गुनहु लखन कर हम पर रोखू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोखू॥
टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चंद्रमहिँ गसइ न राहू॥

यदि कहिए कि वे "बहै न हाथ दहै रिस छाती" के कारण विवश थे तो उन्होंने राम-लक्ष्मण को इस प्रकार क्यों प्रचारा कि—

देखु जनक हठि बालक एहू। कीन चहत जड़ जमपुर गेहू॥
छल तजि करउ समर सिव दोही। बन्धु सहित नतु मारउँ तोही॥

परशुराम द्वारा रामचन्द्र से निम्न दो वाक्य कहलाने में गोस्वामीजी ने परशुराम की पूरी नीचता देखा दी है :—

संभु सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रबोध।
बंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। दुज देउता घरही के बाढ़े॥

लक्ष्मण से यह वाक्य कहला कर स्वयम् गोस्वामीजी को सब लोगों से यह कहलाना पड़ा कि:—

अनुचित कहि सब लोग पुकारे।

निम्न वाक्यों से जान पड़ता है कि मानो परशुरामजी मूर्ख बनाये जा रहे थे:—

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया, परिहरि कोप करिय अब दाया।
टूट चाप नहिँ जुरइ रिसाने, बैठिय होइहैं पाँय पिराने।
जौ अति प्रिय तौ करिय उपाई, जोरिय कोउ बड़ गुनिय बुलाई।

किसी शूर से निम्न लिखित बात कहला कर भी युद्ध न कराना गोस्वामीजी का ही काम था:—

बिहँसे लखन कहा मुनि पाहीं, मूँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीं।

द्वापर के अंत में भगवान वेदव्यास ने भीष्म और परशुराम के युद्ध समय जो वार्ता कराई है उससे परशुरामजी का गाम्भीर्य

रूप से प्रकट होता है। जिस समय भीष्म ने बहुत ही अहङ्कार-पूर्ण बात चीत की और कहा कि जिस समय आपने पृथ्वी निछत्र की थी उस समय भीष्म नहीं था, अब मैं तुमको मार कर क्षत्रियों का वैर निकालूँगा, तब इन्होंने केवल यही कहा किः—

"कहा भयो बोलत इबिधि, काल बिबस ह्वै बीर"।

## अयोध्या-काण्ड।

भरत के चित्रकूट जाने में गोस्वामीजी ने कहा है कि राम के मिलने के पीछे वशिष्ठ तथा अयोध्यावासी गुह-निषाद से भेंटे। यह भेंट निःप्रयोजनीय थी क्योंकि वह तो शृङ्गबेरपुर से भरत के साथ आ रहा था तो फिर यह दुबारा भेटने की क्या आवश्यकता पड़ी?

## आरण्य-काण्ड।

दो एक स्थानों पर चौपाई १५ मात्राओं की लिख कर छन्दो-भङ्ग कर दिया गया है। यथाः—

तब खिसियानि राम पहँ गई।

सखी मरमी प्रभु सठ धनी।

परन्तु ऐसी चौपाइयाँ बहुत कम हैं।

जटायु ने रामचन्द्रजी से कह दिया था किः—

नाथ दसानन यह गति कीन्हीं, तेहि सठ जनक सुता हरि लीन्हीं।
लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं, बिलपति अति कुररी की नाईं।

इतना जानने पर भी राम ने न जानें क्यों बन्दरों को सीता के खोजने सब ओर भेजा और उनसे यह न कह दिया कि सीताजी

लङ्का में हैं ? इसी प्रकार किष्किन्धा-काण्ड में एक दफ़ा कहा किः—
एक बार कैसेहु सुधि पाओं, कालहु जीति निमिखि महँ लाओं।

गोस्वामीजी रामचन्द्रजी की दयालुता बिना कारण भी गाया करते थे। जटायु ने रामचन्द्र के वास्ते जान तक दे दी, तो इस विषय में यदि कुछ प्रशंसा हो सकती थी तो गीध की, परन्तु ये महाशय इस जगह भी राम ही की बड़ाई का डङ्का पीटते हैंः—

कोमल चित अति दीनदयाला, कारन बिन रघुनाथ कृपाला।
गीध अधम खग आमिख भोगी, गति तेहि दीन्हि जो जाँचत जोगी।

शबरी में नवधा भक्ति वर्तमान थी, तब भी यह कहते हैं कि—

जाति हीन अघ जनम मय, मुकुत कीन्हि असि नारि।
महा मन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहिँ बिसारि॥

## किष्किन्धा-काण्ड।

बालि त्रास व्याकुल दिन राती, तन बिबरन चिन्ता जरु छाती।
सो सुगरीव कीन्ह कपिराऊ, अति कोमल रघुबीर सुभाऊ।

इसमें कोमलता और दयालुता की कोई बात नहीं जान पड़ती। रामचन्द्र और सुग्रीव से यही निबन्ध हुआ था। राम ने बालि को मारा और सुग्रीव ने लङ्का में ससैन्य उनके लिए लड़ाई की।

## लंका-काण्ड।

रावण व अंगद की बात-चीत जो गोसाईंजी ने कराई है वह प्राकृतिक नहीं है। यद्यपि काव्य उनका उत्तम है तथापि यह कहना ही पड़ता है कि महाराजों की सभा में दूत इस तरह अयोग्य बात-

चीत नहीं कर सकता। इस संवाद में बहुत सी चित्ताकर्षक और मज़ाक़ मिली हुई बातें हैं जिससे इसके पढ़ने में बड़ा ही आनन्द आता है और यदि यही बातें किसी अन्य रीति पर लिखी जातीं तो ऊपर लिखा हुआ दूषण भी न आने पाता। यह बात कितने ही हिन्दी-कवियों ने हनुमन्नाटक के आधार पर लिख दी।

मन्दोदरी का रावण को समझाना भी कहीं कहीं अनुचित सीमाओं तक पहुँच गया है। यथाः—

बान प्रताप जानु मारीचा, तासु कहा नहिँ मान्यो नीचा।
निकट काल जेहिँ आवत साईं, तेहि भ्रम होय तुम्हारिहि नाईं।

ऐसे वाक्य कदाचित् कोई भी अच्छी स्त्री के मुख से नहीं कहला सकता। फिर मन्दोदरी का रावण के मरने पर विलाप भी इन्होंने बिगाड़ दिया हैः—

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा, रहा न कुल कोउ रोवन हारा।
अब तव सिर भुज जम्बुक खाहीं, राम बिमुख यह अनुचित नाहीं।

अहह नाथ! रघुनाथ सम, कृपा सिन्धु को आन?
मुनि दुरलभ जो परम गति, तुम्हैं दीन्हि भगवान॥

ऐसे ऐसे वाक्य मन्दोदरी के मुख से कदापि नहीं निकल सकते थे और हमें आश्चर्य्य होता है कि गोस्वामीजी ऐसे सत्कवि की लेखनी से वे इस भाँति कैसे निकले! अवश्य ही इनकी अपार-भक्ति, इनका प्राबल्य एवं दुर्बलता दोनों ही का कारण है। इनकी अलौकिक भक्ति के कारण जैसे इनकी लेखनी से ऐसे ऐसे उत्तम बयान निकले हैं कि जिनके सामने संसार की किसी भी भाषा के

उत्तमोत्तम वर्णन तक इनकी कविता के सामने शायद फीके जँचने लगेंगे वैसे ही वही अविरल भक्ति इन्हें बेमौक़ा भी रामचन्द्र की सभी ठौर प्रशंसा कराये बिना नहीं छोड़ती। जो बातें इन्होंने मन्दोदरी के मुख से कहाईं वही यह स्वयम् कह देते तो कोई भी बात न थी।

## उत्तर-काण्ड।

इसमें राजगद्दी के पश्चात् और कागभुशुण्डि कथा के पूर्व जो कथांश है वह रुचिकर नहीं जँचता। भुशुण्डि की कथा प्रारम्भ होने के पश्चात् वाला भाग नायकहीन न समझना चाहिए। यद्यपि उसमें स्वयं राम की कथा नहीं कही गई है तथापि प्रधानता छन्द छन्द क्यों पंक्ति पंक्ति में राम ही की है। फिर यह भाग रामायण का परिशिष्ट समझना चाहिए। जैसे प्रारम्भ में बन्दना-मय भूमिका वैसे ही अन्त में यह भाग जानना चाहिए। ज्ञान-दीपक वाला वर्णन पहले कुछ बुरा सा प्रतीत होता है पर अन्त में इस झगड़े का दोषोद्धार कर दिया गया है और गोस्वामीजी के मत से गीता से कोई वास्तविक विरोध नहीं रह गया है।

( ज १ ) गोस्वामीजी को वेद का प्रमाण प्रायः सभी ठौर दे देना अच्छा लगता है चाहे वह बात वेद में हो या न हो। यथाः—

त्रिबिधि समीर सु सीतल छाया, सिव बिसराम बिटप श्रुति गाया।
उपरोहित जेवनार बनाई, छरस चारि बिधि जसि स्रुति गाई।
अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ, वेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ।
तात (भरत) तुम्हार बिमलजसगाई, पाइहि लोकहु वेद बड़ाई।

( ज २ ) तुलसीदासजी का मत था कि कविता टेढ़ी एवं निन्द्य है पर यदि उसमें राम-कथा गान की जाय तो सत्सङ्ग से कविता पावन हो जाती है। इसी कारण यह नर काव्य के विरोधी थे।

भगत हेतु बिधि भवन बिहाई, सुमिरत सारद आवति धाई।
रामचरित सर बिनु अन्हवाए, सो स्रम जाय न कोटि उपाए।
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी, गावहिँ हरि गुन कलि मलहारी।
भनित बिचित्र सुकबि कृत जोऊ, राम नाम बिन सोह न सोऊ।
भनित भदेस बस्तु भलि बरनी, राम कथा मुद मङ्गलकरनी।

इन्हीं कारणों से गोस्वामीजी ने कभी नर काव्य न किया और यदि कभी दो पंक्तियाँ लिख दीं तो वे केवल मित्रता वश टोडर नामक एक भाग्यशाली व्यक्ति के विषय में लिखीं। फिर भी स्पष्ट है कि टोडर भी रामभक्त था और उसके विषयक केवल चार दोहों में भी महात्माजी ने दो बार राम नाम लाकर रख ही तो दियाः—

चारि गाँव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या संसार में, अथयो टोडर दीप॥ १॥
तुलसी राम सनेह को, सिर पर भारी भारु।
टोडर कांधा ना दियो, सब कहि रहे उतारु॥ २॥
तुलसी उर थाला बिमल, टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नैनन सींचिहौं, समुझि समुझि अनुराग॥ ३॥
राम धाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यही जानि संकोच॥ ४॥

धन्य टोडर ! तुम्हारे लिए हिन्दी-सूर्य्य स्वयम् महात्मा तुलसी-दासजी ने अपना दृढ़ सिद्धान्त छोड़ नर-काव्य किया !! धन्य !!!

इनकी दृष्टि इतनी पैनी थी कि कोई बात इनसे देखने एवं मनन करने से नहीं छूट रहती थी। साधु का महादेवजी के पैरों पर पड़ जाना, पार्वतीजी का बिदा के समय अपनी माता को दुबारा लिपट कर रोना, कौशल्या के दौड़ाने पर बालक रामचन्द्र का "ठुमुकि ठुमुकि" भागना और दूध भात मुँह में लगाये दशरथ के चौके से "किलकात" भाग चलना, "टिट्टिभ खग" का "उताने" सोना, जुर्री का "कुलह" छूटना, "पय फेनु" से "पबि टाँकी" फूटना, रावण द्वारा बिभीषण को "होइहि जब कर कीट अभागा" कहा जाना, "नौकारूढ़" मनुष्य को संसार का चलता हुआ दिखाई देना, गरुड़जी का प्रसन्नता में "पङ्ख फुलाना" स्त्रियों का दीपक को "अंचल" से बुझाना इत्यादि इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

( भ २ ) लोगों का वार्तालाप ये महानुभावजी बड़ो ही उत्तमता से वर्णन करते हैं। भरद्वाज, याज्ञवल्क्य, सप्तर्षि गौरी ( यह वार्ता ऐसो है जो पुरुषों और स्त्रियों के बीच ही हो सकती है ), ब्रह्मा, शिव ( विवाह-विषयक ), दशरथ वशिष्ठ ( रामाभिषेक-विषयक ), केकयी-मन्थरा, दशरथ-केकयी, राम-सुमन्त, राम-सीता ( वन-गमन विषयक ), भरत-वशिष्ठ, भरत-राम ( वन में ) इत्यादि की वार्तायें बड़ो ही उत्तम रीति पर कराई गई हैं। अन्य लोगों की आपस में बात चीत एवं ऊपर लिखी हुई वार्तायें ऐसी अच्छी हैं कि उनकी

जोड़ी हिन्दी-साहित्य में तो है ही नहीं बरन शायद और कहीं भी न मिले।

( भ ३ ) अपने नायकगण के गुण दिखलाने को गोस्वामीजी उपनायकों की त्रुटियाँ ख़ूब ही दिखला देते हैं। सती-मोह में लक्ष्मणजी, राम-विवाह के लिए शिव-विवाह, रामचन्द्र की योग्यता और शूरता दिखाने को लक्ष्मण एवं सब सेना का रावणादिक की माया को न समझ सकना इत्यादि इस बात के उदाहरण हैं।

( भ ४ ) तुलसीदासजी रूपक बहुत बड़े बड़े एवं बड़े ही सुन्दर कह सकते थे और इन्होंने सैकड़ों ही उत्तमोत्तम रूपक कहे हैं, यथा, मानस, ( बन्दना में ), धनुष-यज्ञ में चाप-जहाज एवं राम-सूर्य्य वाले रूपक, कैकेयी का नदी वाला रूपक ( अयोध्या-काण्ड ), भरतजी का नदी वाला रूपक ( उनका चित्रकूट पर श्रीराम से मिलने में ), बसन्तऋतु का फ़ौज की चढ़ाई वाला (आरण्य-काण्ड), रामचन्द्र के गुणों का रथ वाला ( लङ्का-काण्ड ), रावण के युद्ध में सेना का वर्षा ऋतु वाला ( लङ्का-काण्ड ), राम-प्रताप का सूर्य्य वाला ( उत्तर-काण्ड ), ज्ञान-दीपक वाला प्रसिद्ध रूपक, एवं विनयपत्रिका के सैकड़ों रूपक कहाँ तक लिखें ?

( भ ५ ) श्रीरामचन्द्रजी के इन्होंने न जाने कितने "नखशिख" कहे हैं और वे एक से एक उत्तम हैं।

( भ ६ ) गोस्वामीजी की उमङ्ग (Enthusiasm) बड़ी ही प्रबल थी। रामचन्द्रजी के विषय में जो कोई भूल कर भी कोई अनुचित

बात का सन्देह तक कर दे तो उसे पूरी झाड़बाजी किये बिना ये नहीं मानते थे।

(१) पारवतीजी ने कहीं पूँछ दिया कि रामचन्द्रजी परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप ही थे या कोई और। इतने ही पर शिवजी ने उन्हें इतना कुछ फटकारा कि बस, "एक बात नहिँ मोहिँ सोहानी" इत्यादि देखिए।

(२) केवट द्वारा श्रीराम के चरण धोये जाने में यह क्या ही बिमल पड़े "अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा"।

(३) यदि कोई अन्य व्यक्ति—मित्र हो या शत्रु—श्रीराम से मिलने चलता था तो भी यह अपनी उमंग में आकर उसे राम दरश-लालसा उछाह में उन्मत्त सा कर देते थे, यथा सुतीक्ष्ण, विश्वामित्र, मारीच, बिभीषण एवं कुम्भकर्ण की उमंगें।

(४) इसी कारण इनका जो मत था उसे बार बार यह लिखते थे तथा जिसकी प्रशंसा करते उसे सातवें आसमान पर चढ़ा देते एवं जिसकी निन्दा करने लगते उसे तलातल बरन पाताल तक पहुँचा दिये बिना न मानते।

(५) जोगी, जती, तपी, विज्ञानी आदि के विषय में इन्होंने क्याही ज़ोरों पर लिखा है कि यह सब "तरैं न बिनु सेये मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी"॥ मानो श्रीरामजी "बिला शिरकत ग़ैरे व मुक़ाबिज़त दीगरे" केवल इन्हीं के स्वामी थे। यह सब बातें इनकी प्रबल उमंग के प्रमाण हैं।

(भ ७) यद्यपि गोस्वामीजी को हँसी पसन्द न थी तो भी कहीं कहीं प्रच्छन्न प्रहसन को भी उन्होंने ठौर देही दिया है। नारद-मोह-वर्णन में गुप्त हँसी की मात्रा विशेष पाई जाती है। यथाः—

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुमार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृखा हमार॥

नारद से हरगणों ने कहा—

रीझिहि राज कुँवरि छबि देखी।
इनहिँ बरिहि हरि जानि बिसेखी॥

रामचन्द्र का वचन केवट से—

"सोइ करउ जेहि नाव न जाई"।

लक्ष्मण का सूर्पनखा से कहना कि—

प्रभु समरथ कोसल पुर राजा।
जो कछु करइँ उनहिँ सबु छाजा॥
जो जेहि मत भावै सो लेहीं।
मणि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥

सप्तर्षि ने पार्वतीजी से कहा "गिरि सम्भव तव देह"।

महादेव की बरात में विष्णुजी ने कहा "बिलग बिलग ह्वै चलहु सब निज निज सहित समाज"।

अंगद का रावण से कहना कि "मम पद गहे न तोर उबारा"।

रावण का हनुमान के प्रति कहना 'मिला हमैं कपि गुरु बड़ ज्ञानी'।

(भ ८) इन महात्माजी के सैकड़ों ही पद कहावत के रूप में परिणत हो गये हैं। इसके उदाहरण देना व्यर्थ है क्योंकि थोड़ो भी

रामायण पढ़ने से सभी ठौर इसके दस पाँच प्रमाण मिल सकते हैं।

( अ १ ) गोस्वामीजी ने कई प्रकार की भाषाओं में सफलता-पूर्वक कविता की है। एक तो इन्होंने संस्कृत में भी श्लोक बनाये हैं और इनके श्लोक बड़े ही रुचिर हैं एवं हिन्दी जानने वाले भी उन्हें अधिकांश समझ सकते हैं। इन श्लोकों में गोस्वामीजी ने विशेषणों का अच्छा प्रयोग किया है। विद्वानों का मत है कि ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता न थे और यह बात विशेषणों के अधिक प्रयोग एवं एक स्थान पर व्याकरण की एक अशुद्धि आ जाने से ठीक प्रतीत होती है।

रामचरित-मानस में इन्होंने थोड़े से श्लोकों को छोड़ बैसवाड़ी और अवधी भाषाओं का प्रयोग किया है और यह भाषा तब से कथा-प्रासंगिक ग्रन्थों की भाषा हो गई है। इसी भाषा का प्रयोग अपने छोटे छन्दों वाले अन्य ग्रन्थों में इन्होंने किया है परन्तु कविता-वली, हनुमान-बाहुक, एवं संकट-मोचन में इन्होंने इस भाषा के साथ ब्रजभाषा का भी सम्मेलन कर दिया है। गीतावली रामायण एवं कृष्णगीतावली में शुद्ध ब्रजभाषा ही काम में लाई गई है और विनयपत्रिका में उपर्युक्त सभी भाषाओं को लेकर उसमें संस्कृत वत् भाषा का भी मिश्रण कर दिया गया है। इतनी भिन्न भिन्न प्रकार की भाषाओं में ऐसी उत्तम काव्य करना इन्हीं महाराज का काम था, तभी तो दासजी ने कहा है कि:—

तुलसी गंग दुवौ भए सुकबिन के सरदार।<br>
इनकी काव्यन में मिली भाषा बिबिधि प्रकार॥

हिन्दी-साहित्य में भाषा का ऐसा भारी आचार्य्य दूसरा नहीं हुआ।

( अ २ ) समुचित शब्दों का प्रयोग तो कोई इस महा कवि से सीख ले। यथाः—

सिवहिँ बिलोकि सशंक्यो मारू।

रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुगर्म भगवाना।

बिकसे सरनि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा ( इस में भौंरों की गुंजार शब्दों ही में सुन लीजिए )।

सीय स्वयम्बर में "सिमिटे सुभट देखि एक ते एका"।

"पतियानि," "दलकि उठी," "धुवाँ देखि खर दूषन केरा" इत्यादि।

गोस्वामीजी अनुप्रास को बहुत आदर नहीं देते थे और उसका स्वल्प रीति से ही प्रयोग करते थे और यमक का तो इन्होंने बिलकुल कम प्रयोग किया है। इनकी भाषा में बाह्याडम्बर नहीं होता था परन्तु इस पर भी वह बहुत ही सराहनीय है।

( अ ३ ) इन्होंने सब प्रकार के शब्दों का बहुत स्वच्छन्दता-पूर्वक प्रयोग किया है। फ़ारसी, अरबी, तुर्की, संस्कृत और ठेठ ग्राम्य भाषाओं तक के शब्द इनके काव्य में बहुतायत से पाये जाते हैं परन्तु उनका बर्ताव इन्होंने ऐसी योग्यता से किया है कि ऐसे प्रयोगों से भी इनकी भाषा की रोचकता बढ़ गई है।

हम इनके काव्य से कुछ असाधारण शब्द नीचे देते हैं परन्तु विस्तार-भय से उनके उदाहरण देना दुस्तर है और इन शब्दों के सामने कोष्ठक में मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ जून सन् १८९१ ईसवी की मुद्रित पुस्तक के पृष्ठ दिये हुए हैं।

भुइँ (१६९) कोहाब (१७२) माहुर (४) गनी (१५) गरीब (१५) गरीब नेवाजू ( ) साहेब ( ) गाई (१६) बाउ ( ) अवडेरि (३६) मरायल (३६) खटाहिँ (३६) दुइ, भीतर, अयं (३८) सुनखत (४१) जिनिसि, सुअर, सयाने (४२) जहिया, तहिया (६०) चौपट (७६) अँगुलिया, हलरावैं (८७) जानबी (१४५) बाटपरै (१९८) कठौता (१९९) देबा, लेबार (१९९) कतहुँ, ठाहर, ठाट्ठ (२१०) साउजु (२११) मुठभेरी (२१०) बेहड़ (२१२) बिढ़इ (२२१) थन (२२४) डोरिआए (२३७) बारहबाट (२२४) बियानी ( ) ढ़रके, खँभारू (२४६) पनहीं (२४९) गुदरत, गाँड़र (२५१) नेवाजा, बेहू (२५९) कुटीर (२८२) अकसर (३०५) डावर (३२७) निरावहिँ (३२८) उबरिहसि (३५९) ठकुरसोहाती (३६६) धायल (४६६) फराक (४९७) हरहाई (५०१) पन्हाई (५३८) भट भेरे (५४१) गरिसा, डहरुआ, नहरुआ (५४२) इत्यादि।

(ञ ४) गोस्वामीजी उमंग या हर्ष के समय प्रायः छन्द लिखते थे, परन्तु इनके छन्द प्रायः दोहा व चौपाइयों से शिथिल हैं, यद्यपि कुछ छन्द परम मनोहर भी हैं। जब ये उमंग में आकर छन्द लिखते हैं तो बहुधा उस दोहा या चौपाई का अन्तिम शब्द

जिसके बाद छन्द होता है छन्द के आदि में लिख देते हैं। ये विनती, युद्ध, विवाह, उत्सव, आदि में प्रायः छन्द लिखते थे। अयोध्या-कांड में इन बातों का अभाव है अतः उसमें छन्द भी बहुत ही कम हैं। लंका-कांड और बाल-कांड में छन्द बहुत हैं और उत्तर-कांड व आरण्य-कांड में भी स्तुति-बिषयक छन्द विशेषता से हैं।

( ट १ ) महात्मा तुलसीदासजी से महाकवि के गुणों का समुचित वर्णन करना हमारी शिथिल लेखनी से परे है। इनकी रचनाओं के पृष्ठ पृष्ठ क्यों पंक्ति पंक्ति वरन् शब्द शब्द में अद्वितीय चमत्कार देख पड़ता है। ऊपर हम इनकी कविता में जो दो चार त्रुटियाँ दिखला आये हैं उन्हें पाठक कदाचित् केवल त्रुटि ही समझ बैठे हों परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है और यदि मान भी लिया जाय कि वे वास्तविक त्रुटियाँ हैं तो भी हम निश्शंक कह सकते हैं कि उनमें से अधिकांश एक प्रकार का गुण भी समझी जासकती हैं और यदि वे इनकी रचना से दूर कर दी जावें तो कदाचित् गोस्वामीजी की ख्याति इतनी विस्तृत न रहै जितनी कि वह इस समय है। हमने लक्ष्मण-परशुराम एवं रावण-अंगद-संवाद दूषित बतलाये हैं पर गोस्वामीजी के लाखों पाठक इन्हीं संवादों को उत्तम समझते और प्रेम से पढ़ते हैं।

इस महानुभाव की कविता से यदि उत्तम अवतरण हम यहाँ देने लगें तो इस लेख का आकार रामायण से शायद कुछ ही कम हो अतः उसमें से थोड़े ही उदाहरण यहाँ पर दे देने हम योग्य समझते हैं। इस लेख में हम प्रत्येक कांड रामायण एवं गोस्वा-

मीजी के अन्य ग्रन्थों पर अपनी अनुमति प्रथम लिख चुके हैं जिसमें उन सभों के अनेक गुण प्रदर्शित किये गये हैं। ऐसे ही इनके पात्रों के शील स्वभाव वर्णन एवम् कतिपय अन्य प्रकरणों में भी इनकी कविता के गुण देखाए जाचुके हैं। कुछ स्फुट गुणावली इस स्थान पर भी दी जाती है :—

( १ ) मदन-दहन में "तब सिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयौ जरि छारा"॥ में कितना शीघ्र जलना दिखलाया गया है।

( २ ) जब ये पार्वती या सीताजी की सुन्दरता का वर्णन करते हैं तब उनका साधारण स्त्रियों से पार्थक्य करने को जगदम्बा या जगत-मातु आदि शब्दों का प्रयोग उनके विषय अवश्य कर देते हैं।

( ३ ) स्वायम्भू मनु और सत्यरूपा रानी से यद्यपि भगवान् ने यहाँ तक कह दिया था कि:—"सकुच बिहाइ माँगु नृप मोहीं। मोरे नहिँ अदेय कछु तोहीं"॥ तथापि मनुजी से किस संकोच के साथ वरदान मँगवाया गया है कि देखते ही बन आता है।

( ४ ) राजा भानुप्रताप ने जब कपटी मुनि की परीक्षार्थ उससे अपना नाम पूँछा तब वह उनका व उनके पिता का नाम जो उसे भली भाँति विदित था किस शीघ्रता से बता कर आगे को बढ़ा और कहने लगा कि "गुरु प्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न आनहि. जानि अकाजा॥ इत्यादि कि जिससे राजा को किसी अन्य वे जाने

हुए प्रश्न के पूँछने का अवसर ही न मिले। इसी विचार से वह राजा को तुरन्त वरदान देने को तैयार होगया।

( ५ ) इसी कथा में कपटी मुनि को भानुप्रताप की राजधानी में जाना अवश्य अभीष्ट था और उधर एकांतवासी योगी बने रहने की भी प्रबल इच्छा प्रगट करना अभीष्ट था सो राजा को खुशामद करके उसे अपने यहाँ बुला ले जाने के लिए बाध्य करने को उसने क्या ही युक्ति से कहा कि—

आजु लगे अरु जबते भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ।
जो न जाउँ तउ होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥

( ६ ) भानुप्रताप के सो जाने पर कालकेतु का आना और उसका कपटी मुनि से वार्तालाप बड़े ही उत्तम रीति से वर्णित किये गये हैं जिसमें नाटक का सा आनन्द (Dramatic effect) आता है। यह पूरा उपाख्यान वन्दना एवम् मदन-दहन की भाँति बड़ा ही उत्कृष्ट हुआ है।

( ७ ) जनकपुरी में जब विश्वामित्र और जनकजी की बातचीत हो चुकी उसके पश्चात् गोस्वामीजी रामचन्द्रजी को उस स्थान पर लाये। यदि श्रीराम पहले ही से वहाँ उपस्थित होते तो गोस्वामीजी के हिसाब इनकी इसमें कुछ न्यूनता अवश्य होती क्योंकि अवश्य ही जनकजी पहले विश्वामित्रजी से वार्तालाप करते और जनक के सम्मानार्थ राम को उठाना भी पड़ता।

( ८ ) श्याम गौर किमि कहँउ बखानी। गिरा अनैन नैन बिनु बानी॥ इस छन्द में क्याही उत्तम भाव कितने कम शब्दों द्वारा

कहा गया है। गोस्वामीजी के भाई नन्ददास ने भी यही भाव कहा है।

यथा—

नैनन के नहिँ बैन बैन के नैन नहीं हैं।

(९) लोचन मगु रामहिँ उर आनी। दीन्हेउ पलक कपाट सयानी॥

इसमें क्याही उत्तम भाव कहा गया है। फुलवारी-वर्णन में बहुत से उत्तम भाव इस महाकवि ने कहे हैं परन्तु हम स्थानाभाव से उन सबको नहीं दिखा सकते।

( १० ) मन्थरा और कैकेयी की वार्ता में चेरी ने रानी की एक एक बात का पूर्ण उत्तर प्रायः रानी ही के शब्दों में दे दिया है।

यथाः—

"हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे"। उत्तर, "गाल करब केहि कर बल पाई"।

"दीन लखन सिख अस मन मोरे"। उत्तर, "कत सिख देइ हमहि कोउ माई"।

"सभय रानि कह कहसि किन कुसल राम महिपाल"।

उत्तर, "रामहिँ छाँड़ि कुसल को आजू"

"पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तौ गहि जीह कढ़ावहुँ तोरी"।

उत्तर—एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीह करि दूजी"।

पुनः— "धरेउ मोर घरफोरी नाँऊँ।

"काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेखि पुनि चेरि; कहि भरत मातु मुसकानि"॥

उत्तर— "करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा।
चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी"॥

(११) केकयसुता सुनत कटु बानी।
कहि न सकी कछु सहमि सकानी॥
तन पसेउ केदलि जिमि कांपी"।

इन थोड़े शब्दों में क्याही उत्तम भाव दिखलाया गया है।

(१२) गोस्वामीजी के वर्णन ऐसे उत्तम होते हैं कि जिनसे कथित विषय का चित्र ही सन्मुख उपस्थित हो जाता है:—

"भूमि सयन पट मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना"॥
"माथे हाँथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोच लाग जनु सोचन"॥

(१३) "बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहुँ बोलाइ लगाइ उर हरखि निरखिहौं गात"॥

इस दोहे में कितना वात्सल्य भाव भरा हुआ है।

भरतजी जब कौशल्या के पास गये तो अपना दुख रोते हुए कौशल्या ने क्याही कहा है कि:—

"पितु आयसु भूषन बसन तात तजेउ रघुबीर।
बिसमय हरष न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर"॥

इस दोहे की प्रशंसा कहाँ तक हम करें। इसकी छटा पूरा प्रसंग पढ़ने से जान पड़ती है।

(१४) भरत के वन जाते समय निषादपति की बातों में गँवारू शब्द क्या ही उत्तमता से रक्खे गये हैं कि जैसी बातचीत उस श्रेणी के लोग करते हैं:—

"हथ बासहु बोरहु तरनि कीजै घाटा रोहु"।
बेगिहि भाय सजहु संजोऊ।
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं।
भाथा बांधि चढ़ावहिँ धनुहीं॥
अंगुरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं"

अयोध्या-कांड के गुणों को हम कहाँ तक वर्णन कर सकते हैं। यदि उसके गुणों का पूर्ण वर्णन किया जावे या उसके उत्तम छन्द उद्धृत किये जावें तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। इसमें प्रेम, भक्ति, उत्साह, वर्णन-चातुरी, इत्यादि वर्णनों की गोस्वामीजी ने पराकाष्ठा कर दी और करुणारस का भी यह ख़ज़ाना ही है।

( १५ ) सूर्पनखा जब रावण के पास गई तो गोस्वामीजी ने उसका क्रोध बढ़ाने के लिए सूर्पनखा से झूँठ ही यह बात कहला दी कि "तासु अनुज काटी स्रुति नासा। सुनि तव भगनी करि परिहासा"॥

( १६ ) सुन्दर-कांड में हनुमान के सन्मुख सीताजी व रावण की वार्ता करा कर गोस्वामीजी ने यह पूर्ण रूप से प्रमाणित कर दिया कि सीताजी में किसी प्रकार का लांछन न था और उनको रावण कितना तंग किया करता था एवं त्रिजटा वाले संवाद से यह भी दर्शित करा दिया कि वह राम के विरह में कितनी कातर थीं।

( १७ ) लंका-कांड में युद्धारम्भ के पूर्व क्या ही शांतमय दृश्य दिखलाये गये हैं। सुबेल शैल, रात्रि-वर्णन, रावण के अखाड़े का वर्णन इत्यादि देखिए।

( १८ ) चन्द्रमा के कलंक वर्णन के विषय प्रत्येक व्यक्ति ने मानो अपना ही हाल संघटित कर दिया है, यथा, सुग्रीव राजा हुए थे, अतः उन्हें उसमें भूमि की छाया प्रतीत हुई, अंगद का राज्य छिन गया था इस कारण उनको यह जान पड़ा कि ब्रह्मा ने चन्द्रमा का सार भाग हर लिया अतः उसकी छाती में छेद होगया, उधर बिभीषण रावण की लात सह चुके थे अतः उन्हें यही जान पड़ा कि चन्द्रमा को किसी ने मारा है उसी की श्यामता है, और श्रीरामजी को भाइयों से बड़ा स्नेह था और वे विरही थे इसलिए उन्हें यह प्रतीत हुआ किः—

कह प्रभु गरल बन्धु ससि केरा, अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।
बिष संजुत कर निकर पसारी, जारत बिरहवन्त नर नारी।

अन्त में हनुमानजी अपना दास भाव क्यों छोड़ने लगे सो उन्होंने चट यही कह दिया किः—"ससि तुम्हार प्रिय दास, तव मूरति तेहि उर बसति सोई स्यामता भास"॥

( १९ ) लक्ष्मण के शक्ति लगने पर श्रीराम ने जो विलाप किया है उसमें तीन बड़ी बड़ी भूलें जान बूझ कर कराई गई हैं। एक यह कि—"मिलइ न जगत सहोदर भ्राता" दूसरे "निज जननी के एक कुमारा" तीसरे "सौंपेउ मोहि तुमहि गहि पानी"। यह भूलें इस कारण कराई गई हैं कि गोस्वामीजी को रामचन्द्र की व्याकुलता व शोक प्रदर्शित करना अभीष्ट था। इस बात को न विचार कुछ लोग इसमें सैकड़ों झगड़े पैदा करते और भूलें हटाने के विचार से भांति भांति के अर्थ ला जोड़ते हैं। हमारी समझ में तो गोस्वा-

मीजी ने ऐसी स्पष्ट भूलें दिखला कर अपनी उद्दंड कवित्व-शक्ति, एवं मानुषीय प्रकृति का अपार ज्ञान प्रदर्शित किया है। क्लिष्ट कल्पना वाले अर्थ यहाँ पर लिखने की कोई आवश्यकता नहीं पर इतना हम कह देते हैं कि वे अर्थ ठीक कदापि नहीं बैठते।

( २० ) कुम्भकरण से युद्ध-यात्रा के समय मार्ग में बिभीषण का मिलाना बड़ा ही समुचित हुआ है। बिभीषण ने मानों उससे अपना राम से मिल जाने का कारण बयान कर अपनी सफ़ाई अपने बड़े भाई से की।

( २१ ) तुलसीदास ने सीय-त्याग एवं लव-कुश-उपाख्यान जान बूझ कर इस कारण उड़ा दिये कि उससे श्रीराम की निन्दा होती।

( २२ ) गोस्वामीजी की उपमायें बड़ी ही उत्तम होती थीं:—

दलकि उठी सुनि बचन कठोरा, जनु छुइ गयउ पाक बर तोरा।
देखि लाग मधु कुटिल किराती, जनु गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती।
यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मतिमन्द।
भूषन सजति बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फन्द॥

किष्किन्धा-काण्ड के वरषा व शरद-वर्णन में बहुत ही उत्तम उपमायें दी गई हैं उनका उल्लेख यहाँ कहाँ तक करें। कुछ लोगों का मत है कि मुसल्मानों को शेख़सादी और हिन्दुओं को तुलसी-दास ने बिगाड़ा, पर ऐसा कहना नितान्त भ्रममूलक है। अवश्य ही कतिपय अवांछित बातों के भी समर्थन में कुछ प्रमाण गोस्वामीजी की रचनाओं से मिल जाते हैं, पर ऐसे प्रमाण बहुत ही कम पाये जावेंगे और वास्तविक बुरे कामों का समर्थन तो इनके काव्य से

हो ही नहीं सकता। गोस्वामीजी के विरुद्ध अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि उनके कतिपय वाक्य आलसी लोगों को अकर्मण्यता के सहायक हो सकते हैं, यथा "होइहि सोइ जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावइ साखा"। पर जैसा हम इस विषय में ऊपर लिख आये हैं इन्होंने वास्तव में अकर्मण्यता को सहारा कभी नहीं दिया है। श्रीरामचन्द्र का अपरिमित भक्त होने पर भी जो महानुभाव ऐसा वाक्य कह सकता है किः—

"कादर मन कर एक अधारा, दैव दैव आलसी पुकारा"।

उसे कोई निरुद्योगता का सहायक कैसे कह सकता है। यों तो समुद्र में रत्न और मकर और विष सभी हैं सो ऐसे ही इस महात्मा के काव्य-महासागर में भी दो चार दूषण की बातें यदि ढूँढ़ने से कहीं निकल आवें तो उसमें आश्चर्य्य ही क्या है, परन्तु वास्तव में इस समय हिन्दूजाति का वास्तविक अवलम्ब जितना तुलसीकृत रामायण तथा उनके अन्य ग्रन्थ हो रहे हैं उतना सहारा आकाश पाताल ढूँढ़ने पर भी और कहीं न मिल सकेगा। साधारण कवियों के गन्दे और विषय-वासना पूर्ण काव्य पढ़ने से चाहे अच्छा भले ही क्यों न लगे परन्तु चित्त में विकार उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता, परन्तु जितनी देर तक इस महात्मा के ग्रन्थ-रत्नों का परिशीलन किया जावे उतने समय के लिए मानो इस संसार की तुच्छ बातों के परे होकर पाठक उच्च विचारों, उच्च कर्मों और उच्च अभिलाषाओं का पात्र बन जाता है। ऐसे कवि-कुल-चूड़ामणि पर उपर्युक्त प्रकार के लांछन लगाने कृतघ्नता की पराकाष्ठा समझनी चाहिए।

ऊपर लिखा जा चुका है कि गोस्वामीजी की कविता कई प्रकार की हुई है। रामचरितमानस, जानकी-मङ्गल, कलिधर्माधर्म-निरूपण, एवं हनुमानचालीसा की शैली एक ही भाँति की है। कविता-वली, हनुमानबाहुक और संकटमोचन की दूसरी प्रकार की, रामगीतावली और कृष्णगीतावली की एक तीसरी ही शैली है, दोहावली और सतसई चौथी रीति पर बनी हैं और विनयपत्रिका का ढङ्ग एक पाचवें ही कँडे का है। भिन्न भिन्न प्रकार के ग्रन्थों में कविता-शैली बराबर बदलती गई है पर तुलसीदासत्व की छाप सब पर दूर से ही दृष्टि-गोचर होती है। इनके जो जो विचार और सिद्धान्त हैं वे इनके सभी ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से सौ सौ पचास पचास बार दोहरा दोहरा कर कई प्रकार से कहे गये हैं। हमको कई ग्रन्थों के विषय, जो इनके रचे प्रसिद्ध हैं, सन्देह हुआ करता था कि शायद उन्हें किसी अन्य कवि अथवा कवियों ने इनके नाम से बना डाले हों और इस कारण हमने अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थों को छोड़ और सभी पुस्तकों की जाँच बड़ी ही कड़ाई से की पर अंत को हमें अधिकांश के विषय में पूर्ण विश्वास हो गया कि वे अवश्य इन्हीं महात्मा तुलसीदास के रचे हुए हैं जिसका ब्योरेवार हाल अन्यत्र लिखा जा चुका है।

निदान सब बातों पर विचार करने से विदित होता है कि इस महा कवि का काव्य हिन्दी में अद्वितीय है। यदि कोई भी हिन्दी-कवि इनकी बराबरी में उपस्थित किये जा सकते हैं तो वे महात्मा सूरदास और देव ही हो सकते हैं। यों तो हिन्दी-साहित्य में नौ कवि ऐसे

हैं जिन्हें हम सर्वोच्च कक्षा (Reserved Class) में रखते हैं, अर्थात् १—तुलसीदास, २—सूरदास, ३—देव, ४—विहारी, ५—भूषण, ६—केशवदास, ७—मतिराम, ८—हरिश्चन्द्र और ९—चन्द, परन्तु जैसे विष्णुभगवान के दशावतारों में से राम और कृष्ण की ही पूर्ण महिमा है उसी प्रकार हिन्दी-साहित्य के इस "नवरत्न" में से तुलसी-दास एवं सूरदास ही सूर्य्य, चन्द्र की भाँति महिमा में सब से निकलते हुए देख पड़ेंगे। अधिक क्या कहें हमारी स्वल्प बुद्धि के हिसाब से महात्मा तुलसीदास से बढ़ कर हमारी जानिबकारी में कभी किसी भी भाषा में कोई कवि संसार भर में कहीं नहीं हुआ। इनमें एक तो कोई दूषण हैं ही नहीं और जो दो चार हैं भी वे एक प्रकार से गुण ही कहे जा सकते हैं। जब तक हिन्दूजाति पृथ्वी-मण्डल पर वर्तमान है तब तक महात्मा तुलसीदासजी महाराज का नाम सदैव अमर रहेगा। अब हम इस निबन्ध को इन्हीं महानुभाव के दो एक अमृतमय पद्यों के साथ समाप्त करते हैं:—

"मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति क्रूर कबिता सरित की ज्यों परम पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनित भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव भूति अंग मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी"॥

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी।
कबि कोबिद बिरक्त संन्यासी॥
जोगी सुर अरु तापस ज्ञानी।
धरम निरत पंडित बिज्ञानी॥
तरहिँ न बिनु सेये मम स्वामी।
राम नमामि नमामि नमामी॥

सूरदास।

जगत विदित कवि कुल मुकुट सूर भगत सिरताज।
कर सों इंगित करि भजन समुद सुनावत आज॥

# महात्मा श्रीसूरदासजी।

सूरदास ने बिरच सूर सागर अति भारी।
कृष्ण-भक्ति की ललित लहर जग में बिस्तारी॥
लिया बिषै जो हाथ दूर तक उसे निबाहा।
नहिँ छोड़ा यक भाव शब्द-सागर अवगाहा॥
कर अमित बिषै बरनित बिसद सकल परम सुन्दर कहे।
अब कबि गन के हित ये बिषय इस कबि के जूठे रहे॥

श्रीसूरदासजी की गणना अष्ट छाप अर्थात् ब्रज के आठ कवीश्वरों में थी। इन आठों कवियों के नाम ये थेः—सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास। इनमें से प्रथम चार महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य्यजी के, और अन्तिम चार श्रीस्वामी विट्ठलनाथजी के सेवक थे। ब्रज-भाषा के अरुणोदय काल में ब्रज में ये आठों कवि हो गये हैं, और सभों ने पदों द्वारा श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द का यशकीर्तन किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक बाबू राधाकृष्णदासजी ने, जो काल की कराल गति से हम लोगों को छोड़ कर हाल ही में परलोकवासी हुए हैं, खेमराज श्रीकृष्णदास के छापेख़ाने में सूरकृत "श्रीसूरसागर" नामक ग्रन्थ संवत् १९५३ वि० में छपाया था। उसी में भूमिका की भाँति उन्होंने सूरदासजी का जीवन-चरित्र भी लिखा था। इस लेख में घटनाओं के लिखने में उस जीवन-चरित

से भी सहायता ली गई है। इस लेख में जहाँ पृष्ठ और संख्या का हवाला है वह इसी पुस्तक का है।

सूरदासजी का जन्म अनुमान से संवत् १५४० वि० अर्थात् सन् १४८४ ई० में हुआ था, और उनकी मृत्यु संवत् १६२० वि० में होना अनुमान किया जाता है। उनकी मृत्यु का संवत् नितान्त अनुमान पर निर्भर है, क्योंकि जब ६७ वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'सूरसारावली' लिखी तो अस्सी वर्ष की अवस्था तक उनका जीवित रहना ठीक जँचता है। बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "मुझे उनकी अवस्था का लग भग अस्सी वर्ष की होने का पक्का प्रमाण मिला है," पर वह पक्का प्रमाण क्या है सो उन्होंने नहीं लिखा। सूरदासजी के जन्म-विषयक प्रमाण में यही वक्तव्य है कि सूरसारावली के विषय सूरदासजी ने स्वयं उसी ग्रन्थ का १००२ नम्बर का छन्द यों लिखा है:—

गुरू प्रसाद होत यह दरसन सरसठि बरस प्रवीन।
शिव बिधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिँ लीन॥

यह सूरसारावली एक प्रकार से सूरसागर की सूची कही जा सकती है और यह भी जान पड़ता है कि सूरसागर के समाप्त होने के कुछ ही दिन पश्चात् बनाई गई होगी, क्योंकि ग्रन्थ बनाने पर उसकी सूची लिखने की आवश्यकता शीघ्र ही होती है। सूरदासजी ने साहित्यलहरी नामक एक और ग्रन्थ बनाया है और उसमें सूर-सागर में लिखित एवं अन्य दृष्ट कूट पदों का छाँट कर संग्रह किया है। जान पड़ता है कि सूरसागर के बन जाने के कुछ ही दिन पश्चात् यह ग्रन्थ भी बना होगा। इसमें सूरदासजी ने यों संवत् दिया है:—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सम्वत पेख ॥
नन्दनन्दन मास छै ते हीन त्रितिया बार।
नन्दनन्दन जनमते हैं बाण सुख आगार ॥
तृतिय ऋक्ष सुकर्म्म जोग बिचारि सूर नवीन।
नन्दनन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन ॥

मुनि=७, रसन=० ( जिसमें कोई रस नहीं है, अर्थात् जो कुछ भी नहीं है, याने शून्य है ), रस=६, दशन गौरीनन्द=१,=१६०७; नन्दनन्दन मास=बैशाख ( मधु ), छै ते हीन तृतिया=अक्षै तृतीया, तृतिय ऋक्ष=कृत्तिका नक्षत्र, सुकर्म जोग ( देखो सरदार कृत सौर दृष्ट कूट की टीका पृष्ठ ७१ )। अतः यह विदित हुआ कि साहित्यलहरी संवत् १६०७ वि० में लिखी गई, और यह ऊपर कहा जा चुका है कि यह सूरसारावली के साथ ही साथ लिखी गई थी। अतः इसके लिखने के समय भी सूरदासजी की अवस्था ६७ साल की थी। सो उनका जन्मकाल संवत् १५४० वि० हुआ। परन्तु इस हिसाब में यह मान लिया गया है कि सूरसारावली और साहित्यलहरी एकही समय में बनीं। यह अनुमान ऐसा दृढ़ नहीं है कि इस पर निश्चयात्मक रीति से कोई कुछ कहे। सम्भव है कि उन्होंने साहित्यलहरी सूरसागर के कुछही पीछे बनाई हो और सूरसारावली बनाने का विचार उनके चित्त में बहुत दिन पश्चात् उठा हो। परन्तु इतना निश्चय अवश्य है कि ये दोनों ग्रन्थ सूरसागर के पीछे बनाये गये क्योंकि एक उसकी सूची, और दूसरा बहुत करके उस

का संग्रह है। यह भी जान पड़ता है कि सूरदासजी ने सूरसागर बूढ़ी अवस्था में समाप्त किया होगा, क्योंकि वे एक लाख पद बना चुकने के पीछे सूरसारावली बनाने लगे थे और वह सब पद सूर-सागर में हीं सन्निविष्ट थे, क्योंकि इन तीन ग्रन्थों के सिवा इनका कोई चौथा ग्रन्थ नहीं देख पड़ता। तब बूढ़ी अवस्था में सूरसागर बना कर ये महाशय बहुत दिन ते जीवित रहे ही न होंगे, अतः सूरसारावली और साहित्यलहरी के समयें में चाहे कितनाही अंतर क्यों न हो वह सम्भवतः दस वर्ष से अधिक न होगा। अतः संवत् १५४० वि० के दो चार वर्ष इधर उधर का इनका जन्मकाल अवश्य होगा।

सूरदासजी लिखते हैं कि इनके गुरु श्रीवल्लभाचार्य्य महाप्रभु थे, और श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी ने सूरदासजी को अष्ट छाप में रक्खा। यथाः—श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो। (सूरसारा० नं० ११०२)। थपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने लिखा है कि आचार्य्यजी के जन्म एवं मरण-काल संवत् १५३५ एवं १५८७ वि० थे, और गोस्वा-मीजी के १५७२ एवं १६४२ वि०। जब सूरदासजी आचार्य्यजी के शिष्य थे तब निश्चय है कि उनसे अवस्था में भी छोटे होंगे। अतः सूरदासजी का जन्म संवत् १५३५ वि० के पीछे का होगा। उनका मरण-काल भी संवत् १५७२ वि० से बहुत पीछे का होगा, क्योंकि उस संवत् में जन्म ग्रहण करके गोस्वामीजी ने बहुत दिनों में प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी और तब अपने चार शिष्यों के साथ सूरदास को

अष्ट छाप में थापा होगा। अतः इस हिसाब से भी सूरदासजी के जन्म और मरणकाल १५४० और १६२० के लग भग ठहरते हैं। शिवसिंहसरोज में इनका जन्म-काल संवत् १६४० वि० दिया गया है परन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं दिया गया अतः वह अग्राह्य है।

श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजी ने चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता नामक एक पुस्तक लिखी है। भक्तमाल में भी बहुत भक्तों की जीवनी दी गई है। इन दोनों पुस्तकों में सूरदास का वृत्तान्त लिखा है, परन्तु वह बहुत छोटा होने के कारण सन्तोषदायक नहीं है। सूरदासजी के वंश इत्यादि के विषय में कुछ गड़बड़ पड़ गया है। वह दो प्रामाणिक पुस्तकों में दो प्रकार लिखा हुआ है। सरदार कृत "सूरदास के दृष्ट कूट" नामक पुस्तक के ७१ वें पृष्ठ पर छन्दावली नं० ११० में कवि-वंश वर्णित है। उससे विदित होता है कि इनका पूर्व पुरुष प्रार्थज गोत्रीय जगात-वंश वाला ब्रह्मराव नामक भद्र पुरुष था। इन्हीं के वंश में पृथ्वीराज के राजकवि चन्द उत्पन्न हुए जिनको पृथ्वीराज ने ज्वाला देश दिया। उसके चार पुत्र हुए जिनमें प्रथम राजा हुआ। उसके द्वितीय पुत्र का नाम गुणचन्द था। उसका पुत्र शीलचन्द और शीलचन्द का वीरचन्द हुआ—वीरचन्द रण थम्भौर के राजा हम्मीर देव का सखा था। उसके वंश में हरिचन्द बड़ा विख्यात हुआ। उसका पुत्र आगरे में रहा जिसके सात पुत्र हुए जिनके नाम ये थेः—कृतचन्द, उदारचन्द, रूपचन्द, बुद्धिचन्द, देवचन्द, प्रबोधचन्द और सूरजचन्द। सातवाँ पुत्र सूरजचन्द ही हमारा विख्यात कवि सूर-

दास था। सूर के सब भाई शाह से युद्ध करके परमगति को प्राप्त हुए। सूरजचन्द अन्धा था अतः वह एक कुएँ में जा पड़ा और छः दिन तक उसी में पड़ा रहा परन्तु किसी ने पुकार नहीं सुनी। तब सातवें दिन यदुपति ने उसे बचाया।

"परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातयें दिन आय जदुपति किया आपु उधार॥
दिव्य चख दै कही सिसु सुनु जोगबर जो चाइ।
हौं कही प्रभु भगति चाहत सत्रु-नास स्वभाइ॥
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधा-स्याम।
सुनत करुणा-सिन्धु भाखी एवमस्तु सुधाम॥
प्रबल दच्छिन बिप्रकुल ते सत्रु ह्वै है नास।
अखिल बुद्धि बिचार विद्या मान मानै मास॥

इस लेख के अनुसार सूरदासजी भाट साबित होते हैं, क्योंकि एक तो जगात कोई ब्राह्मण नहीं हैं वरन् जगातिया भाट को कहते हैं, दूसरे पृथ्वीराज के चन्द कवि तो निश्चय ही भाट थे। यहाँ शत्रु से मुसलमान बादशाह से प्रयोजन है क्योंकि उन्हीं से लड़ कर सूर के सब भाई मारे गये थे। बरदान यह हुआ कि दक्षिण के पेशवा राजा शत्रुनाश करेंगे। उस समय न मरहटों का ज़रा भी बल था, न शिवाजी तक, जो क्षत्रिय राजा थे, उत्पन्न हुए थे। तो फिर पेशवाओं का, जो पीछे उनके सचिव हुए, इतना प्रचण्ड अभ्युदय सोचना कि वे मुसलमानों को परास्त करने में कभी समर्थ होंगे (जैसा कि अन्त में वे हुए) किसी का काम न था। अतः साफ़

ज़ाहिर है कि ये छन्द सूरदासजी के बनाये हुए नहीं हैं, वरन् उन से लगभग दो सौ वर्ष पीछे पेशवाओं का अभ्युदय और मुग़लों का पतन देख कर किसी भाट ने प्रायः बालाजी बाजीराव के समय में ये छन्द बना कर सूरदास की कविता में सन्निविष्ट कर दिये हैं। इन छन्दों के कपोलकल्पित होने का दूसरा बड़ा भारी प्रमाण यह है कि श्रीगोकुलनाथजी ने अपने चौरासी चरित्र में और मियांसिंह ने भक्तविनोद में सूरदास को ब्राह्मण कहा है। ये गोकुलनाथजी श्रीगोस्वामी बिट्ठलनाथजी के पुत्र थे और गोस्वामीजी सूरदासजी के मरने के समय ४८ वर्ष के थे। अतः समझ पड़ता है कि गोकुल-नाथजी भी उस समय २०—२५ वर्ष के होंगे। फिर गोस्वामीजी और सूरदासजी में प्रेम एवं घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतः यह विचार तक मन में नहीं आता कि गोस्वामीजी अथवा उनके पुत्र सूरदासजी का कुल तक न जानते हों। इसी प्रकार चौरासी-वार्त्ता एवं भक्तविनोद में शत्रुनाश वाले बरदान का कोई हाल नहीं लिखा हुआ है यद्यपि कूप पतन का वर्णन है। यह सम्भव नहीं है कि यदि यह बरदान सूरदासजी को मिला होता तो कूपपतन का वर्णन होते हुए भी इन दोनों पुस्तकों में यह हाल न लिखा होता। फिर यह भी सम्भव नहीं कि यदि इनके छः भाई मारे गये होते तो ये दोनों लेखक उस बात को न लिखते।

इन सब कारणों से यह सिद्ध होता है कि चौरासी वार्त्ता एवं भक्तमाल के अनुसार सूरदासजी वास्तव में सारस्वत ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम रामदास था। इनका जन्म दिल्ली के

समीपस्थ सीही ग्राम-निवासी दरिद्र माता-पिता के यहाँ हुआ था। अब यह प्रश्न उठता है कि सूरदास जन्मान्ध थे या नहीं। इसके विषय में सिवा भक्तमाल के कोई प्राचीन प्रमाण तो नहीं मिला, परन्तु रीवाँनरेश महाराज रघुराजसिंह कृत रामरसिकावली में भक्तमाल के आधार पर लिखा हुआ है कि:—"जनमहिते हैं नैन-विहीना"। हमें तो इस लेख पर विश्वास नहीं आता। सूरदास ने अपनी कविता में रंगों के, ज्योति के, और अनेकानेक हावभावों के ऐसे ऐसे मनोरम वर्णन किये हैं, और उपमायें ऐसी ऐसी उत्तम कही हैं कि यह किसी प्रकार निश्चय नहीं होता कि कोई व्यक्ति बिना आँखों देखे ऐसा वर्णन केवल श्रवण द्वारा प्राप्त ज्ञान से कर सकता है। चौरासी-वार्त्ता में इनका जन्मान्ध होना नहीं लिखा है। एक किंवदन्ती है कि जब सूरदास अन्ध न थे तब वे एक युवती को देख कर उस पर आसक्त हो गये और यह दोष नेत्रों का समझ कर तुरन्त दो सुइयों से अपने दोनों नेत्र फोड़ डाले। यह बात सत्य जँचती है। सम्भव है कि स्त्री का विषय था इस कारण चौरासी-वार्त्ता में यह न लिखा गया।

भक्तमाल में लिखा है कि इनके माता-पिता ने आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत किया था। कुछ काल में इनके माता-पिता मथुरा दर्शन को गये। उस समय सूरदास भी उनके साथ थे। जब वे घर पलटने लगे तब सूरदास ने उनसे विनती की कि "अब मुझे यहीं रहने दो।" इस पर उनके माता-पिता रोने लगे और बोले "तुम्हें अकेले किसके सहारे छोड़ जावें?" तब सूर ने

कहा "कृष्णचन्द्र का सहारा क्या थोड़ा है ?" इस पर एक साधु ने कहा "मैं इस बालक को अपने साथ रक्खूँगा।" तब सूर के माता-पिता रोते कलपते घर चले गये और ये महाराज ब्रज में रह गये। एक बार अन्ध होने के कारण सूरदास एक कुएँ में जा पड़े और छः दिन तक उसी में पड़े रहे, तब सातवें दिन इन्हें किसी ने निकाला। सूर ने समझा कि स्वयं कृष्ण भगवान् ने उन्हें निकाला। बस इन्होंने निकालनेवाले की बाँह पकड़ ली पर वह बाँह छुड़ा कर भाग गया, जिस पर इन्होंने यह दोहा पढ़ा :—

'बाँह छोड़ाये जात हौ निबल जानि कै मोहिँ।
हिरदै सों जब जाइहौ मर्द बदौंगो तोहिँ॥'

इसके उपरान्त चौरासी-वार्ता के अनुसार ये महाराज गऊघाट नामक एक स्थान पर, जो आगरा और मथुरा के बीच में है, रहते रहे। वहाँ ये महाराज बल्लभाचार्य्य महा प्रभु के शिष्य हुए और उन्हीं के साथ गोकुल में श्रीनाथजी के मन्दिर को गये और बहुत काल पर्य्यन्त वहीं रहते रहे। इसी स्थान पर इनसे गोस्वामी बिट्ठल-नाथजी से मुलाक़ात बहुधा हुआ करती थी और गोस्वामीजी इनके पद सुना करते थे। सूरदासजी सदैव कृष्णानन्द में मग्न और उन्मत्त रहा करते थे और अपनी अखंड भक्ति से संसार को शुद्ध करते थे।

यहीं रहते रहते ये महाराज वृद्धावस्था को प्राप्त हुए और जब इन्हें विदित हुआ कि इनका अन्त समय निकट है तब ये पारासोली को चले गये। जब गोस्वामीजी को यह संवाद मिला तब वे भी पारा-

सोली पहुँचे और सूरदास से अन्त पर्य्यन्त उनसे बात चीत होती रही। उसी समय किसी ने सूरदास से पूछा कि "आपने अपने गुरु का कोई छन्द क्यों नहीं बनाया ?" इस पर उन्होंने उत्तर दिया "मैंने सब छन्द गुरुजी ही के बनाये हैं क्योंकि मेरे गुरुजी और श्रीकृष्णचन्द में कोई भी भेद नहीं है।" तथापि उन्होंने एक छन्द भी कहा । वह यों है :—

'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीबल्लभ नख चन्द छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो॥
साधन और नहीं या कलि में जासों होत निबेरो।
सूर कहा कहि दुबिधि आँधरो बिना मोल को चेरो॥'

अन्तकाल सूरदासजी ने कृष्ण-राधिका का एक भजन कहा और वे ऐसे प्रेम-गद्गद हुए कि उनके नेत्रों में अश्रु-जल छा गया। इस पर गोस्वामीजी ने पूछा, "सूरदासजी! नेत्र की वृत्ति कहाँ है ?" तब सूरदासजी ने निम्न लिखित भजन पढ़ कर शरीर त्याग दिया :—

"खंजन नैन रूप रस माते। अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिँजरा न समाते॥ चलि चलि जात निकट स्रवनन के उलटि पलटि ताटंक फँदाते। सूरदास अंजन गुन अटके नातरु अब उड़िजाते॥"

इन महाशय के विषय में कई ग्रन्थकारों का मत है कि ये उद्धव के अवतार थे।

## कविता।

सूरदासजी ने तीन ग्रन्थ बनाये हैं अर्थात् सूरसागर, सूरसारावली और साहित्यलहरी ( दृष्टकूट )। खोज में ब्याहलो और नल-दमयन्ती नामक इनके दो और ग्रन्थ लिखे हैं पर वे हमारे देखने में नहीं आये।

साहित्यलहरी को सूरदास ने सं० १६०७ वि० में संकलित किया था। इसमें सूरसागर से उठा उठा कर एवं कुछ और कूट रक्खे गये हैं। इसकी एक छन्दोबद्ध टीका भी है जो सूरदास के नाम से बनी है, परन्तु यह निश्चय नहीं होता कि यह टीका सच मुच सूर कृत है या नहीं। टीका में प्रत्येक पद के अलङ्कार, नायिका आदि दिये गये हैं, परन्तु सूरदास ने रीतिबद्ध कविता नहीं की, किन्तु स्वाभाविक रीति से जो वर्णन जहाँ उचित था लिखा है। अतः शंका होती है कि यह टीका सूरकृत नहीं है। सरदार कवि ने अपनी टीका में पहले ११७ पद दिये हैं और फिर ६३ पद और लिखे हैं। सो उनकी प्रति में कुल १८० पद हैं। इन कूटों में नायिका और अलङ्कार अवश्य निकलते हैं और इन में श्रुति कटु दूषण नहीं है, परन्तु यह दोष है कि बिना टीका की सहायता के इनका अर्थ लगाना कठिन है। इनमें यमक और अनुप्रास ख़ूब आये हैं। यदि कोई धैर्य्यवान् व्यक्ति इस पुस्तक के अर्थ लगा कर देखे तो विदित हो कि इसमें सूरदासजी ने कितना परिश्रम किया है।

सूरसारावली में सूरदास ने सूरसागर की सूची सी दी है। इसमें ११०७ छन्द हैं, परन्तु कुल ग्रन्थ एक ही छन्द में वर्णित है। इस कारण इसका पढ़ना इतना रुचिर नहीं है जितना कि इस महाकवि की अन्य कविता का। यदि एक ही छन्दवाले दूषण को छोड़ दीजिए तो इस ग्रन्थ में भी सूरदास की वही छटा प्रस्तुत है जिसने उनको कवियों में सूर्य्य की पदवी से विभूषित कराया है।

सूरसागर बारह स्कंधों में समाप्त हुआ है, परन्तु दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध को छोड़ कर शेष स्कंध बहुत छोटे हैं और उनमें साहित्य भी प्रायः वैसा रोचक नहीं है जैसा कि दशम के पूर्वार्द्ध में। जिस प्रकार तुलसीदास के बाल तथा अयोध्याकांड निकाल डालने से उनके कवित्त्व-गौरव का एक बृहदंश खण्डित हो सकता है, उसी प्रकार यदि सूरसागर के दशमस्कंध का पूर्वार्द्ध निकाल डाला जाय तो सूर को सूर्य्यवत् कोई भी न माने। तथापि जैसे रामायण के अन्य कांडों से गोस्वामीजी की कवित्त्व शक्ति की पूर्ण झलक मिलती है और पूर्वोक्त दोनों कांड पढ़ कर पाठक अवाक् रह जाते हैं, उसी प्रकार सूर के दशम के पूर्वार्द्ध एवं अन्य स्कन्धों का हाल है। सूरसागर में श्रीमद्भागवत के आशय पर कथा कही गई है परन्तु कथायें बहुत न्यूनाधिक हैं। प्रथम नौ स्कन्धों में विविध वार्त्तायें और कथायें वर्णित हैं और दशम में श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का वर्णन है। एकादश स्कन्ध में उद्धव का बदरिका-श्रम गमन एवं हंसावतार की कथा कही गई है। बारहवें स्कन्ध में बौद्धावतार, भविष्य कल्कि अवतार, और परीक्षित का शरीर-त्याग वर्णित है। उस समस्त सूरसागर में जो बाबू राधाकृष्णदास द्वारा प्रकाशित हुआ है ४०१८ पद हैं। सूरदासजी ने प्रत्येक वर्णन सूक्ष्मतया किया है केवल श्रीकृष्ण ने नन्दगृह में बस कर जो लीला की है उसका और उद्धव-संवाद का वर्णन विस्तारपूर्वक है, परन्तु इन्हीं दोनों वर्णनों में सूरदास ने दिखा दिया है कि विस्तार किसे कहते हैं। सूर ब्रजबासी कृष्ण के, और विशेषतया राधाकृष्ण के भक्त के थे; अतः ज्योंहीं कृष्ण मथुरा को चले गये, त्योंहीं उनका भी वर्णन

संक्षेपतया होने लगा। ब्रजबासीदास ने ब्रजविलास को इसी पुस्तक के सहारे बनाया है। इस ग्रन्थ के गुणावगुण का वर्णन और कविता की समालोचना में किया जाता है।

## कविता की समालोचना।

(१) सूरदासजी की कविता में सर्वप्रधान गुण यह है कि उसके पद पद से कवि की अटल भक्ति प्रदर्शित होती है। प्रत्येक मनुष्य का काव्य उत्तम तभी होता है जब वह सच्चा होता है। सच्ची कविता तभी बनती है जब कवि जो उस पर बीते, अथवा जो उमंगें उसके चित्त में उठें, अथवा जो भाव उसके चित्त में भरे हों, उन्हीं का वह वर्णन करे। यदि कोई लम्पट मनुष्य वैराग्य कथन करने बैठेगा तो वह सिवा चोरी के और क्या करेगा। उसके चित्त में वैराग्य का अभाव है। उसके चित्तसागर को वैराग्य की तरंगों ने कभी चंचल नहीं किया है, तब वह बेचारा अनुभव न होने पर भी वैराग्य के असली सच्चे भाव कहाँ से लाकर वर्णित करे। यदि वह हठात् लिखने बैठ ही जायगा, तो वैराग्य के विषय में उसने इधर उधर से जो कुछ सुन लिया होगा वही वह कह भागेगा। ऐसी दशा में उसकी कविता में सिवा नक़ल के कोई असली भाव न आवेगा। ऐसी ही कविता को निर्जीव कहना पड़ता है।

इसके विपरीत जो मनुष्य सच मुच विरागी है उसके चित्त में वैराग्य-सम्बन्धी असली भाव उठेंगे और उनका वर्णन होगा तभी कविता असली और सजीव होगी। इसी कारण उर्दू के कवियों में यह मसल विदित है कि जब कोई शिष्य किसी ख़ास उस्ताद से शायरी

सिखाने को कहता था तो उस्ताद पहले यही कहता था कि जाओ आशिक़ हो आओ। असली भावों की ही कविता ऐसी बनती है कि श्रोता को बरबश कहना पड़ता है कि "थारी कविता में सूल्यो लग्यो।"

सूरदास की कविता प्रधानतः ऐसी है कि उसमें भक्ति का चित्र प्रत्येक स्थान पर देख पड़ता है। ये महाराज जाति-भेद, कर्म्म-भेद आदि को तुच्छ मान कर केवल भक्ति को प्रधान और एक मात्र शृंगार समझते थे। इनके मत में यदि कोई नर भक्त है तो वह बड़ा है, चाहे जिस जाति अथवा पाँति का वह क्यों न हो (पृष्ठ ४ संख्या १८)। कोई मनुष्य चाहे जितना चन्दन आदि क्यों न लगाता हो, परन्तु यदि वह शुद्ध भक्त नहीं है, तो वह अपना समय वृथा नष्ट करता है (पृष्ठ ५ संख्या २८।) ये महाराज यह नहीं समझ सकते थे कि कोई मनुष्य भक्त क्यों कर न हो। जो भक्ति नहीं करता था उस पर ये महाराज अचम्भा करते थे (पृष्ठ ३५ संख्या १३)। ये कहते थे कि 'भगति बिनु बैल बिराने ह्वै हो' (पृष्ठ ३१ संख्या २०३) भक्ति के विषय में संक्षेपतः इनका मत यह था :—

'तजो मन हरि बिमुखन को संग।
जाके संग कुबुधि उपजति है परत भजन में भंग॥
कहा होत पय पान कराये बिष नहिँ तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरे खहि छंग॥

पाहन पतित बाँस नहिँ बेधत रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग॥
( पृष्ठ ३१ संख्या २०४ )

भजन बिनु कूकर सूकर जैसो।
जैसे घर बिलाव के मूसा रहत बिषय बस वैसो॥
उनहू के यह सुत दारा हैं उन्हें भेद कहु कैसो।

☼ ☼ ☼ ☼

ये महाराज जगदीश्वर, राम, एवं कृष्ण को एक ही समझते थे।
( सोई बड़ो जु रामहिँ गावै।
श्वपच्च प्रसन्न होय बड़ सेवक
बिनु गोपाल द्विज जनम न भावै॥

☼ ☼ ☼ ☼

होय अटल जगदीश भजन में
सेवा तासु चारि फल पावै। ( पृष्ठ १८ सं० ११८ ) और शेष देवताओं में देव भाव नहीं रखते थे ( 'और देव सब रंक भिखारी त्यागे बहुत अनेरे।' पृष्ठ १६ संख्या १०३ )' परन्तु तो भी ये महाराज गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति और देवताओं को गालि प्रदान नहीं करते थे। सूरदास को एक ईश्वर का उपासक कहना चाहिए।

सगुणोपासना करने का कारण सूर ने इस प्रकार लिखा है:—

अविगति गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अन्तर गतिही भावै॥
मन-बानी को अगम अगोच्चर सो जानै जो पावै।

रूप रेख, गुन, जाति जुगति बिनु निरालम्ब मन चकित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिँ तातै सूर सगुन लीला पद गावै॥
(पृष्ठ १ संख्या २)

इतने बड़े भक्त होने पर भी सूरदास अपने को इतने बड़े पतित समझते थे कि चित्त को आश्चर्य्य होता है। (पृष्ठ ११ संख्या ६६; पृष्ठ १२ संख्या ७३)। परन्तु इनकी इतनी प्रबल और प्रगाढ़ भक्ति के होते हुए भी कहना पड़ता है कि इनकी और तुलसीदासजी की भक्ति में भेद था। गोस्वामीजी की भक्ति दास-भाव की थी परन्तु इनकी सख्य-भाव की। ये महाशय श्रीकृष्णचन्द्र को अपना मित्र समझते थे और इसी कारण इन्होंने राधाजी को भी भला बुरा कहा है, और जब श्रीकृष्ण भी कोई बेजा बात करते थे तब उन्हें भी सूरदास डाट देते थे। तुलसीदास जब कभी राम की नर-लीला का वर्णन करते हैं तब पाठक को यह अवश्य याद दिला देते हैं कि राम परमेश्वर हैं, केवल नर-लीला करते हैं। यह बात ऐसे भोंड़े प्रकार से भी वे सैकड़ों बार स्मरण दिलाते हैं कि जी उकता उठता है और यह जान पड़ता है कि गोस्वामीजी पाठक को इतना बड़ा मूर्ख समझते थे कि कितने ही बार याद दिलाने पर भी वह राम का ईश्वरत्व भुला देगा, अतः उसको पुनः पुनः स्मरण कराने की आवश्यकता है। यह बात सूरदास में नहीं है। वे एक दो बार स्मरण कराने को अलं समझते हैं। इन्होंने जहाँ तक हमें स्मरण है केवल दो स्थान पर शिफ़ारशी छन्द दिये हैं (पृष्ठ ११६ संख्या

१६; पृष्ठ १२६ संख्या ९२ )। परन्तु श्रीकृष्णचन्द्र को स्वयं अपना ईश्वरत्व दिखाने का शौक़ था । उन स्थानों को छोड़ कर सूरदास ने उनका ईश्वरत्व मौक़े बे मौक़े नहीं दिखाया है। इन्होंने दो चार स्थानों पर कृष्ण के कामों की निन्दा भी की है, यथाः— ( पृष्ठ ६ संख्या ३१; पृष्ठ ७ संख्या ३९ ) और—

हम बिगरी तुम सबै सुधारी। द्विजकानीन हमारे बाबा कुंडज पिता जगत में गारी। हम सब जग जाहिर जारज हैं ताहू पर यक बात बिगारी। बड़े कष्ट सों ब्याह भयो है पतिनी ह्वै गई पंच-भतारी॥

तुम जानत राधा है छोटी। हम सों सदा दुरावति है इह बात कहै मुख चोटी पोटी। कबहुँ स्याम सों नेकु न बिछुरति किये रहति हम सों हठ जोटी॥ नँद नन्दन याही के बस हैं बिबस देखि बेंदी छवि चोटी। सूरदास प्रभु वै अति खोटे यह उनहूँ ते अतिही खोटी॥

( पृष्ठ २१६ संख्या ७९ )

सखी री स्याम कहा हितु जाने।

सूरदास सरबसु जो दीजै कारो कृतहि न माने॥

( पृष्ठ ४७९ संख्या ८४ )

इसी प्रकार सैकड़ों पद सूरदास की कविता में मिलते हैं।

( २ ) सूरदास की भाषा शुद्ध ब्रज-भाषा है। चन्द आदि के होते हुए भी यह कहना अयथार्थ न होगा कि हिन्दी के वास्तविक प्रथम कवि सूरदास ही थे, परन्तु तो भी इनकी भाषा ऐसी ललित और श्रुतिमधुर है कि जैसे इनके पीछे वाले कवियों तक में बहुत

कम पाई जाती है। इनकी कविता में सम्मिलित वर्ण बहुत कम आते हैं और उसके माधुर्य्य और प्रसाद प्रधान गुण हैं। ओज की मात्रा इनकी कविता में बहुत कम है। इनको यमक और अनुप्रास का इष्ट नहीं था, परन्तु उचित रीति पर इन दोनों गुणों को ये महाराज अपनी कविता में रखते थे। कहीं यमक आदि के लिए इन्होंने अपना भाव नहीं बिगाड़ा है। इनके पद ललित और अर्थ-गम्भीरता से भरे हुए हैं।

सिवा सूरसारावली के, समस्त कविता में इन्होंने छन्द इतना शीघ्र और इस रीति पर परिवर्तित किया है कि कहीं इनके छन्द अरुचिकर नहीं होते। इन महाराज ने अपनी कविता में संस्कृत के पद बहुतायत से नहीं रक्खे, परन्तु जहाँ कहीं वे आये हैं वहाँ उत्तम रीति से आये हैं। इनकी दो घनाक्षरी भी मिली हैं (पृष्ठ ४०४ संख्या ३६ व ३७)। सूर-कृत दो पद, जो उपमा और रूपक के वर्णन में दिये गये हैं, इनकी भाषा के भी अच्छे उदाहरण हैं।

(३) उपमा-रूपक। ये महाराज अपनी कविता में रूपक लाना पसन्द करते थे, और इन्होंने उपमायें भी बहुत ही उत्तम खोज खोज कर दी हैं। इनके अर्थ-गाम्भीर्य्य, उपमा और पद-लालित्य ऐसे उत्तम हैं कि किसी कवि को यह कहना ही पड़ा कि:—

'उत्तम पद कवि गंग के उपमा को बरबीर (बीरबल)।
केसव अरथ गँभीरता सूर तीनि गुन धीर॥'

उदाहरणार्थ इनके दो पद नीचे लिखे जाते हैं जिनसे इन महाराज के रूपक, उपमा, अनुप्रास और भाषा का अच्छा ज्ञान होगा।

"अदभुत एक अनूपम बाग। जुगुल कमल पर गज बर क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग॥ हरि पर सर बर, सर पर गिरिबर, गिरि पर फूले कंज पराग। रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ताहू पर अमृत फल लाग॥ फल पर पुहुप, पुहुप पर पालव, तापर सुक, पिक, मृगमद काग। खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर यक मनिधर नाग॥ अंग अंग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग। सूरदास प्रभु पियहु सुधारस मानहु अधरन को बड़ भाग"॥

"बरनौं श्री बृषभानु कुमारि। चित दै सुनहु स्याम सुन्दर छबि रति नाहीं उनहारि॥ प्रथमहि सुभग स्याम बेनी की सुषमा कहहुँ बिचारि। मानहु फनिक रह्यो पीवन को ससि मुख सुधा निहारि॥ बरनै कहा सीस सेंदुर को कबि जु रह्यो पचिहारि। मानहु अरुन किरन दिन कर की निसरी तिमिर बिदारि॥ भृकुटी बिकट निकट नैनन के राजत अति बरनारि। मनहु मदन जग जीति जेर करि राखेउ धनुष उतारि॥ ता बिच बनी आड़ केसरि की दीन्हीं सखिन सँवारि। मानो बँधी इन्दु मंडल में रूप सुधा की पारि॥ चपल नैन नासा बिच सोभा अधर सुरंग सुढारि। मनो मध्य खंजन सुक बैठ्यो लुबध्यो बिम्ब बिचारि॥ तरिवन सुघर अधर नकबेसरि चिबुक चारु रुचिकारि। कंठ सिरी, दुलरी, तिलरी पर नहिं उपमा कहुँ चारि॥ सुरँग गुलाब माल कुच मंडल निरखत तन मन वारि। मानो दिसि निरधूम अगिनि के तपि बैठे त्रिपुरारि॥ जो मेरो कृत मानहु मोहन करि ल्याऊँ मनुहारि। सूर रसिक तबहीं पै बदिहौं मुरली सकहु सम्हारि॥

( ४ ) नखशिख। इन दोनों पूर्वोक्त पदों में कवि की नख शिख वर्णन करने की योग्यता भी प्रकट होती है। नख-शिख के उत्तम वर्णन निम्न लिखित छन्दों में भी हैं:—पृष्ठ २८ संख्या १८२, पृष्ठ १८६ व १८७, पृष्ठ २७८ संख्या १०, और वे बहुत ही उत्तम और सुहावने हैं।

( ५ ) प्रबन्धध्वनि। इन महाराज ने अपनी कविता में पुराने व्याख्यानों और कथाओं का हवाला बहुत स्थानों पर दिया है। इस कथन के उदाहरणार्थ पृष्ठ ९ संख्या ४८ देखिए।

( ६ ) सूरदास की कविता का प्रधान गुण एक यह भी है कि ये महाराज प्रत्येक वस्तु का बहुत सांगोपांग वर्णन करते हैं। ये जिस बात का वर्णन विस्तारपूर्वक कर देते हैं उसमें फिर औरों के लिए बहुत कम भाव रह जाते हैं। या तो ये महाराज बहुत सूक्ष्म वर्णन करते हैं या पूर्ण विस्तार के साथ। इनके सविस्तर वर्णन कर देने पर अन्य कवियों को उसी विषय पर कुछ लिखने में अवाञ्छित भी इस कवि के भाव लिखने पड़ते हैं क्योंकि ऐसी दशा में यह महा कवि नये भावों की जगह छोड़ ही नहीं रखता। इसी कारण रीवाँनरेश महाराज रघुराजसिंहजी देव ने यथार्थ लिखा है कि:—

'मतिराम, भूषण, बिहारी, नीलकंठ, गंग, बेनी, सम्भु, तोष, चिन्तामनि, कालिदास, की। ठाकुर, नेवाज, सेनापति, सुखदेव, देव, पजन, घनानँदहु, घनस्यामदास, की॥ सुन्दर, मुरारि, बोधा, श्रीपति हू दयानिधि, जुगुल, कबिन्द, त्यों गोविन्द, केसौदास की।

रघुराज और कविगन की अनूठी उक्ति मोहिँ लगी झूठी जानि जूठी सूरदास की'॥

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सूरदास की कविता के नायक यशोदानन्दन और गोपिकाबल्लभ श्रीकृष्ण थे। अतः इन्होंने श्रीकृष्णचन्द्र की उन कुल कार्य्यबाहियों को जो उन्होंने यशोदा अथवा गोपियों के सम्बन्ध में की हैं, पूर्ण विस्तार के साथ लिखा है।

(क) सबसे प्रथम जो बहुत उत्तम वर्णन सूरदास ने किया है वह कृष्ण प्रभु की बाललीला का है। जैसा उत्तम और सच्चा बाल-चरित्र इस महाकवि ने लिखा है वैसा संसार भर के किसी ग्रन्थ में हम लोगों ने अद्यावधि नहीं देखा। माता से माखन माँगा जाना, माता द्वारा बालक का लालन-पालन होना, माता का खीझना, चोटी बढ़ने के बहाने दूध पिलाना, चन्द्र के विषय झगड़ा, राम की कथा माता द्वारा सुनाई जाना, इत्यादि ऐसे उत्तम प्रकार से कहे गये हैं कि जान पड़ता है सच मुच कोई बालक माता के पास खेल रहा है। इसके उदाहरणस्वरूप किस छन्द को हम लिखें? पूरा वर्णन पढ़ने से ही इसका स्वाद मिलता है। ज्योंही माता ने कहा कि 'कजरी को पय पियहु लाल तब चोटी बाढ़े' कि बालक ने तुरन्त दूध पीकर पूछा, 'मैया कबहिँ बढ़ैगी चोटी। किती बार मोहिँ दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी'। उदाहरणार्थ एक छन्द नीचे लिखा जाता है:—

'मातु मोहिँ दाऊ बहुत खिझायो। मोसों कहत मोल को लीन्हों तोहि जसुमति कब जायो॥ कहा कहौं यहि रिस के मारे

खेलन हौं नहिँ जात। पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुम्हरो तात॥ गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर। चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर॥ तू मोहीं को मारन सीखी दाउहि कबहुँ न खीझै। मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति अति मन रीझै॥ सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत। सूरस्याम मो गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

(ख) बाललीला के पश्चात् इस महा कवि ने माखन चोरी का वर्णन बड़ाही हृदयग्राही किया है। माखन-चोरी भी ऐसी वर्णित है मानो कोई सच मुच गोपिकाओं को खिझा रहा हो। यशोदा के पास उलाहना आना, और उनका गोपिकाओं के कथन पर प्रतीति न करना, और पुत्र से इनकार सुन कर क्रोध के स्थान पर हर्ष-मग्न हो जाना बड़ेही स्वाभाविक रीति पर वर्णित हुए हैं। फिर बहुत अधिक शिकायतें सुन कर माता का कुछ क्रोध करना और बालक को समझाना, और फिर यह सुन कर कि कृष्ण ने माखन भी चुराया और गोपी के लड़के को भी मारा है, बालक को रस्सी से ऊखल में बाँध देना, यह सब बातें अत्यन्त स्वाभाविक रीति पर लिखी गई हैं (पृष्ठ १४२ संख्या २५)। ऊखल में बाँधने पर जब जब बालक रोया तब तब माता ने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि बालक चोर है। चोरी पर ऐसे समय में ज़ोर देना बड़ाही स्वाभाविक है, और वह प्रकट करता है कि एक ही बालक होने पर भी, और उसे प्राण से भी अधिक चाहने पर भी, यशोदा बेजा काम देख कर अदूरदर्शिनी माताओं की भाँति चुप

न बैठ कर कड़ा दंड भी देती थी। माखन-चोरी-लीला का भी वर्णन अत्यन्त रोचक और स्वाभाविक है।

(ग) ऊखल बन्धन के पश्चात् काली-पराजय, दावानल-पान, और चीर-हरण भी बड़ेही उत्तम वर्णन हैं। उद्धृत करने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा, अतः हम यहाँ कोई छन्द नहीं लिखते, परन्तु ये वर्णन देखने ही योग्य हैं।

(घ) इसके पीछे रासलीला, मान एवं मानमोचन के भी वर्णन बड़ेही विशद हैं, विशेषतया पृष्ठ ३००. से ४११ पर्य्यन्त जो मान और मान-मोचन वर्णित है, उससे प्रकट होता है कि यह महाकवि एक ही विषय को कितनी दूर तक और कितनी उत्तमता से कह सकता है और महा-भक्त होने पर भी शृंगार रस के गूढ़ विषयों का इसको कितना उत्तम ज्ञान है। यह कहना पड़ेगा कि माखन-चोरी और रासविलास में वर्णन इतना सविस्तर हो गया है कि यह नहीं कहा जा सकता कि यह केवल शृंगार रस कहनेवालों की रचना की भाँति केवल कोरा काव्य है या किसी कथा का अंग। यदि कोई केवल कथा प्रसंग जानने के विचार से इसे पढ़ने बैठे तो उसका जी अवश्य उकता जाय। परन्तु वास्तव में ये वर्णन बड़ेही विशद और सच्चे हैं। केशवदास और दास इत्यादि की भाँति इन्होंने अन्य कवियों की कविताओं से उठा उठा कर उलथा अपनी कविता में नहीं रक्खा है और न किसी ऐसे विषय को सविस्तर कहा ही है कि जिसमें इन्हें पूर्ण योग्यता और सहृदयता न होती। अतः इस कविता में जहाँ कहीं सविस्तर वर्णन है वहाँ ही वह सच्चे, असली ख़ास

सूरदास के भावों से भरी है और इसी कारण इस कवि ने सच्चे पाठकों से ऐसे ऐसे वचन कहलाही लिये किः—

'सूर सूर, तुलसी ससी, उड़गन केसव दास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास'॥
'कबिता करता तीनि हैं, तुलसी, केसव, सूर।
कबिता खेती इन लुनी, सीला बिनत मँजूर'॥
'तत्त्व तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी'
'किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर'॥

इस अन्तिम दोहे को तानसेन ने बनाकर सूर को सुनाया। इसके उत्तर में सूरदास ने निम्न लिखित दोहा पढ़ा:—

'बिधना यह जिय जानिकै सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलतो, तानसेन की तान'॥

सूरदासजी इतने सच्चे और यथार्थभाषी कवि थे कि इनकी कविता में असम्भव पदार्थों का कथन बहुत कम पाया जाता है, अर्थात् किसी असम्भव घटना का होना इन्होंने नहीं कहा है। 'बिन्ध्य लगि बाढ़िबो उरोजन को पेखो है' की भाँति के कथन इस सच्चे कवि को नहीं भाते थे। इस यथार्थ भाषण के प्रतिकूल हम श्रीकृष्णचन्द्र के सम्बन्ध में ऐसी कथाओं का वर्णन, कि जो अब असम्भव ज्ञात होती हैं, प्रमाण स्वरूप नहीं मानते हैं, क्योंकि वे उस कथा के अङ्ग हैं जो यह कवि कहने बैठा है। इसी यथार्थ

भाषण की टेव के कारण इन्होंने कई स्थानों पर सविस्तर सुरति का वर्णन किया है और कई स्थानों पर ऐसी ऐसी गालियाँ दिलाई हैं जिनका कविता में सन्निविष्ट करना सभ्यता के प्रतिकूल है। कहना न होगा कि ये वर्णन भी परमोत्तम अवश्य हैं।

( ङ ) सूरदास ने स्थान स्थान पर नायिका-भेद भी लिखा है; परन्तु कविता रीति के नियमानुसार उसे न लिख कर जिस दशा के पीछे स्वाभाविक रीति पर जो दशा होती है उसीका वर्णन कथा-प्रसंग की भाँति इन्होंने किया है; और जिस नायिका का वर्णन चलाया उसका अपनी विस्तारकारिणी प्रकृति के अनुसार कुछ देर तक वर्णन किया। सब नायिकाओं का वर्णन न करके इन्होंने बहुत कम का किया है, परन्तु जो कुछ कहा है वह परम मनोहर है। अधिक उदाहरण न देकर हम केवल धीरादि भेद का एक पद नीचे लिखते हैं।

'अतिहि अरुन हरि नैन निहारे। मानहुँ रति रस भये रँग मगे करत केलि पिय पलकन पारे॥ मन्द मन्द डोलत संकित से राजत मध्य मनोहर तारे। मनहु कमल सम्पुट महँ बोंधे उड़ि न सकत चंचल अलि बारे॥ झलमलात रति रैनि जनावत अति रस मत्त भ्रमत अनियारे। मानहु सकल जगत जीतन को काम बान खर सान सँवारे॥ अटपटात अलसात पलक पट मूँदत कबहूँ करत उघारे। मनहु मुदित मरकत मनि अंगन खेलत खंजरीट चटकारे॥ बार बार अवलोकि कनखियन कपट नेह मन हरत हमारे। सूरस्याम सुखदायक रोचन दुख-मोचन लोचन रतनारे॥

( च ) इन सब कथाओं के पीछे इस महाकवि ने श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन का वर्णन बड़ाही हृदय-ग्राही किया है। यदि कहा जा सकता हो कि अमुक कवि ने 'क़लम तोड़ दी,' तो हम अवश्य कहेंगे कि ब्रज-विरह-वर्णन में इस महाकवि ने सचमुच क़लम तोड़ दी है। उद्धव-संवाद और कृष्ण-मथुरा-गमन को पढ़ कर जान पड़ता है कि सूरदासजी वियोग शृंगार के कथन में बड़ेही पटु थे। वियोग का वर्णन किसी दूसरे कवि ने ऐसा उत्तम और स्वाभाविक नहीं किया है। इस विषय में भी कोई छन्द उदाहरणार्थ लिखना हम उचित नहीं समझते क्योंकि एक रोयें से सिंह का अनुभव नहीं कराया जा सकता।

( छ ) उद्धव-संवाद भी बहुत ही विस्तृत रूप से कहा गया है। यह पृष्ठ ५०२ से प्रारम्भ होकर पृष्ठ ५६२ पर समाप्त होता है, और ये पृष्ठ रायल अठपेजी के ढाई गुने होंगे। यह भी आद्योपान्त प्रेमालाप से भरा हुआ है, और ऐसा कोई भाव न बचा होगा जो इसमें न आगया हो। इसमें बड़ेही उत्तम पद मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक पद नीचे लिखा जाता है:—

'ऊधव मन न भये दस बीस। एक हुतो सो गयो स्याम सँग को अवराधे ईस॥ इन्द्री सिथिल भईं केसव बिनु ज्यों देही बिनु सीस। आसा लगी रहति तनु स्वासा जीजे कोटि बरीस॥ तुम तो सखा स्याम सुन्दर के सकल जोग के ईस। सूरदास वा रस की महिमा जो पूछे जगदीस॥'

अन्त में उद्धवजी भी ज्ञान भूल कर प्रेम-मग्न हो गये, और प्रेमियों की भांति कृष्ण के विहार-स्थल देखते फिरे और फिर यदुपति के पास जाकर उन्होंने गोपियों की बड़ी शिफ़ारिश की।

( ज ) अन्य राजाओं की कथा एवं युद्ध इत्यादि का वर्णन करने का प्रयत्न इस सच्चे कवि ने इन विषयों से सहृदयता न होने के कारण, नहीं किया और न वे वर्णन अच्छे बनेही हैं। महात्मा सूरदास और गोस्वामी तुलसीदासजी में यही अन्तर है कि गोस्वामीजी ने कुल बातों का वर्णन अच्छा और अपने ख़ास विषयों का बड़ाही विशद किया है, परन्तु महात्मा सूरदास ने अपने ख़ास विषयों का वर्णन ऐसा किया है जैसा कि गोस्वामीजी, या सम्भवतः किसी विद्या का कोई कवि नहीं कर सका है, परन्तु साधारण विषयों का कथन इन्होंने साधारण कवियों से भी ख़राब किया है। उनको उत्तम प्रकार से कहने का इन्होंने प्रयत्न ही नहीं किया। इसी कारण सूरसागर के इधर उधर दो चार पन्ने पढ़नेवाले इन्हें साधारण कवि समझ सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति इनके उत्तम वर्णन संग्रह करके रामायण की इतनी पोथी निकाल ले तो उसकी हिन्दी जानने वालों पर बड़ी अनुग्रह हो।

( झ ) इस कवि ने स्फुट विषयों का वर्णन भी कहीं कहीं बड़ाही उत्तम किया है। प्रीति के विषय में इनका यह मत है:—

'प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै देह दह्यो' ॥

अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सों सम्पति हाथ गह्यो।
सारँग प्रीति जु करी नाद सों सनमुख बान सह्यो॥
हम जो प्रीति करी माधव सों चलत न कछू कह्यो।
सूरदास प्रभु बिनु दुख दूनो नैननि नीर बह्यो'॥

सत्संग पर सूरदास को बड़ी श्रद्धा थी। इस बात में भी तुलसीदासजी से इनका मत मिलता है।

'जा दिन सन्त पाहुने आवत। तीरथ कोटि अन्हान करैं फल जैसो दरसन पावत॥ नेह नयो दिन दिन प्रति उनको चरन कमल चित लावत। मन बच क्रम और न नहिँ जानत सुमिरन औ सुमिरावत॥ मिथ्याबाद उपाधि रहित ह्वै बिमलि बिमलि जस गावत। बन्धन करम कठिन जो पहिले सोऊ काटि बहावत॥

इस छन्द से सूरदास के रहन सहन का भी पूरा पता मिलता है।

मुरली—इन महाशय ने पाँच पृष्ठ पर्य्यन्त केवल मुरली का वर्णन किया है और उसमें बड़े ही उत्तम पद लिखे हैं। जब श्याम का इतना वर्णन है तब फिर मुरली क्यों रह जाय? यह इन्हीं का काम था कि मुरली ऐसे विषय पर क़रीब चालीस पद लिखते।

नयन—इस महाकवि ने पृष्ठ ३१९ से क़रीब १८ पृष्ठों में केवल नेत्रों का वर्णन किया है। ऐसे ऐसे छोटे विषयों पर इतनी बड़ी कविता रच डालना साधारण कवि का काम नहीं है। इस वर्णन में भी अच्छे पद हैं। उदाहरण लीजिए:—

'नैना नाहीं कछू बिचारत। सनमुख समर करत मोहन सों यद्यपि हैं हठि हारत॥ अवलोकत अलसात नवल छबि अमित तोष

अति आरत। तमकि तमकि तरकत मृगपति ज्यों घूँघट पटहि बिदारत'॥

( ञ ) सूरदास ने कई स्थानों में पदों द्वारा कथा कहकर फिर साधारण छन्दों में सूक्ष्मतया उनको दुहराया है। इन सबमें काली की द्वितीय कथा उत्तम है, परन्तु उसमें भी यह दोष है कि कृष्ण और नागिन की बातचीत में कृष्ण ने नागिन को बहुत फटकारा है। कृष्ण भगवान् उस समय बालक थे; शायद यह विचार करके सूर ने ऐसा कहलाया हो।

( ७ ) सूर ने ठौर ठौर पर कूट भी लिखे हैं और इनमें अलंकार और रसांग भी आये हैं। उदाहरण में सरदार कृत सूर दृष्ट कूट ( जो मुं० नवलकिशोर के यहाँ मुद्रित हुई है उस ) के पृष्ठ ९४ पर लिखित एक कूट हम यहाँ लिखते हैं। उसका अर्थ भी उसी पृष्ठ पर सरदार ने लिखा है।

'जनि हठ करहु सारँग नैनी। सारँग ससि सारँग पर सारँग ता सारँग पर सारँग बैनी॥ सारँग रसन दसन गुनि सारँग सारँग सुनहहु निरखनि पैनी। सारँग कहो सुकान बिचारो सारँग पति सारँग रचि सैनी॥ सारँग सदनहि लँजु बहन गये अजहुँ न मानत गत भइ रैनी। सूरदास प्रभु नव मग जावै अन्धक रिपुता रिपु सुख दैनी॥'

( ८ ) इन्होंने लोगों का शील गुण भी अच्छा दिखाया है। यशोदा के यद्यपि एकही पुत्र वृद्धावस्था में हुआ था तथापि ये उसकी बेजा चाल ढाल पर कड़ा दंड तक देती थीं और ऐसी

उदारहृदया भी थीं कि रोहिणीपुत्र बलदेव का अपने पुत्र से भी अधिक सम्मान करती थीं।

'हलधर कहत प्रीति जसुमति की। एक दिवस दरि खेलत मोसों झगरो कीन्हो पेलि। मोको दौरि गोद करि लीन्हों इनहिं दियो कर ठेलि,॥

इन्होंने कृष्ण के चले जाने पर देवकी से जो सन्देशा कहला भेजा है वह विशेषतया द्रष्टव्य है:—

'सँदेसो देवकी सों कहियो। हौंतो धाय तिहारे सुत की मया करत नित रहियो॥ यदपि टेव तुम जानत उनकी तऊ मोहि कहि आवै। प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहि माखन रोटी भावै॥ तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भगि जाते। जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करि करि न्हाते॥ सूर पथिक सुनि मोहिँ रैनि दिन बढ़ो रहत उर सोच। मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वै है करत सकोच॥'

यशोदा के शील गुण में केवल यह बात अनुचित जान पड़ती है कि उन्होंने नन्द से बार बार कहा, 'दसरथ तुम से अच्छे थे, क्योंकि तुम पुत्र को मथुरा में छोड़ कर जीते जागते घर चले आये।' परन्तु इन्होंने शायद अपनी यथार्थ भाषण की टेव से ऐसा कहला दिया—

कुबिजा का शीलगुण भी नौ बढ़ियों की भाँति ख़ूबही दिखाया गया है। वह समझती थी कि गोपी ग्रामीण थीं अतः श्याम को अपने वश में न रख सकीं, परन्तु वह ख़ुद नागर थी अतः उसने

उन्हें लुभा लिया। उस दासी ने केवल यह सोचाही नहीं वरन् गोपियों से उद्धव द्वारा यह कहला भी भेजा ( पृ० ५०४ व ५०५ )।

( ९ ) यद्यपि सूरदास ख़ुद श्याम के भक्त थे, तथापि इन्होंने गोपियों के मुख से काले की ख़ूब निन्दा कराई है और अन्त पर्य्यन्त किसी स्थान पर भी तुलसीदासजी की भाँति कोई शिफ़ारशी छन्द नहीं लिखा। वे कहती थीं किः—

'सखीरी स्याम सबै इक सार। मीठे बचन सोहाये बोलत अन्तर जारन हार॥ भँवर कुरंग काग अरु कोकिल कपटिन की चटसार।

सखीरी स्याम कहा हितु जानै। कोऊ प्रीति करौ कैसेहू वह अपने गुन ठानै॥ देखौ या जलधर की करनी बरषत पोषै आनै। सूरदास सरबसु जो दीजै कारो कृतहि न मानै।

ऊधव कारे सबहि बुरे।

इससे ज्ञात होता है कि सूरदास ऐसे संकीर्णहृदय न थे कि यदि उनका कोई नायक या उपनायक स्वयं उनकी राय के प्रति-कूल कुछ कहता तो उनसे गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति बिना अपनी राय प्रकाश किये न रहा जाता। अँगरेज़ी में ऐसे कवियों को Poets of general vision ( सर्वव्यापिनी दृष्टि के कवि ) कहते हैं। सूरदासजी इसी प्रकार के कवि थे। भाषा-साहित्य में सूरदासजी, तुलसीदासजी, और देवजी सर्वोच्च तीन कवि हैं। इनमें न्यूनाधिक बतलाना मत-भेद से ख़ाली नहीं है। अतः सूर-

दासजी की गणना भाषा के तीन सर्वोच्च कवियों में है और निश्चय-पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि इनसे कोई भी अच्छा है। यह महात्मा हिन्दी के वाल्मीकि हैं। उन्हीं के समान ये हिन्दी के वास्त-विक प्रथम कवि हैं और उन्हीं के समान इनके भी वर्णन पूर्ण, बड़े और सर्वाङ्ग सुन्दर होते हैं।

देव ।

अनुभव सागर रसिक बर भाषा भानु बिसाल ।
करत छन्द रचना लखौ देव सकल गुन आल ॥

# महाकवि देवजी ।

देवदत्त उपनाम देव का जन्म सन् १६७४ ई० (सं० १७३० वि०) में हुआ था। इन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ भावविलास के अन्त में निम्न दोहे में अपना संवत् कहा हैः—

"सुभ सत्रह सै छियालिस चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव मुख देवता भावविलास सहर्ष" ॥

देवजी ने अपने ग्रन्थों में सन् संवत् का ब्यौरा बहुत कम दिया है और अपने विषय तो प्रायः कुछ भी नहीं कहा है। इन कारणों से इनके विषय बहुत कम बातें ज्ञात हैं यहाँ तक कि हम इनके पिता तक का नाम नहीं जानते। इन्होंने कहा है किः—

'धौसरिया कवि देव को नगर इटायो बास' ॥

इससे विदित होता है कि देवजी सनाढ्य ब्राह्मण थे और ये इटावा नगर में रहते थे। इटावा में मुहल्ला छपेटी और घटिया में ब्राह्मणों का बास है, इससे जान पड़ता है कि ये भी यहीं रहते होंगे। शोक कि इटावा में हमने बहुत कुछ पूछ जाँच की परन्तु देवजी का वहाँ कुछ भी पता नहीं लगा। शिवसिंहसरोज में इनका निवासस्थान समाने गाँव में माना गया है। यह ग्राम ज़िला मैनपुरी में है। यह कथन उपर्युक्त दोहे के सन्मुख माननीय नहीं जान पड़ता। देवजी स्वामी हितहरिवंश के बारह शिष्यों में मुख्य थे।

ये महाशय ऐसी अद्भुत कवित्व-शक्ति-सम्पन्न थे कि इन्होंने केवल सोलह वर्ष की बाल्यावस्था में भावविलास ऐसा ग्रन्थ बना कर तैयार कर दिया। इस बात के होते हुए भी इनका भाग्य ऐसा कुछ मन्द था कि इनका अच्छा आदर कहीं नहीं हुआ। ये महा-राज बड़े और छोटे सभी प्रकार के मनुष्यों के यहाँ पहुँचे परन्तु सिवा भोगीलाल के और किसी श्रीमान् ने इन्हें सन्तुष्ट न किया। ये स्वयं कहते हैं कि:—

"ऐसो हौं जु जानतो कि जैहै तू बिषै के संग एरे मन मेरे हाथ पाँय तेरे तोरतो। आजु लगि कत नर नाहन की नाहीं सुनि नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो॥ चलन न देतो देव चंचल अचल करि चाबुक चेतावनीन मारि मुँह मोरतो। भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि राधा बर बिरद के बारिद में बोरतो"॥

देवजी ने 'भावविलास' और 'अष्टयाम' बना कर पहले पहल बादशाह औरंगज़ेब के बड़े पुत्र आज़म शाह को जाकर सुनाया। इन्होंने भावविलास में लिखा है कि:—

"दिल्ली पति नवरंग के आजम साहि सपूत।
सुन्यो सराह्यो ग्रन्थ यह अष्ट याम संजूत"॥

यही आज़म शाह सन् १७०७ ई० में बहादुर शाह की उपाधि के साथ औरंगज़ेब के पीछे हिन्द के बादशाह हुये थे। ये महाराज आज़म शाह हिन्दी के प्रेमी भी थे। इन्हीं ने बिहारीलाल की सत-सई का क्रम कराया था जिसको आज़म शाही क्रम कहते हैं। वही क्रम आज तक प्रचलित है। इतने पर भी देवजी का ऐसा सन्मान इन्होंने न किया कि उनको औरों का मुख न देखना पड़ता।

इसके पीछे देवजी ने भवानीदत्त वैश्य के नाम पर 'भवानी-विलास' नामक ग्रन्थ बनाया, और फफूंद ज़िला इटावा के कुशल-सिंह के नाम 'कुशलविलास' कहा। तदनन्तर इन्होंने मरदनसिंह के पुत्र राजा उद्योतसिंह बैस के वास्ते प्रेमचन्द्रिका ग्रन्थ बनाया। इनकी भी देवजी ने अधिक प्रशंसा नहीं की है; इससे विदित होता है कि इनके यहाँ भी देव का अच्छा आदर नहीं हुआ। इस समय देवजी अच्छे गुणज्ञ की खोज में, या तीर्थ यात्रा के लिए या चाहे और किसी कारण से देश भर में बराबर घूमते रहे। ये महा-राज जहाँ जहाँ गये वहाँ की रीतियों पर, मनुष्यों की चाल ढाल पर, और अन्यान्य दर्शनीय पदार्थों पर पूरा ध्यान रखते रहे। इन्होंने कश्मीर, पंजाब, बंगाल, उड़ेसा, मदरास, बम्बई, गुजरात, राजपूताना, बरार आदि सब देशों को घूम घूम कर देखा। इस महाकवि ने अपने परिभ्रमण द्वारा प्राप्त इस अपूर्व ज्ञान को वृथा नहीं खोया वरन् 'जातिविलास' नामक ग्रन्थ रच कर सब देशों की स्त्रियों का बड़ा ही सच्चा वर्णन किया। इन्होंने नायकाओं के देश भेद में निम्न देशों की स्त्रियों का पृथक पृथक् वर्णन किया है—अन्तरवेंद, मगध, कोशल, पटना, उड़ीसा, कलिंग, कामरूप, बंगाल, वृन्दावन, मालवा, अभीर, बरार, कोकनद, केरल (इसमें अब मलावार, कोचीन और ट्रावंकोर शामिल हैं), द्रविड़ (तंजोर), तिलंग, करनाटक, सिन्ध, मरु, गुजरात, कुरु, करबीर, पर्वत, भूटान, काशमीर और सौवीर। इस महाकवि ने इन सब देशों की स्त्रियों का ऐसा सच्चा वर्णन किया है कि जान पड़ता है कि यह वहाँ गया अवश्य था। इस समय इनका कोई भी आश्रयदाता

न था यहाँ तक कि इन्होंने जातिविलास किसी को भी समर्पित न किया।

इस प्रकार घूमते घामते देवजी को एक गुणज्ञ राजा भी मिल ही गया। वह राजा भोगीलाल था। जैसा उत्तम वर्णन देवजी ने भोगीलाल का किया है वैसा किसी भी आश्रयदाता का नहीं किया। इन्हों ने सन् १७२७ ई० में इसी राजा के वास्ते अपना 'रसविलास' नामक ग्रन्थ बनाया। इस गुणज्ञ राजा को पाकर देवजी ने अपने पुराने आश्रयदाताओं को केवल भुलाही नहीं दिया वरन् उन्हें छोड़ भी दिया। वे लिखते हैं:—

"पावस घन चातिक तजै चाहि स्वांति जल विन्दु।
कुमुद मुदित नहिँ मुदित मन जौ लौं उदित न इन्दु॥
देव सुकवि तातें तजे राइ रान सुलतान।
रस विलास करि रीझि हैं भोगीलाल सुजान"॥

"भूलि गये भोज बलि बिक्रम बिसरि गये जाके आगे और तन दौरत न दीदे हैं। राजा राइ राने उमराइ उनमाने उनमाने निज गुन के गरब गिरबीदे हैं॥ सुबस बजाज जाके सौदागर सुकवि चलेई आवैं दसहू दिसान के उनीदे हैं। भोगीलाल भूप लाख पाखर लिवैया जिन लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं॥

इन छन्दों से जान पड़ता है कि भोगीलाल बड़ा गुणज्ञ था, उसके यहां बहुत से कवि आते थे, और उसने देव को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट किया।

परन्तु देवजी का भाग्य ऐसा कहाँ था कि उनको कल से एक स्थान पर बैठने देता। जान पड़ता है कि या तो भोगीलाल का शरीरपात हो गया या देवजी से उनसे कुछ अनबन हो गई। जिस समय इन्होंने अपना प्रधान ग्रन्थ शब्दरसायन बनाया उस समय इनका कोई भी आश्रयदाता न था, अतः इन्होंने शब्दरसायन भी किसी के नाम नहीं बनाया। इसके पीछे देवजी ने अपनी समस्त कविता का संग्रह स्वरूप "सुखसागरतरंगसंग्रह" नामक ग्रन्थ बनाया और उसे पिहानी के अकबर अलीखाँ को समर्पित किया। देवजी ने सिवा भावविलास और रसविलास के और किसी ग्रन्थ में सन्-संवत् का ब्यौरा नहीं दिया है और शेष ग्रन्थों का समय उनकी कविता की प्रौढ़ता एवं अन्य गुणों से यहाँ क्रमबद्ध किया गया है। देवजी के स्वर्गवास का क्या समय था इस बात का अभी ठीक पता नहीं लगा है। कोई कहता है कि इन्होंने ७२ ग्रन्थ बनाये और कोई इन्हें बावन ग्रन्थों का रचयिता बतलाता है। हम इतना अवश्य कहेंगे कि यदि इन्होंने ७२ ग्रन्थ बनाये हों तो कोई आश्चर्य्य नहीं क्योंकि ये महाशय वही छन्द इधर उधर उलट पलट के रख कर नया ग्रंथ तैयार कर देते थे। जातिविलास और रसविलास में बहुत ही कम अन्तर है। इनका चाहे जो ग्रन्थ उठा लीजिये और देखिये तो ज्ञात होगा कि इनके उत्तमोत्तम छन्द प्रायः सभी ग्रन्थों में वही हैं। इन बातों से विदित होता है कि नया ग्रन्थ बनाने में इन्हें बहुत समय नहीं लगता था। सुना जाता है कि इन्होंने नीतिशतक और वैराग्यशतक भी बनाये हैं। देवजी का सा रसिया मनुष्य सत्तर वर्ष की अवस्था के प्रथम वैराग्यशतक कभी

न बनाता। जान पड़ता है कि जब ५३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने रसविलास समाप्त किया, तब शब्दरसायन और सुखसागरतरंग आदि बनाने का इन्होंने विचार किया। फिर सत्तर वर्ष की अवस्था के लगभग इन्होंने वैराग्यशतक बनाया होगा और इसी अवस्था के इधर उधर इनका शरीरपात हुआ होगा। अतः जान पड़ता है कि सन् १७४५ ई० के लग भग देवजी स्वर्गवासी हुए होंगे।

हमने देवजी के चौदह ग्रंथ देखे हैं और उन्हीं की समालोचना भी हम नीचे लिखते हैं। शोक का विषय है कि, जहाँ तक हमें ज्ञात है, देवजी के केवल निम्न लिखित पाँच ग्रंथ मुद्रित हुए हैं:—

भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास, रसविलास और सुखसागर-तरंग। इनके अतिरिक्त भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का बनाया हुआ सुन्दरीसिन्दूर नामक देवजी के काव्य का एक संग्रह भी छापा गया है।

( १ ) भावविलास—यह देवजी का प्रथम ग्रंथ है और इन्होंने इसे केवल सोलह वर्ष की बाल्यावस्था में बनाया था, परन्तु इनकी प्रौढ़ कविता में जो गुण देख पड़ते हैं वे सब इस बाल-कविता में भी देखे जाते हैं। रसविलास तिरपन वर्ष की अवस्था में बना है और यद्यपि इन दोनों में अन्तर अवश्य है परन्तु तो भी इनमें इतना बड़ा अन्तर नहीं है जितना कि होना उचित था। इससे सन्देह होता है कि देवजी ने पीछे से इस ग्रन्थ के निकम्मे छन्द निकाल कर उनके स्थान में पीछे से बने हुए उत्तमोत्तम छन्द रख दिये हैं। तो भी ऐसी बाल्यावस्था में ऐसा उत्तम ग्रन्थ बनाना इन्हीं का काम था। इन्होंने इस ग्रन्थ में—

'कवि देव दत्त शृंगार रस सकल भाव संयुत सच्यो ।
सब नायकादि नायक सहित अलंकार बरनन रच्यो ॥'

इन्होंने औरों की भाँति छः प्रकार के भाव कहे हैं । देवजी मरणावस्था का वर्णन न करके उसके स्थान पर मूर्छा का वर्णन कर देते हैं । भरतादिक आचार्य्यों ने तेंतीस मन-संचारी माने हैं परन्तु देवजी ने चौंतीसवाँ 'छल' भी कहा है । इस ग्रन्थ में प्रेम का निम्न लिखित लक्षण दिया गया है :—

'सुख दुख में है एक सम तन मन बचननि प्रीति ।
सहज बढ़ै हित चित नयो जहाँ सुप्रेम प्रतीति ॥'

देव ने दो प्रकाशों में भाव का वर्णन करके तृतीय में रस का कथन किया है । इन्होंने अलौकिक और लौकिक दो प्रकार के रस कहे हैं । फिर इन्होंने अलौकिक रस तीन प्रकार का कहा है, अर्थात् स्वप्न, मनोरथ और उपनायक । इन्होंने भी लौकिक रस नव प्रकार कहा है, यथा शृंगार, हास्य, करुणा, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, और शान्ति । इनमें से नाटक के केवल प्रथम आठ हैं और काव्य के पूरे नौ ।

शृंगार दो प्रकार का होता है, संयोग और वियोग; और वे फिर दो दो प्रकार के होते हैं अर्थात् प्रच्छन्न और प्रकाश । फिर देवजी ने संयोग के दश हावों और वियोग की दश दशाओं का वर्णन किया है । इन्होंने नायकों के चार और नायकाओं के ३८४ भेद माने हैं । इन्होंने यौवन का निम्न लिखित लक्षण दिया है:—

'बालापन को भेदि कै छबि को अंकुर होय ।
जग मोहै दिन दिन बढ़ै यौवन कहिये सोय ॥'

देवजी के मत में कामिनी अलंकार पहिनने से उत्तम तर देख पड़ती है अतः ये महाशय अधिकतर सालंकार नायका का वर्णन करते हैं।

'कविता कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति।
अलंकार पहिरे बिशद अदभुत रूप लखाति॥'

देवजी कहते हैं कि पुरातन आचार्य्यों की रीति से केवल ३९ अलंकार मुख्य हैं। उन्हीं का ये वर्णन करते हैं।

भावविलास एक बड़ा ही रोचक ग्रन्थ है और आश्चर्य्य होता है कि एक सोलह वर्ष का बालक ऐसा उत्तम ग्रन्थ बनाने में कैसे समर्थ हुआ। भाषा के किसी रीति ग्रन्थ से यह ग्रन्थ कविता के गुणों में न्यून नहीं है।

(२) अष्टयाम—देवजी का यह द्वितीय ग्रन्थ है। प्रायः कवि जन षट ऋतु का वर्णन करते हैं, सो देवजी ने उसमे भी आगे बढ़ कर दिन के प्रत्येक प्रहर और घड़ी का वर्णन कर दिखाया। यह ग्रन्थ भी भावविलास के साथही साथ बना था और इसमें जान पड़ता है कि पीछे से कोई छन्द नहीं मिलाये गये सो यह ग्रन्थ भाव-विलास से कुछ न्यून आया है परन्तु तो भी इसमें भी देवजी की वही मनभावनी छटा वर्तमान है। इतनी प्रगाढ़ शक्ति इन्हीं महा-राज में थी कि केवल दिन रात के वर्णन में पूरा ग्रन्थ बनाकर तैयार कर दिया। इन्होंने भावविलास और अष्टयाम आज़मशाह (औरंगज़ेब के पुत्र) को पढ़ कर सुनाये और उन्होंने इन दोनों ग्रन्थों की प्रशंसा की। वास्तव में ये ग्रन्थ बहुत ही प्रशंसनीय हैं।

( ३ ) भवानीविलास—यह ग्रन्थ भवानीदास नामक एक वैश्य महाशय के नाम पर बनाया गया है और इस में रस वर्णित हैं परन्तु इसकी कविता भावविलास से उत्तमतर है। ये उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ काशी में बाबू रामकृष्ण वर्म्मा के यहाँ प्रकाशित हुए थे।

( ४ ) सुन्दरीसिन्दूर—यह देवजी का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, वरन् भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का संकलित किया हुआ देवजी के चुने हुए १११ छन्दों का बड़ा ही चित्ताकर्षक संग्रह है। इसमें प्रथम पदार्थ-निर्णय है। उसके पीछे रस वर्णित हैं और फिर उपमा आदि कही गई हैं। इसमें पूर्णरूप से कोई प्रबन्ध नहीं है, परन्तु इसके छन्द बड़े ही मनोहर हैं।

( ५ ) सुजानविनोद पण्डित युगलकिशोरजी के पुस्तकालय में वर्त्तमान है। इसमें निम्न लिखित प्रेमचन्द्रिका की भाँति प्रेम का सूक्ष्म वर्णन किया गया है और उत्तम भी है। इनके मतानुसार जप या तप उतना विशद नहीं है जितना कि प्रेम है। सूक्ष्मतया दो एक छन्द उद्धव के विषय कह के इस ग्रन्थ में देव ने नायका भेद कहा है और षट ऋतु का वर्णन करके इसे समाप्त कर दिया है। यह षटऋतु बहुत अच्छा कहा गया है। यह ग्रन्थ उत्तमता में भवानी-विलास के समान है। इसके नाम से भ्रम होता है कि यह सुजान नामक किसी व्यक्ति के वास्ते बनाया गया है। परन्तु ग्रन्थ में किसी सुजान का नाम तक नहीं आया है, जान पड़ता है कि यहाँ सुजान से विज्ञ मनुष्य का तात्पर्य्य है। आकार में यह ग्रन्थ भावविलास के बराबर होगा।

( ६ ) प्रेमतरङ्ग भी हमने पण्डित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में देखा है। इसके केवल तीन अध्याय युगलकिशोरजी के पास हैं। इसमें नायका भेद का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। इन तीन अध्यायों में क़रीब दो सैा के छन्द हैं। इस ग्रन्थ का आकार शब्दरसायन के बराबर होना सम्भव है। इसमें भी देवजी ने परकीया श्रोर सामान्या के सम्पर्क को बहुत निन्दित माना है।

प्रगट भये परकीय अरु सामान्या को संग।
धरम हानि धन हानि सुख थोरो दुःख इकंग॥
उत्तम रस शृंगार की स्वकिया मुख्य अधार।
ताको पति नायक कह्यो सुख सम्पति को सार॥

यह एक बहुत उत्तम ग्रन्थ है श्रोर इसकी कविता बहुत प्रशंसनीय है।

( ७ ) रागरत्नाकर एक बड़ाही उत्तम ग्रन्थ है। इसमें देवजी ने रागों का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ के भी केवल दो अध्याय पण्डित युगलकिशोरजी के पुस्तकालय में हमने देखे हैं। शेष ग्रन्थ उनके पुस्तकालय में अपूर्ण है। इसके वर्णन से विदित होता है कि यह ग्रन्थ भी भावविलास के बराबर आकार में होगा। इसके विषय का सूक्ष्म वर्णन नीचे लिखा जाता है।

षड्ज, रिषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, श्रोर निषाद नामक सात स्वर होते हैं। मुख्य राग छः हैं अर्थात् भैरव, मालकैास, हिंडोल, दीपक, श्री, श्रोर मेघ। इन सब में दीपक रागों का राजा है। प्रत्येक राग की पांच पांच भार्य्यायें हैं, अर्थात्—

भैरव की भैरवी, बरारी, मधु माधवी, सिन्धवी, और बंगाली।

मालकौस की टोड़ी, गौरी, गुणकरी, खम्भावती, और कुकुभ।

हिँडोल की रामकरी, देसाख, ललित, बिलावल, और पटमंजरी।

दीपक की देसी, कामोद, नट, केदारा, और कान्हरो।

श्री की मालसिरी, मारू, धनाश्री, बसन्त, और आसावरी।

और मेघ की मलारी, गूजरी, भूपाली, देश कारिल, और टंक।

द्वितीय अध्याय बहुत ही छोटा है और उसमें थोड़े से उपरागों का सूक्ष्म वर्णन हुआ है।

रागों और रागिनियों का रूप और उनके विषय अन्य जानने योग्य बातें देवजी ने एक एक छन्द द्वारा बहुत ही उत्तम रीति से दिखा दी हैं। उदाहरणार्थ दीपक का छन्द यहाँ लिखा जाता है।

सूरज के उदै तूरज राव चढ़ो गजराज प्रभा परिवेष्यो।
दूसरो सूरज सूरज जोति किरीट ज्यों सूरज भूषन भेष्यो॥
कामिनी संग सुरंग मैं प्यो धनी ग्रीषम द्योस मध्यान्ह विशेष्यो॥
दीपन दीप ज्यों दीपत दीपक रागु महीपति दीप ज्यों देख्यो॥

रंग मैं प्यो धनी से रिषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद को समझना चाहिए। इस स्थान पर दीपक का स्वरूप, उसके गाने का उचित समय, उसके साथ के बाद्य, उसकी सवारी, उसके भूषण, उसके स्वर लक्षण आदि का पूरा वर्णन एकही छन्द में कह दिया गया है और छन्द भी बहुतही उत्तम है।

रागिनियों का उदाहरण स्वरूप बसन्ती का वर्णन नीचे लिखा जाता है।

सांवरी सुन्दरि पीत दुकूलनि फूल रसाल के मूल लसन्ती ।
लीन्हें रसालकि मंजरी हाथ सुरंगित आंगी हिये हुलसन्ती ॥
पूरन प्रेम सुरंग में प्यो धनी संगही संग बिलोल हसन्ती ।
है उत है उत ही दिन मांझ समौ करि राख्यो बसन्त बसन्ती ॥

इसमें भी उपर्युक्त बातें का कथन किया गया है। यह देवजी का ही काम था कि ऐसे ऐसे उत्तम छन्दों द्वारा राग-रागिनियों का सांगोपांग वर्णन कर दिया। बड़े शोक की बात है कि ऐसा उत्तम ग्रन्थ हमारे पास अपूर्ण है। यह भी देवजी का बड़ाही उत्तम ग्रन्थ है और इस की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस ग्रन्थ से विदित होता है कि ये रागों के भी पूर्णज्ञ थे।

(८) कुशलविलास तिरासी बड़े पृष्ठों का एक उत्तम ग्रन्थ है जिसमें नौ अध्यायें द्वारा नायका भेद वर्णित है। यह ग्रन्थ फफूंद ज़िला इटावा निवासी शुभकरन के पुत्र कुशलसिंह सेंगर के नाम पर बना है। इसमें कुशलसिंह की साधारण बड़ाई है जिससे जान पड़ता है कि यहाँ भी कवि का साधारण ही मान हुआ था। इसके नवों अध्यायों में क्रमशः भाव भेद, स्वकीया पति निरूपण, स्वकीयादि स्वरूप, मुग्धा के १३ भेद, मुग्धादिक स्वरूप, मुग्धा पूर्वानुराग, मध्या दश अवस्था, दश हाव तथा तीन मान, और धीरादि भेद वर्णित हैं। इसमें अपने सिद्धान्त के दो दोहे इन्होंने कहे हैं।

भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल सिंगार।
जो सम्पति दंपतिनु की जा को जग विस्तार ॥

होति अनूढ़ा रस बिबस नौल छैल छबि देखि।

ऊढ़ा गूढ़ बिमूढ़ मन प्रेमारूढ़ बिसेखि॥

उत्तमता में यह ग्रन्थ भवानीविलास के बराबर है और इनकी कविता के सभी गुण इसमें भी प्रस्तुत हैं। उदाहरणार्थ यहां केवल एक छन्द लिखते हैं।

अम्ब कुल बकुल कदम्ब मल्ली मालती मलैजन को मोंजि कै गुलाबन की गली ह्वै। को गनै अलप तरु जीत्यो जो कलपतरु तासों विकलप क्यों बिकल मति अली ह्वै॥ चित्तज के जाय चढ़ि चम्पक चपायो कौन मोचि सुख सोचि हौं सकुच चुप चली ह्वै। कंचन बिचारे रुचि पाई चारु पंचन में चम्पा बरनी के गरे परयो चम्पकली ह्वै॥

(९) देव-चरित्र ४४ बड़े पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें श्री कृष्णचन्द्र का ऐतिहासिक चरित्र कंस-बध पर्यन्त कुछ विस्तारपूर्वक और शेष बहुत सूक्ष्मतया कहा गया है। इसमें सब लीलायें थोड़े में अत्यन्त उत्तमता के साथ कही गई हैं और वर्णन सवैयाओं और घनाक्षरियों में हुआ है। यह बड़ाही मनोहर ग्रन्थ है और इसमें इस महाकवि ने ऐतिहासिक वर्णन लिखने की शक्ति पूर्णतया प्रकट कर दी है। कालीनाथने और गोवर्द्धन-धारण की लीलायें विशेषतया उत्तम कही गई हैं। इस ग्रन्थ में गोपियों के रास, उद्धवादि का अच्छा वर्णन नहीं किया गया है न उसके विस्तार का कुछ भी प्रयत्न हुआ है। उत्तमता में यह ग्रन्थ भी भवानीविलास के समान है।

उदाहरण लीजिए।

फैलि फैलि फूलि फूलि फलि फलि हूलि हुलि झपकि झपकि आईं कुंजैं चहुँ कोद ते। हिलि मिलि हेलिनु सों केलिनु करन गईं

बेलिनु बिलोकि बधू ब्रज की बिनोद ते ॥ नन्द जू की पौरि पर ठाढ़े हे रसिक देव मोहन जू मोहि लीन्ही मोहिनी सुमोद ते। गाथनि सुनत भूली साथनि की फूल गिरे हाथनि के हाथनि ते गोदनि के गोद ते ॥ मेरे गिरिधारी गिरि धस्यो धरि धीरजु अधीर जनि होहि अंगु लचकि लुरकि जाय। लाड़िले कन्हैया बलि गई बलि मैया बोलि ल्याऊं बल भैया आय उर पै उरकि जाय॥ टेकि रहि नेक जौलौं हाथ न पिराय देखि साथु सगु रीते अँगुरी ते न बुरकि जाय। पस्यो ब्रज बैर बैरी बारिद बाहन बारि बाहन के बोझ हरि बाँह न मुरकि जाय॥

(१०) प्रेमचन्द्रिका—यह ग्रन्थ मर्द्दन सिंहात्मज राजा उद्योत-सिंहजी बैस के वास्ते रचा गया है। इसमें प्रथम शृंगार रस के दो छन्द कह कर कवि ने राधा-कृष्ण की बन्दना की है। इस ग्रन्थ में प्रेम का वर्णन निम्न छन्द द्वारा किया गया हैः—

जाके मद मात्यो उमात्यो ना कहुँ कोई जहाँ बूड़रो उछल्यो ना तस्यो सोभा सिन्धु सामुहै। पीवतही जाहि कोई मास्यो सो अमर भयो बौरान्यो जगत जान्यो मान्यो सुखधामु है॥ चख के चखक भरि चाखतही जाहि फिरि चाख्यो ना पियूख कछु ऐसो अभिरामु है। दम्पति सरूप ब्रज औतस्यो अनूप सोई देव कियो देखि प्रेम रस प्रेम नामु है॥

देवजी के मतानुसार सब रसों में शृंगार रस मुख्य है। मुख्य प्रेम मुग्धाओं में होता है। मध्या में कभी कभी कलह होती है इसीसे उसका प्रेम कलुषित होता है, और प्रौढ़ा में रोष गर्वादि अधिक

होते हैं अतः उसमें प्रेम उत्तम नहीं मिलता। प्रेम पाँच प्रकार का होता है यथाः—सानुराग, सौहार्द, भक्ति, वात्सल्य, और कार्पण्य। सानुराग प्रेम शृंगारमय होता है। इस शृंगार के दो भेद हैं संयोग और वियोग, और वे दोनों गूढ़ और अगूढ़ होते हैं। वियोग शृंगार चार प्रकार का होता है, यथा, पूर्वानुराग, करुण, मान, और प्रवास। तीन प्रकार की नायकाओं में से स्वकीया और परकीया में प्रेम होता है परन्तु गणिका में नहीं होता, अतः उसमें शृंगाराभास हो जाता है।

पूर्वानुराग स्वकीया और परकीया मुग्धाओं में होता है और इसकी उत्पत्ति श्रवण, दर्शन, तथा, स्मरण से है। इसी के अनन्तर दश अभिलाषादि दशायें होती हैं। मध्या का कलह के कारण, और प्रौढ़ा का गर्व के कारण प्रेम कलुषित होता है। पहले श्रवण, दर्शन, स्मरण एवं बिरह द्वारा पूर्वानुराग होता है और तब अभिलाषादिक दश दशायें उत्पन्न होती हैं और उसके पीछे संयोग होता है। शृंगार की मुख्य पात्र शुद्ध स्वकीया है और उसमें भी मुग्धा की विशेषता है। परकीया के विषय देवजी का यह मत हैः—

परकीया उपपतिबिरह होति प्रेम आधीन।
पति सम्पति तन बिपति में दौरि परै पन पीन॥
पर रस चाहै परकिया तजै आपु गुन गोत।
आपु औटि खोवा मिलै खात दूध फल होत॥
काची प्रीति कुचालि की बिना नेह रस रीति।
मार रंग मारू मही बारू कीसी भीति॥

इसके पीछे प्रेमचन्द्रिका में स्वकीया मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, तथा परकीया का प्रेम वर्णित है। परकीया के वर्णन में बड़ेही मनोहर छन्द हैं। यह सब कह कर देवजी ने इस ग्रन्थ के मुख्य विषय गोपियों के प्रेम का कथन किया है। यह वर्णन देखते ही बन आता है। इसके पीछे देवजी ने भक्ति का वर्णन करना प्रारम्भ किया। इसमें प्रथम गोपियों का रास कहा है, तत्पश्चात् दो चार भक्तों की दशा पर दो दो एक एक छन्द कह कर ग्रन्थ समाप्त कर दिया है। यह बड़ाही सुन्दर ग्रन्थ है और इसमें हृदय के क्षुब्ध करने वाले कितनेही बड़े बड़े मनोहर और भड़कीले छन्द हैं। उद्धव की वार्त्ता इस ग्रन्थ का मुख्यांश है और वही इसका सर्वोत्तम भाग भी है। इसमें पुराने आचार्य्यों के मत पर न चल कर देवजी ने एक अनोखा प्रबन्ध बांधा है और प्रेम-सम्बन्धी अपने अपूर्व अनुभवों का निचोड़ अपने ख़ास ढंग से इसमें भर दिया है। जितनी जांच की बातें देवजी के इस छोटे से ग्रन्थ में पाई जाती हैं उतनी इनके किसी दूसरे ग्रन्थ में नहीं मिलतीं। यह इनका सर्वप्रिय विषय और सर्वप्रिय ग्रन्थ है सो इन्होंने माना बाह्याडम्बर को छोड़ कर इसमें पाठकों को अपना हृदय दिखा दिया है। देवजी की प्रगाढ़ कवित्व-शक्ति और उनका रसियापन जातिबिलास, रसबिलास और प्रेमचन्द्रिका से ही पूर्णतया प्रकट होता है। काव्य-रसायन में यह बातें ऐसी अधिकता से नहीं हैं यद्यपि उसमें भी इन सब की झलक देख पड़ती है। काव्यरसायन में देवजी ने आचार्य्यता देखाई है। प्रेमचन्द्रिका के उदाहरणस्वरूप हम दो छन्द नीचे देते हैं:—

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं। कैसो नर लोक परलोक बर लोकन मैं लीन्हीं मैं अलीक लोक लीकन ते न्यारी हौं॥ तन जाउ मन जाउ देव गुरु जन जाउ प्रान किन जाउ टेक टरति न टारी हौं। वृन्दाबन वारी बनवारी की मुकुट वारी पीत पटवारी वहि मूरति पैं वारी हौं॥

बोरयो बंसु बिरद मैं बौरी भई बरजति मेरे बार बार बोर कोई पास पैठौ जनि। सिगरी सयानी तुम बिगरी अकेली हौंहीं गोहन मैं छांडौ मोंसों भौंहनि उमैठौ जनि॥ कुलटा कलंकिनी हौं कायर कुमति कूर काहू के न काम की निकाम याते ऐंठौ जनि। देव तहां बैठियत जहां वुद्धि बढ़ै हौंतौ बैठीहौं बिकल कोई मोहिं मिलि बैठौ जनि॥

(११) जातिबिलास—इस ग्रन्थ की बन्दना बड़ीही विशद है।

पांयनि नूपुर मंजु बजैं कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई।
सांवरे अंग लसै पट पीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मन्द हँसी मुख चन्द जुन्हाई।
जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर श्री ब्रज दूलह देव सहाई॥

इसमें सब से प्रथम जाति भेद कहा गया है, फिर अष्टांगवती नायका और तदनन्तर भारतवर्ष के समस्त देशों की बधुओं का वर्णन प्रारम्भ हुआ है। हमारी कापी में केरल बधू तक का वर्णन लिखा है परन्तु इसके आगे पुस्तक अपूर्ण है। यह ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है और हमको कहीं इसकी पूर्ण प्रति नहीं मिली। जान पड़ता है तीन चौथाई ग्रन्थ हमारी प्रति में नहीं है।

यह बड़े खेद का विषय है क्योंकि 'जातिविलास' देवजी के सर्वोत्तम ग्रंथों में से एक है। जहाँ तक यह ग्रंथ हमारे पास है वहाँ तक इसकी रचना रसविलास से बहुत कुछ मिलती है, यहाँ तक कि प्रति सैकड़े दोनों ग्रन्थों में नब्बे छन्द एक ही हैं। इस कारण रस-विलास के विषय जो कुछ लिखा जावे वही जातिविलास के विषय भी समझना चाहिए।

( १२ ) रसविलास—यह ग्रन्थ देवजी ने विजय-दशमी संवत् १७८३ वि० ( सन् १७२७ ई० ) को समाप्त किया। इसकी वन्दना का छन्द भी वही है जो जातिविलास का। यह बड़ा ही उत्तम छन्द है और इसको उत्तम ब्रजभाषा का उदाहरणस्वरूप मान सकते हैं। यह ग्रंथ राजा भोगीलाल को समर्पित हुआ है। देवजी ने भोगीलाल की जितनी प्रशंसा की है उतनी किसी आश्रयदाता की नहीं की। इस में प्रथम नागरियों के विभाग लिखे गये हैं और उनका बड़ाही उत्तम वर्णन है। जिस कामिनी में आठों अंग पूर्ण हों उसी को नायका कहते हैं। आठों अंग ये हैं:—योवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल, वैभव और भूषण। देवजी कहते हैं कि उन्होंने एक बार भावविलास रच कर नायका भेद कहा है और अब वही नायका भेद द्वितीय बार नये प्रकार से कहते हैं।

नायकाओं के आठ भेद होते हैं, यथाः—जाति, कर्म्म, गुण, देश, काल, वय, प्रकृति, सत्व। इनके भेदान्तर भी नीचे लिखे जाते हैं:—

जाति के चार, यथाः—पद्मिनी, चित्रिनी, संखिनी, हस्तिनी।

कर्म्म के तीन, यथाः—स्वकीया, परकीया, गणिका।

गुण के तीन, यथाः—सात्विक, राजस, तामस।

देश के अनन्त, यथाः—अन्तरबेद, मगध, कोशल, पटना, उड़ीसा, कलिंग, कामरूप, बंगाल, वृन्दावन, मालवा, अभीर, बरार, कोकनद, केरल, द्रविड़, तिलंग, करनाटक, सिन्ध, मरु, गुजरात, कुरु, करवीर, पर्वत, भूटान, कश्मीर, सौबीर आदि।

काल के दश, यथाः—स्वाधीनपतिका, कलहन्तरिता, अभिसारिका, बिप्रलब्धा, खण्डिता, उत्कण्ठिता, बासक सज्जा, प्रबत्स्यत्भर्तिका, प्रोषितपतिका, आगत्पतिका।

वय के तीन, यथाः—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा।

प्रकृति के तीन, यथाः—कफ, पित्त, वात।

सत्व के नौ, यथाः—सुर, किन्नर, यक्ष, नर, पिशाच, नाग, खर, कपि, काग।

इसके पीछे देवजी ने नायकाओं के संयोग और वियोग का वर्णन किया है और फिर नायक वर्णन करके ग्रंथ समाप्त कर दिया। यह ग्रंथ देवजी की प्रौढ़ अवस्था में बना है और इसी कारण यह प्रौढ़ कविता से भी भरा है। देश देशान्तरों में घूम घूम कर कवि ने इसे बनाया है। प्रेमचन्द्रिका की भाँति इसमें भी देवजी अपनी ही बनाई हुई रीति पर चले हैं और इसी कारण इसमें भी अद्भुत कवित्व छटा देख पड़ती है। नायका भेद नये प्रकार का अवश्य है परन्तु उसमें किसी नायका का वर्णन छूट नहीं सकता। गुप्ता अनुसैना आदि का वर्णन इसमें स्पष्ट रूप से नहीं आया है परन्तु वह सब परकीया नायका के अन्तर्गत समझना चाहिए। इस ग्रंथ की कविता किसी भी स्थान पर शिथिल नहीं हुई है, वरन् हर स्थान

पर एक ही भांति अव्वल दर्जे की होती चली गई है। इस ग्रंथ से उत्तम ग्रंथ भाषा-साहित्य में मिलना कठिन है। केवल इतना ही खेद है कि इसका विषय नायका भेद है। यदि किसी उत्तम विषय पर ऐसा उत्तम ग्रंथ बना होता तो इस ग्रंथ की गीता की भाँति घर घर पूजा होती। इसमें देवजी ने दिखा दिया है कि कवि की दृष्टि कितनी पैनी होती है और वह एक ही निगाह में कितना देख सकता है। जिस जाति की और जिस देश की नायका का कथन है उसमें उस जाति के कर्म्म एवं उस देश के स्वभावों और रीतियों का ऐसा सच्चा वर्णन है कि कुछ कहते नहीं बनता। इसमें देवजी ने जाति-भेद में उपर्युक्त चार प्रकार की नायकाओं के अतिरिक्त निम्न जातियों का भी पृथक पृथक वर्णन किया है:—देवी, पूजकिनि, द्वारपालिका, राजकुमारी, धाय, दूती, सखी, जौहरिनी, छीपिनि, पटइनि, सोनारिनि, गन्धिनि, तेलिनि, तमोलिनि, कांदुनि, बनिनि, कुम्हारिनि, दरजिनि, चूहरिनि, गणिका, ब्राह्मणी, रजपूतिनि, खत्रानी, वैश्या, कायस्थिनि, किरारिनि, नायनि, मालिनि, धोबिनि, अहिरिनि, काछिनि, कलारिनि, कहारिनि, लुनेरिनि, मुनितिय, व्याधतिय, भीलिनि, सैन्या, वेश्या, मुकेरिनि, बनजारिनि, जोगिनि, नटिनि, कंजरिनि, पथिकबधू और भठियारिनि। भठियारिनि का वर्णन केवल जातिविलास में है। इनमें से प्रत्येक जाति के वर्णन में यह भास जाता है कि यह अमुक जाति का वर्णन है। यही दशा देशों की है। उदाहरणार्थ जाति और देश में से दो दो छन्द नीचे लिखे जाते हैं:—

"देव देखावति कंचन सो तन औरनि को मनु तावै अगोनी।
सुन्दरि साँचे में दै भरि काढ़ी सी आपने हाथ गढ़ी बिधि सोनी॥
सोहति चूनरि स्याम किसोरी कि गोरी गुमान भरी गज गोनी।
कुन्दन लीक कसौटी में लेखी सि देखी सोनारि सुनारि सलोनी॥
एंडिन ऊपर घूमत घांघरो तैसियै सोहति साल्लू कि सारी।
हाथ हरी हरी राजै छरी अरु जूती चढ़ी पग फूँद फुँदारी॥
ओछे उरोज हरा घुँघुचीन के हांकति हांकहि बैल निहारी।
गातनहीं दिखराय बटोहिन बातनहीं बनिजै बनिजारी॥
तीनिहु लोक नचावति ऊक मैं मन्त्र के सूत अभूत गती है।
आपु महा गुनवन्त गोसांयनि पांयन पूजत प्रानपती है॥
पैनी चितौनि चलावति चेटक को न कियो बस जोगि जती है।
कामरू कामिनि काम कला जगमोहनि भामिनि भानमती है"॥

"जोबन के रंग भरी ईंगुर से अंगनि पैं एंडिन लौं आँगी छाजै छबिन की भीर की। उचके उचोहैं कुच झपे झलकन झीनी झिलमिली ओढ़नी किनारीदार चीर की॥ गुल गुले गोरे गोल कोमल कपोल सुधा बिन्दु बोल इन्दुमुखी नासिका ज्यों कीर की। देव दुति लहराति छूटे छहरान केस बोरी जैसे केसरि किसोरी कसमीर की"॥

(१३) काव्यरसायन—यह ग्रंथ देवजी के सब स्वतन्त्र ग्रंथों से गुरुतर और प्रौढ़तर है। जैसे केशवदास ने कविप्रिया में आचार्य्यता दिखाई है वैसे ही देवजी ने काव्यरसायन में गुरुता प्रदर्शित की है। काव्य के विषय सूक्ष्मतया इनका यह मत है:—

"ऊँच नीच तन कर्म्म बस चल्यो जात संसार।
रहत भव्य भगवन्त जस नव्य काव्य सुख सार॥
रहत न घर बर बाम धन तरुवर सरवर कूप।
जस सरीर जग में अमर भव्य काव्य रस रूप"॥

उत्तम काव्य का लक्षण देवजी ने यों दिया है:—

"सब्द सुमति मुख ते कढ़ै लै पद बचननि अर्थ।
छन्द भाव भूखन सरस सो कहि काव्य समर्थ"॥

पहले देवजी ने पदार्थ-निर्णय किया है। ये महाराज अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के अतिरिक्त एक चौथी शक्ति भी मानते हैं, जिसे ये तात्पर्य्य कहते हैं। शुद्ध लक्षणा व्यंजना आदि वर्णन करके इस महाकवि ने इनके संकीर्ण भेद कहे हैं। इन भेदों में इस कवि ने अभिधा में अभिधा, अभिधा में लक्षणा, अभिधा में व्यंजना, लक्षणा में लक्षणा, लक्षणा में व्यंजना, लक्षणा में अभिधा, व्यंजना में व्यंजना, व्यंजना में अभिधा, व्यंजना में लक्षणा, अभिधा में तात्पर्य्य, लक्षणा में तात्पर्य्य और व्यंजना में तात्पर्य्य वर्णित किये हैं। इस ग्रंथ में देवजी ने पढ़ने वालों का इस प्रकार बड़ा उपकार कर दिया है कि प्रत्येक उदाहरण के पीछे दोहे में उसका प्रयोजन भी प्रकट कर दिया है।

पदार्थ-निर्णय के पीछे देवजी ने रस-निर्णय किया है। शब्द, काव्य और रस में इन्होंने निम्न सम्बन्ध दिखाया है:—

"काव्य सार सब्दार्थ को रसु तेहि काव्य सुसार।
सो रस बरसत भाव बस अलङ्कार अधिकार॥
ताते काव्य सु मुख्य रस जामें दरसत भाव।
अलङ्कार सब्दार्थ के छन्द अनेक सुभाव"॥

देवजी के मतानुसार यदि कविता को वृक्ष मानें तो रस उस के फलों का रस होगा।

रस के स्वरूप को देवजी ने निम्न छप्पै द्वारा ख़ूब समझाया है :—

रस अंकुर थाई बिभाव रस के उपजावन।
रस अनुभव अनुभाव सुसात्विकरस झलकावन॥
छिन छिन नाना रूप रसनि संचारी उझकै।
पूरन रस संयोग बिरह रस रंग समुझ कै॥
ये होत नायकादिकनि में इत्यादिक रस भाव षट।
उपजावत शृंगारादि रस गावत नाचत सुकवि नट॥

इसी को सूक्ष्मतया कवि ने इस प्रकार कहा है:—

जो बिभाव अनुभाव अरु संचारिन करि होय।
थिति की पूरन बासना सुकवि कहत रस सोय॥

देवजी के मतानुसार रसों में शृंगार, बीर, और शान्ति मुख्य हैं और शेष छः रसों में ( हास्य, भयानक, रौद्र, करुणा, अद्भुत, बीभत्स ) दो दो क्रमानुसार इनके संगी हैं। फिर बीर और शान्ति अपने साथियों समेत शृंगार के संगी होते हैं, अतः शृंगार रसही रसराज है। रसोंहीं से मिलता हुआ रस-मित्र और रस-शत्रु आदि का वर्णन है और फिर पात्र-विचार हुआ है। इसके पीछे देवजी ने रस-रीति कही है। तदनन्तर शब्दालंकार का वर्णन किया गया है। इस के विषय इनका यह मत था:—

अलंकार जे सब्द के ते कहि काव्य सुचित्र।
अर्थ समर्थ न पाइयत अच्छर बरन बिचित्र॥

अधम काव्य ताते कहत कवि प्राचीन नवीन।
सुन्दर छन्द अमन्द रस होत प्रसन्न प्रवीन॥
जिनहिँ न अनुभव अरथ को भावत नहिँ रस भोग।
चित्र कहत तिन हेत कछु भिन्न भिन्न रुचि लोग॥
सरस वाक्य पद अरथ तजि सब्द चित्र समुहात।
दधि घृत मधु पायस तजत बायस चाम चबात॥
मृतक काव्य बिनु अर्थ के कठिन अर्थ के प्रेत।
सरस भाव रस काव्य सुनि उपजत हरि सों हेत॥

देवजी ने चित्र काव्य की इतनी निन्दा करके फिर भी कई प्रकार की उत्तम चित्र कविता की है। इसके पीछे इन्होंने अर्थालंकार कहे हैं। इन में इन्होंने सब अलंकारों का वर्णन न करके चालीस मुख्य और तीस गौण अलंकारों का कथन किया है और उतने पर भी सन्तुष्ट न हो कर इन्होंने फिर कहा है कि—

अलंकार में मुख्य है उपमा और सुभाव।
सकल अलंकारन विषे परसत प्रकट प्रभाव॥

देवजी ने मुख्यता समझाने के कारण बहुत प्रकार की उपमायें कही हैं। शेष अलंकारों को देवजी ने थोड़े में इस प्रकार कह दिया कि एक एक छन्द में चार चार पाँच पाँच अलंकार भर दिये। दशवें अध्याय से इन्होंने छन्द वर्णन प्रारम्भ किया है। छन्द दो प्रकार का होता है, एक मात्रावृत्ति और दूसरा वर्णवृत्ति। लघु गुरु मात्राओं का विचार करके देवजी ने गणागण का वर्णन किया है। इनके गद्य का उदाहरण बड़ा ही विचित्र है। गद्य तीन प्रकार

का होता है अर्थात् वृत्ति, चूर्ण, और उत्कलिका। देवजी ने छन्दों के लक्षण और उदाहरण प्रायः एकही साथ दिखा दिये हैं, अर्थात् जिस छन्द का लक्षण कहना हुआ उसी छन्द में उसका लक्षण कह दिया। इस प्रकार एकही साथ लक्षण और उदाहरण दोनों ज्ञात हो गये। संस्कृत के कुछ कवियों ने इसी प्रकार छन्दों के उदाहरण दिखलाये हैं। देवजी ने प्राचीन प्रकार के आठों सवैयाओं के लक्षण और नाम एक ही छन्द द्वारा दिखा दिये हैं; वह छन्द यों है:—

सैल भगा, बसुभा, मुनिभागग, सात भगोल, लसै लभगा।
लै मुनि भागग, ही लल सत्त भगी, लल सात भगंग पगा॥
पी मदिरा, ब्रजनारि किरीटि, सुमालति, चित्र पदा भ्रमगा।
मल्लिक, माधवि, दुर्मिलिका, कमला सु सवैयक शुक्र मगा॥

इस सवैया के समझने के प्रथम भगण का रूप जान लेना आवश्यक है। भगण तीन अक्षरों का होता है जिसमें प्रथम गुरु और अन्त के दोनों लघु होते हैं।

मदिरा = सैल भगा = सात भगण और एक गुरु।

किरीटी = बसुभा = आठ भगण।

मालती = मुनिभागग = सात भगण और दो गुरु।

चित्र पदा = सात भगोल = सात भगण और एक लघु।

मल्लिका = लसै लभगा = एक लघु, सात भगण और एक गुरु।

माधवी = लै मुनिभागग = एक लघु, सात भगण और दो गुरु।

दुर्मिलिका = लल सत्तभगी = दो लघु, सात भगण और एक गुरु।

कमला = लल सातभगंग = दो लघु, सात भगण और दो गुरु।

इनके अतिरिक्त मञ्जरी, ललिता, सुधा, और अलसा नामक चार प्रकार के नवीन मत के सवैया हैं।

मञ्जरी = लाष्टभगल = एक लघु, आठ भगण, एक गुरु, और एक लघु।

ललिता = ललाष्टभ = दो लघु आठ भगण।

सुधा = लल मुनिभगल = दो लघु, सात भगण, एक गुरु, और एक लघु।

अलसा = सैलभर = सात भगण और एक रगण।

रगण के तीन अक्षरों में आदि और अन्त गुरु और मध्य लघु होते हैं।

दंडक नियत गण वर्ण और अनियत गण वर्ण के होते हैं। अनियत गण वर्ण को घनाक्षरी कहते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं जिन में से किसी में तीस, किसी में इकतीस, किसी में बत्तीस, और किसी में तेंतीस वर्ण होते हैं।

देवजी ने सात प्रकार के गाहा दोहा कहे हैं। मेरु, मर्कटी, पताका आदि के विषय इनका यह मत है:—

मेरु, पताका, मर्कटी, नष्ट, और उद्दिष्ट।
कौतुक हित प्रस्तार हू विस्तारत हैं सृष्ट॥
मानुष भाषा मुख्य रस, भाव, नायका, छन्द।
अलंकार पंचांग ये कहत सुनत आनन्द॥

अपने काव्यरसायन ग्रन्थ के विषय निम्न लिखित दोहे देवजी ने लिखे हैं:—

सत्य रसायन कविन को श्री राधा हरि सेव ।
जहाँ रसालंकार सुख सच्यो रच्यो कवि देव ॥
भाषा प्राकृत संसकृत देखि महा कवि पन्थु ।
देवदत्त कवि रस रच्यो काव्य रसायन ग्रन्थु ॥

देवजी ने वास्तविक रीति ग्रन्थ केवल काव्यरसायन और भाव-विलास लिखे हैं और इन में भी काव्यरसायन में इन्होंने अपनी आचार्य्यता दिखाई है। इसमें पदार्थ-निर्णय, रस, अलंकार और पिंगल का वर्णन है। रस का वर्णन देवजी ने बहुत ही उत्तम किया है। यह ग्रन्थ देवजी के सब स्वतन्त्र ग्रन्थों से बड़ा है और सम्भवतः सब से पीछे बना भी है, केवल सुखसागरतरंगसंग्रह और नीति और वैराग्य की कविता इसके पीछे बनी होगी। कविता की उत्तमता में भी यह ग्रन्थ प्रेमचन्द्रिका आदि से उत्तम है और प्रत्येक छन्द में देवजी की अलौकिक छटा देख पड़ती है। दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ भी अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है। भाषारसिकों को उचित है कि कम से कम प्रेमचन्द्रिका और काव्यरसायन तो अवश्यही मुद्रित करावैं। यह ग्रन्थ भी देवजी के उत्तमोत्तम ग्रन्थों में से एक है और इस में भी इनकी अनुमतियों का आविर्भाव हुआ है।

(१४) सुखसागरतरंग—इस ग्रन्थ की बन्दना में भी देवजी ने शृंगार रस नहीं छोड़ाः—

माया देवी नायका नायक पूरुष आपु ।
सबै दम्पतिन मैं प्रकट देव करै तेहि जापु ॥

इसको देवजी ने पिहानी के अकबर अलीख़ां के वास्ते बनाया था। इससे विदित होता है कि उस समय मुसल्मान भी भाषा-

साहित्य को ख़ूब समझते और उसका आदर करते थे। स्वयं देवजी ऐसे महा कवि ने लिखा है कि अकबर अली रस-पन्थ जानते थे; इससे विदित होता है कि भाषा-साहित्य पर अकबर-अली का प्रगाढ़ अधिकार था। इसी प्रकार बादशाह औरंगज़ेब के के पुत्र आज़मशाह ने भावविलास और अष्टयाम सुनकर उन ग्रन्थों की प्रशंसा की थी। देवजी ने प्रथम दम्पति की बन्दना करके तब देवियों की स्तुति की है और किसी देवता की बन्दना नहीं की। फिर छत्तीसवें छन्द में एक प्रकार से ग्रन्थ के विषय को वर्णन करके देवजी ने सवैयाओं और दंडकों में बहुत उत्तम प्रकार से सूक्ष्मतया नायका-भेद कहा है। इसके पीछे गौरी, जानकी, रुक्मिणी, और राधा का सौभाग्य कह के इन्होंने पंचमी महोत्सव कहा है। यह सब वर्णन बहुत ही उत्तम है। बसन्त ऋतु के वर्णन में भी इन्हों ने होली का आगे चल कर बहुत उत्तम वर्णन किया है। पंचमी महोत्सव के पीछे देवजी ने शृंगार का वर्णन किया है। दूसरे अध्याय को कवि ने प्रत्यक्ष दर्शन से प्रारम्भ किया है। इसके पीछे शृंगार रस का सूक्ष्मतया सांगोपांग कथन हुआ है। तदनन्तर देव ने परकीया के बहुत से उत्तम छन्द कह कर षट ऋतु वर्णन किया है। तब अष्टयाम कह कर इन्होंने नख शिख कहा है। इसमें उदाहरणार्थ नेत्र-वर्णन का एक छन्द नीचे लिखा जाता है—

'लाज की निगड़ गड़दार अड़दार चहूँ चौंकि चितवनि चरखीन चमकारे हैं। बरुनी अरुन लीक पलक झलक फूल झूमत सघन घन घूमत घुमारे हैं॥ रंजित रजो गुन शृँगार पुंज कुंजरत अंजन

सोहन मन मोहन दतारे हैं। देव दुख मोचन सकोच न सकत चलि लोचन अचल ये मतंग मतवारे हैं' ॥

नख शिख कह के इस कवि ने नायकों की जाति कही है और फिर नायकाओं के आठों अंगों का अच्छा वर्णन किया है। इसके पीछे देवजी ने बड़ा लम्बा चौड़ा नायका-भेद कहा है। इसी के अन्तर्गत अंश भेद भी है। अन्त के बारहवें अध्याय में नायक और नायक सखाओं का वर्णन किया गया है। इसी अन्तिम अध्याय को इन्होंने एक उत्तम मान-लीला के साथ समाप्त किया है। इस लीला में उन्तीस छन्द हैं और वे सब बहुत ही उत्तम हैं। इसका पहिला ही छन्द उदाहरणार्थ नीचे लिखा जाता है—

प्यारी हमारी सों आवो इतै! कहि देव कुप्यारी ह्वै कैसेक ऐये?।
प्यारी कहा जनि मोसों अहो कहि प्यारी प्यों प्यार की प्यारी बुलैये।
कै वह प्यार कि येतो कुप्यार! अन्यारी ह्वै बैठी सो बात बनैये।
प्यार पराये सों कौन परेखो गरे परि कौलगि प्यारी कहैये॥

इस ग्रन्थ में देवजी ने मुख्यशः नायका भेद कहा है। इसको प्रायः लोग देवजी की कविता का संग्रह कहते हैं और किसी अंश में यह कथन यथार्थ भी है, क्योंकि इसमें जाति-भेद, अष्टयाम, भाव-भेद आदि के विषय आ गये हैं, परन्तु यह भी कहना पड़ता है कि इस ग्रन्थ में न जाने कितने ऐसे वर्णन हैं जो देवजी के अन्य प्रचलित ग्रन्थों में नहीं पाये जाते। शब्दरसायन का विषय इस ग्रन्थ में नहीं आया और न भाव भेद ही पूर्ण रूप से कहा गया है। अलंकारों से भी इस ग्रन्थ से कोई वास्ता नहीं है। मोटी रीति से

इसे नायका भेद का ग्रन्थ कह सकते हैं। भाषा में नायका-भेद का इतना-सांगोपांग और सर्वांग सुन्दर ग्रन्थ कोई नहीं है। रसविलास में नायका भेद आठ भेदों में वर्णित है परन्तु इसमें उसके दस प्रधान भेद माने गये हैं। ये शेष दो भेद रसविलास में मुख्य भेद करके नहीं माने गये हैं। हम तो इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ ही मानते क्योंकि यदि अन्य ग्रन्थों के छन्दों को कहिये तो देवजी का ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं है जिसमें अन्य ग्रन्थों के छन्द न भरे पड़े हों परन्तु देवजी ने स्वयं इसे संग्रह कहा है। इसमें कुल मिलाकर ८५६ छन्द हैं परन्तु इसकी कविता किसी स्थान पर शिथिल नहीं हुई है। भाषा-साहित्य में तुलसीकृत रामायण, सतसई और सूरसागर को छोड़ कर ऐसा उत्तम कोई भी ग्रन्थ नहीं है। इसमें प्रत्येक विषय का बड़ा ही चित्ताकर्षक वर्णन किया गया है। प्रायः देखा गया है कि यदि उत्तम कवियों तक के ग्रन्थ पढ़िये तो वे भी हर स्थान पर अच्छे नहीं लगते और अधिक स्थानों पर उनकी कविता शिथिल पड़ जाती है परन्तु देवजी के किसी ग्रन्थ में किसी स्थान पर ऐसा नहीं हुआ है। सुखसागरतरंग ऐसा बड़ा ग्रन्थ भी किसी स्थान पर शिथिल नहीं हुआ है। देवजी का यह भी एक बड़ा ही उत्तम ग्रन्थ है।

( १४ ) देवमायाप्रपंचनाटक में रूपक की भाँति सद्धर्म और माया का युद्ध वर्णन किया गया है। यह पूर्ण नाटक नहीं है यद्यपि नाटकों की भाँति इस में नट, नटी, नेपथ्य, प्रवेश, प्रस्थान आदि का वर्णन है। इसे अर्द्ध नाटक सा कह सकते हैं। इसमें छः अंक हैं। प्रथम अंक में सद्धर्म के पक्षियों का दिग्दर्शन और कलि का प्रवेश

वर्णित है। द्वितीयांक में कलि के पक्षियों का स्वरूप और उनके विचार कह कर कवि ने जनश्रुति और बुद्धि का सत्सङ्गति के यहाँ जाना कहा है। तृतीयांक में योग-मुक्ति, सत्क्रिया, सत्यता, श्रद्धा, भक्ति, शुद्धि, स्मृति, तत्त्व-चिन्ता, शान्ति, करुणा, तुष्टि, और क्षमा भी सत्सङ्गति के यहाँ जाती हैं और इनके कुछ वर्णनों के पीछे इनमें से प्रत्येक अपने अपने मतानुसार अनुमति देती है। इसके पीछे जनश्रुति शत्रुओं का पता लगाने को उनके यहाँ छद्म वेष में भेजी जाती है। यह अंक बड़ा मनोरंजक है और प्रत्येक देवी का अनुमति-विषयक छन्द बहुत उत्तम है। चतुर्थांक में जनश्रुति योगिनी के वेष में शत्रु नगर में जाती है और नगर तथा उसकी सब बातों का निरीक्षण करती है। यह अंक साधारणतया अच्छा है। पाँचवें अंक में जनश्रुति सहजानन्द, इच्छानन्द, आत्मानन्द, विषयानन्द, स्पर्शानन्द, भोगानन्द, और संभोगानन्द के उपदेश सुनती, एवं धूर्त्तराज द्वारा तन्त्र, जन्त्र, इन्द्रजाल, तथा वाग्जाल का माहात्म्य जानती है। अन्त में कई परमोत्तम छन्दों द्वारा माया की महिमा कही गई है। यह अंक बड़ा ही उत्तम, रुचिकर, और हास्य रस से परिपूर्ण है। इसमें इच्छानन्द के सिद्धान्त अँगरेज़ी के यपिक्योरियन सिद्धान्त से बिल्कुल मिल जाते हैं। छठ अंक में मनराज का अभिषेक हुआ और फिर युद्ध में माया की सेना सद्धर्म दल से बिल्कुल पराजित होगई और पुरुष की मुक्ति होगई। युद्ध-वर्णन उत्तम नहीं है। ग्रन्थ कुल मिलाकर उत्तम है परन्तु फिर भी इनके उत्तम ग्रन्थों की बराबरी यह नहीं कर सकता।

उदाहरणः—

मूढ़ कहै मरि कै फिरि पाइये ह्यां जु लुटाइये भौन भरे को।
सो खल खोय खिस्यात खरे अवतारु सुन्यो कहुँ छार परे को॥
जीवत तो व्रत भूख सुखैात सरीर महा सुर रूख हरे को।
ऐसो असाधु असाधुन की बुधि साधत देत सराध मरे को॥

देवजी के जिन ग्रंथों पर ऊपर समालोचना लिखी गई है उन सब का समालोचना लिखते समय हमने देखा है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त पण्डित युगलकिशोर मिश्र कहते हैं कि निम्न लिखित देव कृत ग्रन्थ उन्होंने स्वयं देखे हैं परन्तु उनकी प्रति वे प्राप्त नहीं कर सके।

(१६) वृक्ष-विलास—यह एक छोटा सा ग्रंथ है और इसमें देवजी ने वृक्षों का बड़ा उत्तम वर्णन किया है। इसमें अन्योक्तियाँ बहुत हैं।

(१७) पावसविलास—इसमें पावस ऋतु के बड़े उत्तम उत्तम छन्द हैं। यह आकार में भावविलास के बराबर है। यह भी एक बड़ाही उत्तम ग्रन्थ है।

(१८) ब्रह्मदर्शनपचीसी—इसमें ईश्वर-सम्बन्धी पचीस उत्तम छन्द हैं।

(१९) तत्त्वदर्शनपचीसी—इसमें भी सांख्य-सम्बन्धी पचीस अच्छे छन्द हैं।

(२०) आत्मदर्शनपचीसी—इसमें वेदान्त-सम्बन्धी पच्चीस छन्द हैं। इसका एक छन्द पण्डित युगलकिशोरजी को याद है। वह नीचे लिखा जाता है।

बागो बनो जरपोस को ता मधि ओस को जार बुन्यो मकरी ने।
पानी में पाहन जात चलो चढ़ि कागद की छतुरी कर लीने॥
काँख में बाँधि कै पाँख पतंग के देव सो संग पतंग को कीने।
मोम के मन्दिर नैनू के आसन बैठो हुतासन आसन दीने॥

(२१) जगदर्शनपचीसी—इसमें बड़ी उत्तम रीति पर जगत् की असारता का वर्णन किया गया है। इसके भी दो छन्द जो उन को याद हैं, नीचे लिखे जाते हैं।

काम परयो दुलही अरु दूलह चाकर द्वार के द्वारेई छूटे।
माया के बाजने बाजि गये अरु भात खवा परभात ही बूटे॥
आतस बाजी गई छिन में छुटि सूझत नाहिँ अजौं अँखि फूटे।
देव देखैयन दाग बने रहे बाग बने ते बरोठहि लूटे॥
आवन आयु को दौस अथौन भगे रवि ज्यों अँधियारियै ऐहै।
दाम खरे दै खरीद करो गुरु मोह कि गोनी न फेरि बिकैहै॥
देव छितीस कि छाप बिना जमराज जगाती महा दुख दैहै।
जान उठी पुर देह कि पैठ अरे बनियै बनियै नहिँ रैहै॥

इन्हीं चारों पचीसियों को मिला कर वैराग्यशतक बनता है।

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने देवजी कृत ग्यारह ग्रन्थों के नाम लिखे हैं जिनमें से निम्न लिखित चार ग्रंथों के अतिरिक्त शेष सात का विवरण ऊपर किया जा चुका है।

रसानन्दलहरी, प्रेम-दीपिका, सुमिल-विनोद और राधिका-विलास।

इन चार नये ग्रंथों के अतिरिक्त शिवसिंहसरोज में निम्न सात ऊपर लिखे हुए ग्रंथों के नाम मिलते हैं:—प्रेमतरंग, भावविलास,

रसविलास, सुजानविनोद, काव्यरसायन, अष्टयाम, और देवमाया-प्रपंचनाटक। हमारे पूज्य पिता पण्डित बालदत्त मिश्र ने देवजी के सुखसागरतरङ्ग को प्रकाशित कराया था। उसकी भूमिका में उन्होंने देवजी के नीतिशतक नामक ग्रन्थ का नाम लिखा है। हमने यह ग्रन्थ नहीं देखा है और न यह हमारे पुस्तकालय में है परन्तु उन्होंने इसे कहीं देखा था। पता न ज्ञात होने से हम उसे न देख सके।

इस वर्णन से विदित होता है कि अभी तक हमें इनके २६ ग्रंथों के नाम ज्ञात हुए हैं। यदि सुन्दरीसिन्दूर को ग्रन्थ न मानिये तो २५ ग्रन्थों के नाम ऊपर मिलेंगे। खोज में नख-शिख नामक इनका एक और ग्रन्थ लिखा है।

इस महाकवि के ग्रन्थ अमूल्य रत्न हैं, अतः समस्त भाषा रसिकों को उचित है कि जो जो ग्रन्थ जिस जिस व्यक्ति के पास हों उनके विषय समाचार-पत्रों में सूचना दे देवें या नागरी-प्रचारिणी सभा काशी को लिख भेजें, और यदि इस महाकवि के सब ग्रन्थ प्रकाशित न हो सकें तो भाषारसिकों को उचित है कि अन्य रसिकों को उनके पास की हस्त-लिपियाँ प्राप्त करने में पूरी सहायता देवें।

## देवजी की कविता का परिचय।

(१) देवजी ने घनाक्षरी सवैयाओं से अधिक कही हैं और उत्तमता में भी वे सवैयाओं से न्यून नहीं हैं। इनकी कविता में पृष्ठ के पृष्ठ पढ़ते चले जाइये परन्तु कहीं कोई बुरा छन्द न पाइयेगा।

देव ने कई ग्रन्थों में एक ही छन्द दो दो तीन तीन बार रख दिये हैं और कहीं कहीं एक ही ग्रन्थ में वही छन्द दोहरा कर रख दिया है, यहाँ तक कि यदि किसी मनुष्य ने इनके कई ग्रन्थ देखे हों तो उसको इनके किसी नये ग्रन्थ के देखने में बहुत कम नये छन्द मिलेंगे। इसका कारण एक यह भी है कि इनके छन्दों में कितनेही पृथक् पृथक् भाव झलकते हैं अतः ये महाराज वही छन्द विविधि काव्यांगों के उदाहरणों में रख देते हैं और वह पूर्णतया बैठ भी जाता है।

इनकी कविता में अजायब घर की भाँति उत्तम उत्तम छन्द देखते चले जाइये परन्तु उसमें बिहारी की भाँति उतने चोज़ नहीं मिलते। परन्तु इसके साथ ही साथ इनके साहित्य में अभूतपूर्व कोमलता, रसिकता, सुन्दरता आदि गुण कूट कूट कर भरे हैं। ऐसे उत्तम छन्द किसी अन्य कविता में स्वप्न में भी नहीं देखे जाते। इनके उत्तम छन्दों के बराबर किसी विद्या में कोई छन्द पाना कठिन है। देवजी ने आभूषण मिले रूप का वर्णन अधिक किया है और ख़ाली रूप का कम। इनके मध्या और प्रौढ़ा के भेद उतने बढ़िया नहीं आते जितने मुग्धा के।

इनकी कविता में औरों से चोरी बहुत कम मिलती है। अधिक निर्लज्जता देवजी में कम पाई जाती है परन्तु 'सुखसागरतरङ्ग' के छन्द नम्बर ७७४ में यह पूर्ण रूप से विराजमान है। एकाध स्थान पर इन्होंने गुरु अक्षर से लघु का काम ले लिया है। सुखसागर-तरङ्ग का छन्द नम्बर ४०५ इसका उदाहरण है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है देव महाराज देश देश घूमे हैं और ये पूर्ण रसिक तो थे ही, अतः ये जहाँ गये हैं वहाँ की स्त्रियों को इन्होंने बहुत ध्यान-पूर्वक देखा है। इन्होंने प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश की स्त्रियों का उन्हीं के अनुसार बड़ा ही सच्चा वर्णन किया है। इनका देश वर्णन देख कर कहीं कहीं यह सन्देह अवश्य उठता है कि इनका चालचलन बहुत ठीक न था।

देवजी के तुकान्तों में दो एक स्थानों पर निरर्थक पद से भी बोध होते हैं, यथा—चाडिली, रुंज इत्यादि। इन्होंने प्रेमचन्द्रिका के आदि में कहा है कि कवि को प्रेम के ग्रंथ बनाने चाहिए और पुरानी कथाओं में दिन वृथाही बीत गये।

(२ क) देवजी की भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है। भाषा-साहित्य में दो कवियों की भाषा सर्वोत्तम है, एक तो देवजी की और दूसरी मतिराम की। इन दोनों कवियों के बराबर उत्तम भाषा कोई भी कवि नहीं लिख सका है। भाषा की कोमलता और सरसता में ये दोनों कवि अन्य कवियों से बहुत बढ़े चढ़े हैं। इनकी कविता में श्रुति कटु शब्द ढूँढ़े से भी नहीं मिलते और मिलित वर्णों का प्रयोग इन महाकवियों ने जितना कम किया है उतना कम कोई भी कवि नहीं कर सका है। इन दोनों कवियों की भाषा टकसाली होती है, परन्तु इनमें भी देवजी की भाषा अद्वितीय है। इसका कारण यह है कि देवजी की कविता में भाषा-सम्बन्धी निम्न गुण मतिराम की कविता से कहीं बढ़ चढ़ कर हैं:—

(२ ख) इनकी भाषा में अनुप्रास और यमक भरे पड़े हैं, परन्तु ये गुण लाने के वास्ते इनको निरर्थक पदों का व्योहार नहीं

करना पड़ा है और न कहीं अपना भाव बिगाड़ना पड़ा है। ऐसे उत्तम भाव लाकर भी अनुप्रास की सर्वोत्कृष्ट प्रधानता रखने में केवल देवजी कृतकार्य्य हुए हैं। किसी कवि की कविता में इतने अनुप्रास और यमक नहीं हैं परन्तु तो भी किसी कवि में इतने उत्तम भाव भी नहीं पाये जाते। उदाहरणार्थ केवल एक छन्द नीचे लिखा जाता है।

"आई बरसाने ते बोलाय वृषभानु सुता निरखि प्रभानि प्रभा भानु की अथै गई। चक चकवान के चकाये चक चोटन सों चौंकत चकोर चक चौंधा सी चकै गई॥ देव नन्द नन्दन के नैनन अनन्द-मयी नन्द जू के मन्दिरन चन्दमयी छै गई। कंजन कलिनमयी, कुंजन नलिनमयी, गोकुल की गलिन अलिनमयी कै गई"॥

(२ ग) देवजी ने तुकान्त भी निराले ही रक्खे हैं। अन्य कवियों ने ऐसे विलक्षण तुकान्त नहीं रक्खे। इस महाकवि का भाषा पर इतना प्रगाढ़ अधिकार था कि इसे तुकान्त खोजने में कुछ भी संकट नहीं पड़ता था, अतः यह हर प्रकार के टेढ़े बेढ़े तुकान्त रख कर उन्हें निभा ले जाता था। इसके उदाहरण में सुखसागरतरंग के छन्द नम्बर २५, ३६९, ६४७ और ६६३ द्रष्टव्य हैं।

(२ घ) इन्होंने कहीं कहीं प्रचलित लोकोक्तियों को बहुत उत्तम प्रकार से अपनी कविता में रक्खा है। यथा—

प्राणपति परमेश्वर सों साझो कहो कौन सों?।

गरे परि कौलगि प्यारी कहैये।

काल्हि के जोगी कलींदे को खप्परु।

मनु मानिका दै हरि हीरा गाँठि बांध्यो हम ताको तुम बनिज बतावत हौ कौड़ी को।

चञ्चल नैनि चमार की जाई चितौनि मैं चाम के दाम चलावै।
सूझत साँझ भियान कछू सु दिया न बरै कहूँ कारे के आगे॥

(२ ङ) देवजी ने अपनी कविता में बड़े बड़े विशेषण रक्खे हैं यहां तक कि कहीं कहीं एक एक पद तक के विशेषण लिखे गये हैं।

नूपुर संयुत मंजु मनोहर जावक रंजित कंज से पायन।
बीच जरतारन की हीरन के हारन की जगमगी जोतिन की मोतिन की झालरैं।

(२ च) कुल मिला कर जैसी सोहावनी भाषा यह महाकवि लिखने में समर्थ हुआ है उसकी अर्द्धांश सोहावनी भी कोई अन्य कवि नहीं लिख सका है। भाषा की उत्तमता इनका सर्वोत्कृष्ट गुण है और भाषा को देखते हुए इस कवि को किसी अन्य कवि से न्यून कहना अन्याय समझ पड़ता है। देवजी की उत्तम भाषा का उदाहरण स्वरूप हम केवल एक ही छन्द नीचे लिखते हैं, परन्तु इस विषय में निम्न छन्द भी विशेषतया द्रष्टव्य हैं:—सुखसागरतरंग छन्द नम्बर १५१, ३०९, ४८१, ५५४, ७२७, सुन्दरीसिन्दूर छन्द नम्बर ५९ इत्यादि।

मंजु बजै गुजरी कर कंजन पायलै पाय जराय लपेटी।
नासिका मैं झमकैं मुकुता श्रुतिहू झुमकी मनि कुंडल जेटी॥
लालन माल जरी पट लाल सखी सँग बाल बधू कुअँरेटी।
सेवक देव सबै सुख साजति राजति है गिरिराज कि बेटी॥

( ३ क ) जितने उत्तमोत्तम छन्द देवजी की कविता में हैं उतने किसी की कविता में नहीं पाये जाते। यदि छन्दों की उत्तमता के हिसाब से विचार करें तो देवजी ही सर्वोत्तम कवि ठहरेंगे। उदाहरणार्थ सुखसागरतरंग के छन्द नम्बर १७, ३४, ९९, १०३, ११४, १६३, १८०, २११, ३०९, ३७६, ४५३, ४९७, ५८२, ६६६, ७९०, देखिये। अन्य उत्तम ग्रन्थों के छन्द इस कारण प्रायः उदाहरणों में नहीं लिखे गये कि वे ग्रन्थ मुद्रित नहीं हैं सो उनके नम्बर लिखने और देखने में कठिनाई होगी।

( ३ ख ) देवजी ने प्राकृतिक वर्णन भी बहुत ही उत्तम किये हैं। इनके छन्दों से विदित होता है कि ये महाशय प्रकृति के अच्छे निरीक्षक थे, परन्तु सिवा मानुषीय प्रकृति के वास्तविक प्रकृति की ओर ये महाशय निगाह नहीं उठाते थे। मानुषीय प्रकृति के वर्णन में इन्होंने बेशक क़लम तोड़ दी है। मानुषी प्रकृति के इनके निम्न छन्द उदाहरण हैं:—सुखसागरतरङ्ग छन्द नम्बर ८६, १८१, १८२, १४८, ३४१, ३७५, ४४८, ४९२, ५३३, ५४२, ६३०, ७०२, ७०८, ७१५, ७४९। सुन्दरीसिन्दूर छन्द नम्बर १७, २६, ३१, ७५। रसविलास में जाति और देशों का प्रायः समस्त वर्णन। इनमें देवजी ने दिखा दिया है कि कवि कितना देखता है। वास्तविक प्रकृति और मानुषीय प्रकृति के उदाहरणस्वरूप दो छन्द नीचे उद्धृत भी किये जाते हैं।

"सुनि कै धुनि चातक मोरन की चहुँ ओरन कोकिल कूकन सों।
अनुराग भरे बन बागन में हरि रागत राग अचूकन सों॥

कवि देव घटा उनई जुनई बन भूमि भई दल दूकन सों।
रँग राती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर के झूकन सों॥
गूजरी ऊजरे जोबन को कछु मोल कहो दधि को तब दैहौं।
देव अहो इतराहु न होइ नहीं मृदु बोल न मोल विकैहौ॥
मोल कहा अनमोल विकाहुगी बेचि जबै अधरा रसु लैहौं।
कैसो कही फिरि तो कहौ कान्ह अभै कछू हौंहु कका किसौं कैहौं"॥

( ३ ग ) देवजी ने नायकाओं का वर्णन ऐसा उत्तम किया है कि पूरी तसवीर खींच दी है। ऐसी उत्तम तसवीरें खींचने में बहुत कम कवि समर्थ हुए हैं बरन् यह कहना चाहिए कि ऐसी उत्तम तसवीरें कोई भी कवि नहीं खींच सका है। इनकी कविता से विदित होता है कि कवि व चित्रकार में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसी तसवीरें निम्न छन्दों में मिलेंगीः—सुखसागरतरङ्ग छन्द नम्बर १६७, २८९, २६२ ४१८। उदाहरणार्थ एक छन्द नीचे लिखा जाता है।

"आवो ओट रावटी झरोखा झांकि देखो देव देखिबे को दाँव फेरि दूजे द्योस नाहिनै। लहलहे अंग रंग महल के अंगन में ठाढ़ी वह बाल लाल पगन उपाहने॥ लोने मुख लचनि नचनि नैन कोरन की उरति न और ठौर सुरति सराहने। बाम कर बार हार अंचर सम्हारै करै कैयो फन्द कन्दुक उछारै कर दाहिने"॥

( ३ घ ) देवजी ने क़समें भी अच्छी खिलाई हैं।

"दैहौं मिलाय तुम्हें हौं तिहारियै आनि करौं वृषभानु लली सौं।
बाँभन की सौं बबा कि सौं मोहन मोहिँ गऊ किसौं गोरस की सौं"॥

( ३ ङ ) देवजी ने टेढ़ी रचना भी अच्छी की है, यथाः—

कूबरी सी अति सूधी बधू बरु पायो भलो घनस्याम सो सूधो ॥
गोकुल गाँव के लोग गरीब हैं बासु बराबरि हीं को यहाँ तो ।
बैठि रहौ सपनेहू सुन्यो कहूँ राजन सों परजान सों नातो ॥

( ४ क ) देवजी ने ऊँचे ख़यालात बहुत ही अधिक बाँधे हैं। ऐसे ऐसे ऊँचे विचार सब कवियों में नहीं पाये जाते।

"आरसी से अम्बर में आभा सी उज्यारी लगै प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द" ॥

( ४ ख ) देवजी के बराबर अमीरी का सामान बाँधने वाला कोई भी कवि नहीं है। इनके छन्दों में हर स्थान पर साज सामान ख़ूब देख पड़ता है। इससे विदित होता है कि ये महाराज अमीरों में रहे थे। रसविलास के चौथे अध्याय के छन्द नम्बर ३०, ३१ और ३२ इस कथन के उदाहरण हैं। अष्टयाम में बहुत प्रकार के मकान कहे गये हैं।

( ४ ग ) इसी ऊँचे विचार और अमीरी से मिलता हुआ अतिशयोक्ति का विषय है। इसका भी देवजी की कविता में पूरा प्रभुत्व रहता है। इस कथन के उदाहरणस्वरूप सुखसागरतरङ्ग के छन्द नम्बर १८०, २१४ हैं।

( ४ घ ) इन्होंने ग्रामीण नायकाओं को इतना बढ़ाया है कि वे अन्य कवियों की नागर नायकाओं से भी अधिक नागर देख पड़ती हैं। देवजी की नागर नायकाओं के वर्णन में तो सरसता कोमलता आदि का वारापार नहीं है। इनका ग्रामीण उदाहरण लीजिये।

बारियै बैस बड़ी चतुरै हौ बड़े गुन देव बड़ीयै बनाई।
सुन्दरै हौ सुघरै हौ सलोनी हौ सील भरी रस रूप सनाई॥
राज बधू बलि राज कुमारि अहो सुकुमारि न मानौ मनाई।
नैसुक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई॥

( ५ ) देवजी की कविता में हृदय पर चोट करने वाले चित्त के सच्चे भाव बहुत अधिकता से पाये जाते हैं। ऐसे उत्तम कलेजा निकाल कर रख देने वाले छन्द बहुत कम कवियों में मिलते हैं। ये छन्द केवल वही कवि कह सकते हैं जो किसी विषय में बिलकुल तल्लीन हो गये हों। ये प्रेमालाप में बहुत आते हैं; अतः प्रेमचन्द्रिका में ऐसे छन्द बहुतायत से आये हैं। इसके उदाहरण में सुखसागर-तरङ्ग के छन्द नम्बर ५८१, ६०२, ६५४. ७७७ और ८२९, सुन्दरी-सिन्दूर का तीसरा छन्द, प्रेमचन्द्रिका के तीसरे अध्याय के छन्द नम्बर ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ५०, ५१ और चौथे अध्याय का पाँचवाँ छन्द देखिये। प्रेमचन्द्रिका के उदाहरण में जो दो छन्द ऊपर लिखे जा चुके हैं वह इसके भी उदाहरण हैं।

( ६ क ) देवजी ने उपमायें बहुत ही उत्तम खोज खोज कर दी हैं।

'उर में उरोज जैसे उमगत पाग है।'

'सांवरेलाल को सांवरो रूप मैं नैनन को कजरा करि राख्यो।'

सुखसागतरंग छन्द नम्बर ३०७, ३५२, ३७०, ४९९, ५३६, ६५४, और ८२४, सुन्दरीसिन्दूर नम्बर ४५ भी देखने योग्य हैं। इन्होंने ऐसी अनूठी उपमायें लिखी हैं जो केवल यही लिखते हैं दूसरा नहीं लिखता। इनकी सभी बातें अनूठी हैं।

( ६ ख ) इन्होंने सर्वांग रूपक बड़े ही विशद कहे हैं। यथा—सुखसागरतरंग नम्बर ५२४, ६४३, ८१७, २३८, सुन्दरीसिन्दूर नम्बर ६, ९, ३४, ६८, रसबिलास सातवाँ अध्याय छन्द नम्बर ५९ शब्दरसायन अध्याय नवाँ छन्द नम्बर ७३—

'पति ब्रत ब्रतो यै उपासी प्यासो अँखियन प्रात उठि प्रीतम पियायो रूप पारनो।'

( ७ ) देवजी ने दो चार चोज़ भी कहे हैं, यथा—

'जागहु ते कठिन सँजोग पर नारी को'।

'सुख थोरो अरु दुख बड़ो परकीया की प्रीति।'

'है परमेसुर ते पति नीको सदा पतिनीको जो लोक लहावै।
देवजू तासों कहा कहिये दुख कै सुख सो सहियै जो सहावै॥
दूरिही ते रहिये कर जोरे भले गहिये पग जो पै गहावै।
रारि करै मनुहारि बिसारि परै कुल गारि कुनारि कहावै॥

( ८ ) इनकी कविता से विदित होता है कि ये अभिमानी भी बड़े थे और इन्हें किसी की बरदाश्त न थी। इनकी बहुज्ञता भी बहुत बढ़ी चढ़ी थी। प्रायः सभी विषयों का इन्हें पूर्ण ज्ञान था। इतने अमिल विषयों पर किसी ने कविता नहीं की है। इन्होंने रीतियों पर भी बड़ी दृढ़ता से गमन किया है।

( ९ ) देवजी की कविता के गुण दोष हम सूक्ष्मतया ऊपर दिखा चुके। यों तो इनकी कविता के गुण अगाध हैं और उनका वर्णन करना कठिन काम है परन्तु यथा साध्य हमने उनका वर्णन थोड़े में स्थालीपुलाकन्याय दिखा दिया है। जिस प्रकार लोग सूर-

दास और तुलसीदास की स्तुति कर गये हैं उसी प्रकार इनकी भी स्तुति की गई है। इनके विषय निम्न छन्द हमने सुना है जो सुख-सागरतरंग की भूमिका में हमारे पूज्य पिता ने भी लिखा है:—

'सूर सूर, तुलसी सुधाकर, नछत्र केसौ सेष कविराजन को जूगनू गनाय कै। कोऊ परिपूरन भगति दिखरायो अब काव्य रीति मोसन सुनहु चित लाय कै॥ देव नभ मंडल समान है कवीन मध्य जामैं भानु सित भानु तारागन आयकै। उदै होत, अथवत, चारौं ओर भ्रमत, पै जाको ओर छोर नहिं परन लखाय कै॥

देवजी की कविता में जो गुण हैं वह अद्वितीय हैं। ऐसी उत्तम कविता किसी कवि के किसी ग्रन्थ में एक स्थान में नहीं पाई जाती। जैसे उत्तम छन्द इनकी कविता में सैकड़ों पाये जाते हैं वैसे उत्तम छन्द किसी की कविता में किसी स्थान पर न निकलेंगे। यह सब बातें होते हुए भी हम इनको भाषा-साहित्य में सर्व-श्रेष्ठ कवि नहीं कह सकते। इनको किसी कवि से न्यून कहना इनके साथ अन्याय है, परन्तु इनको सर्वश्रेष्ठ कहना गोस्वामी तुलसीदास तथा महात्मा सूरदास के साथ भी अन्याय होगा। सिवा इन दोनों महात्माओं के और किसी तृतीय कवि की समानता देवजी से कदापि नहीं की जासकती। शेष कवियों से और देवजी से बहुत बड़ा अन्तर है और जो देवजी के प्रधान गुण हैं उनमें इनकी कविता और उपर्युक्त दोनों महात्माओं की कविता में भी बहुत बड़ा अन्तर है, क्योंकि वे महात्मा भी उन गुणों को अपनी अपनी कविता में सन्नि-विष्ट करने में देवजी के सामने नितान्त असमर्थ रहे हैं, परन्तु जो

गुण सूरदास तथा तुलसीदास की कविता में हैं वे गुण देवजी भी नहीं ला सके हैं। यदि देवजी किसी भारी कथाप्रसंग का काव्य करते तो नहीं मालूम कि उनका वर्णन कैसा होता। सम्भव है कि ये भी वैसा काव्य कर सकते जैसा कि उन महात्माओं ने किया है परन्तु जब तक कोई वैसा साहित्य रच कर दिखा न दे तब तक यह कहा नहीं जा सकता कि वह अवश्य ऐसा कर सकता है, चाहे जितना बड़ा कवि वह क्यों न हो। सूरदास की साधारण कविता से तो देवजी की कविता की कोई भी समानता नहीं की जा सकती परन्तु सूरकृत उत्तम प्रबन्धों की बराबरी देव का कोई भी ग्रन्थ नहीं कर सकता। सूर का कोई भी पद देवजी के कवित्तों के बराबर मनोहर नहीं है परन्तु उनके उत्तमोत्तम दो एक प्रबन्ध ऐसे हैं कि वे बहुत ही आला दरजे के हैं और उनकी समानता देवजी का कोई भी वर्णन नहीं कर सकता।

ये बातें गोस्वामी तुलसीदासजी के विषय भी चरितार्थ होती हैं। देव कृत छन्दों की उत्तमता को तो कोई भी कवि नहीं पहुँचता परन्तु इसी प्रकार गोस्वामीजी के भी सदाही निभने वाले औचित्य बहुत ही उत्तम हैं। तुलसीदासजी की रचना हर स्थान पर अत्यन्त सराहनीय है और सैकड़ों पृष्ठों तक वह शिथिल नहीं हुई है। अतः हम यह नहीं कह सकते कि कुल मिलाकर इन कवियों में कौन छोटा और कौन बड़ा है। अपने अपने ढंग पर ये तीनों उत्तम हैं और इन तीनों में न्यूनाधिक कोई भी नहीं कहा जा सकता।

ये तीनों महा पुरुष भाषा-साहित्य के भूषण हैं और अपने अपने ढंग पर तीनों अनमोल हैं। इनके विषय न्यूनाधिकता कहना मत-

भेद से ख़ाली नहीं है। इन तीनों के पसन्द करने वाले अपने अपने कवि को सर्वोत्तम मानते हैं। हमने इन तीनों महा कवियों के ग्रन्थ बहुत ध्यानपूर्वक पढ़े हैं और हम तीनों को महान और अद्वितीय समझते हैं। सम्भव है इनके विषय जो कुछ हमने कहा है वह अन्य साहित्यानुरागियों को यथार्थ न जँचै और इसमें हम यह नहीं कह सकते कि यह उनकी भूल अवश्य होगी, परन्तु जहाँ तक हमें समझ पड़ा हमने इनके विषय अपना मत प्रकट किया। इतना अवश्य निश्चित है कि इन तीनों महानुभावों के बराबर कोई चौथा कवि किसी प्रकार नहीं पहुँचता, क्योंकि यदि इन तीनों में ९९ और १०० का अंतर है तो शेष में इनसे सत्तर और सौ का अंतर निकलेगा।

देवजी के विषय एक अपने छन्द के साथ हम यह प्रबन्ध समाप्त करते हैं।

देव सुकवि ने विरच छन्द अनुपम टकसाली।
भाषा की सरवोच्च दिखाई छटा निराली॥
देस देस की बिसद तरुनि गन बरन सुनाया।
कर बरनित प्रति जाति सभी का रूप दिखाया॥
दस अंग काव्य, बैराग, त्यों राग भेद सब कुछ कहा।
सब कवियों में यह एक कवि भाषा का राजा रहा॥

# महाकवि बिहारीलालजी ।

भाषा-साहित्यकारों में चरित्र न लिखने के कारण जैसे बड़े बड़े कवियों के कुल गोत्रादि के विषय भी सन्देह बना ही रहता है, वैसाही सन्देह इस महाकवि के विषय भी उपस्थित है। इन्होंने 'सतसई' नामक एक ही ग्रन्थ बनाया है और उसका भी समाप्त होने मात्र का संवत दिया है। अपने विषय भी इन्होंने केवल एक दोहा लिखकर सन्तोष किया है। यह दोनों दोहे नीचे लिखे जाते हैं।

सम्वत ग्रह ससि जलधि छिति छठि तिथि बासर चन्द ।
चैत मास पख कृष्ण में पूरन आनँद कन्द ॥
जनम लियो द्विजराज कुल सुबस बसे ब्रज आय ।
मेरे हरौ कलेस सब केसव केसव राय ॥

इन दोनों दोहों के अतिरिक्त इनके विषय एक तीसरा दोहा भी प्रसिद्ध है। वह यह है:—

जनम ग्वालियर जानिये खंड बुँदेले बाल ।
तरुनाई आई सुखद मथुरा बसि ससुराल ॥

इन्हीं तीनों दोहों पर इनके कुल गोत्र जन्म मरण आदि की अनुमानें अवलम्बित हैं। इन्होंने सतसई में राजा जयसिंह का थोड़ा सा यशगान भी किया है और कुछ बातें जयपुर-सम्बन्धी भी लिखी हैं। महाराजा जयसिंह ने सम्वत १६७६ से १७२२ तक राज्य

किया था। इसके अतिरिक्त जनश्रुतियों में यह प्रसिद्ध है कि इनका टीकाकार कृष्ण कवि इनका पुत्र था। कृष्ण ने अपनी कविता में अपने को ककोर कुल वंशी माथुर बिप्र माना है। जन-श्रुतियों में यह भी प्रसिद्ध है कि ये महाशय एक बार जोधपूर भी गये थे। पण्डित प्रभुदयाल पाण्डे ने बंगबासी प्रेस में बिहारी सतसई अपनी टीका समेत छपवाई थी। इस लेख में उसी प्रति के दोहा नम्बरों का हवाला दिया जायगा। गोलोकवासी मित्रवर बाबू राधाकृष्णदास ने भी 'कविवर बिहारीलाल नामक' एक निबन्ध लिखा था। इसी प्रकार अम्बिकादत्त व्यास ने भी 'बिहारी बिहार' में अच्छी भूमिका लिखी थी। अतः हम विस्तारपूर्वक बिहारी के कुलादि के विषय न लिख कर सूक्ष्मतया अपना मत प्रकाश करते हैं। ऊपर लिखे हुए द्वितीय दोहा का अर्थ बिहारी के एक प्रसिद्ध टीकाकार ने यों लिखा हैः—

श्लेष अर्थ केसव पिता अरु हरि केसव राय।
वे द्विज कुल वै राज कुल उपजे अर्थ जनाय॥

इस अर्थ और बिहारी की कविता में बुँदेलखंडी शब्दों के प्रयोग से और एक स्थान पर 'मधुकर' शब्द के (ओरछा के मधुकर शाह को सूचित करते हुए) आने से राधाकृष्णदासजी ने अनुमान किया कि बिहारीलाल प्रसिद्ध कवि केशवदास के पुत्र थे। हमारे मत में 'मधुकर' शब्द से 'मधुकर शाह' का व्यंजित होना नहीं समझा जा सकता। मधुकर भ्रमर को कहते हैं और यह एक बड़ा साधारण शब्द है। हमारे मत में बिहारी के पिता का

नाम केशव अवश्य था और वह ब्राह्मण भी थे परन्तु वह प्रसिद्ध कवि केशवदास न थे नहीं तो यह बात जनश्रुतियों में अवश्य प्रसिद्ध होती। बिहारी का जन्मस्थान 'बसुआ गोविन्दपुर' नामक एक ग्राम जो ग्वालियर के निकट है कहा जाता है और यह भी कहा जाता है कि इनके चचा ने महाभारत का उल्था किया है जो अब तक वहाँ है परन्तु प्रकाशित नहीं हुआ है। बिहारी का जन्म अनुमान से संवत् १६६० वि० में हुआ होगा। इन्होंने संवत् १७१९ में सतसई समाप्त की और उसके पीछे कोई ग्रन्थ या छन्द नहीं बनाया। इससे जान पड़ता है कि इस संवत् के थोड़े ही दिन पीछे इनका मरण हुआ होगा। सतसई में कुछ दोहे शान्तरस के भी हैं। बिहारी बड़े ही शृङ्गारी थे सो उनके चित्त में ६० वर्ष की अवस्था के लगभग पहुँचे बिना शान्तरस का प्रादुर्भाव न हुआ होगा। अतः जान पड़ता है कि उस समय जब कि सतसई समाप्त हुई ये लगभग ६० वर्ष के होंगे। जयपुर छोड़ कर ये सिवा जोधपुर के और कहीं न गये और वहाँ भी ठहर कर इन्होंने अपने मान बढ़ाने का प्रयत्न न किया, यद्यपि उस समय महाराज जसवन्तसिंह वहाँ राज्य करते थे जो कविता के बड़े ही प्रेमी थे और जिन्होंने अलङ्कारों का 'भाषाभूषण' नामक बड़ा ही विशद ग्रन्थ बनाया था जो अब तक कविसमाज में बड़ी ही पूज्य दृष्टि से देखा जाता है। इससे भी प्रकट होता है कि ये उस समय प्रायः ६० वर्ष के थे और उस समय के पीछे बहुत दिन जीवित नहीं रहे।

'केशवराय' के ऊपर वाले दोहे में आने के कारण कुछ लोग यह अनुमान लड़ाते हैं कि बिहारी भाट थे। परन्तु उपर्युक्त अर्थ

वाले दोहे से प्रकट होता है कि 'केसवराय' शब्द श्रीकृष्ण के विषय में आया है न कि कवि के पिता के सम्बन्ध में। फिर 'राय' शब्द से सदा भाट का प्रयोजन नहीं लिया जा सकता। ब्राह्मणों के नाम में भी 'राय' आ सकता है। स्वयं कवि केशवदास तक कभी कभी अपने को केशौराय लिखते थे। कोई भाट अपने विषय यह नहीं कह सकता कि वह 'द्विज' है। भाट प्रायः ब्रह्मभट्ट कहाते हैं। कृष्ण-कवि-सम्बन्धी जनश्रुति भी इसके प्रतिकूल है। अतः निश्चय है कि बिहारीलाल माथुर चौबे थे। इनका जन्म ग्वालियर के समीप बसुआगोविन्दपुर में हुआ था और किसी कारण बुँदेल-खंड में इनका बाल बैस बीता और जवानी में ये महाशय अपनी ससुराल मथुरा में रहे। जान पड़ता है कि इनके पिता दरिद्र थे और इनकी बाल्यावस्था ही में मर गये थे सो इन्हें बुँदेलखंड में (जहाँ इनका ननिहाल होना सम्भव है) लड़कपन. और ससुराल मथुरा में उमर बितानी पड़ी।

एक समय महाराजा जयसिंह एक छोटी सी लड़की के प्रेम में इतने उन्मत्त हो गये थे कि वह उसे छोड़ कर बाहर निकलते ही न थे। उस समय बिहारीलाल ने निम्न दोहा बना कर किसी भाँति उनके पास भेजवाया।

नहिँ पराग, नहिँ मधुर मधु, नहिँ बिकास यहिँ काल।
अली कलीही सों बिंधो आगे कौन हवाल॥

इसे पढ़ कर महाराज को होश सा आ गया और वह तुरन्त प्रेमोन्मत्तता से मुक्त होकर बाहर निकल आये और राज्य काज

करने लगे। इस समय से बिहारी का आदर जयपुर में बढ़ा और यह वहीं रहने लगे। कहते हैं कि राजा ने उपर्युक्त दोहे पर इन्हें बड़ा पुरस्कार दिया था और फिर प्रति दोहा एक मोहर दी। यह एक मोहरवाली बात यथार्थ नहीं जँचती। बिहारीलाल को कलि के दानियों से सदा शिकायत रही। इससे जान पड़ता है कि इन का पूरा सन्मान कभी नहीं हुआ। यदि प्रति दोहा एक मोहर मिलती होती तो ये हज़ारों दोहे बना डालते और सात ही सौ दोहों पर सन्तोष न करते। यदि मोहरों पर हज़ारों दोहे बने होते तो वह इनके किये भी लुप्त न हो सकते और अवश्य प्रसिद्ध होते। इस महाकवि के एक मात्र ग्रन्थ सतसई में ७१९ दोहे मात्र हैं जिन में से दो तीन सोरठा हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने सात दोहों में सतसई की बड़ाई की है। यथाः—

सतसैया के दोहरा ज्यों नावक को तीर।
देखन को छोटो लगै घाव करै गम्भीर॥
ब्रज भाषा बरनी कबिन बहु बिधि बुद्धि बिलास।
सब की भूषन सतसई करी बिहारी दास॥
जो कोऊ रस रीति को समुझो चाहै सार।
पढ़ै बिहारी सतसई कबिता को सिंगार॥
उदै अस्त लों अवनि पै सबको याको चाह।
सुनत बिहारी सतसई सब ही कहत सराह॥
भाँति भाँति के अरथ बहु या में गूढ़ अगूढ़।
जाहि सुने रस रीति को मग समुझत अति मूढ़॥

विविधि नायका भेद अरु अलङ्कार नृप नीति।
पढ़ै बिहारी सतसई जानै कवि रस रीति॥
करे सात सै दोहरा सुकबि बिहारीदास।
सब कोऊ तिनको पढ़ै सुनै गुनै सबिलास॥

इन दोहों में सतसई की बड़ी बड़ाई की गई है परन्तु उसका बृहदंश यथार्थ भी है। इस एक छोटे से ग्रन्थ में इस कविरत्न ने माना समुद्र कूज़े में बन्द कर दिया है। इन्हीं १४५२ पंक्तियों में सभी कुछ आ गया है और कविता का कोई अंग सिवा पिङ्गल के छूट नहीं रहा है। काव्य का यह छोटा सा ख़ज़ाना पाठक को चकित और स्तम्भित कर देता है। इतने छोटे से ग्रंथ में इतना चमत्कार कोई भी कवि सन्निविष्ट नहीं कर सका है। जैसी एकाग्रता और श्रम से इस कविरत्न ने काव्य का प्रताप-पुञ्ज इस छोटे से भाजन में भर रक्खा है वैसा ही इसका आदर भी बड़ा विशद हुआ। सिवा गोस्वामी तुलसीदास की रामायण के और कोई भी भाषाग्रंथ इतनी लोकप्रियता न पा सका जैसी कि सतसई को मिली। क़रीब २५ महाशयों ने इसकी गद्य अथवा पद्य में टीका या विस्तार किया है। इन सब में सूरतिमिश्र की टीका सर्वोत्कृष्ट है। पठान सुल्तान के आश्रित चन्द ने इन दोहों पर कुण्डलियायें चिपकाई हैं और यही पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने भी किया है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी क़रीब ७० या ८० दोहों पर कुण्डलियायें बनाईं परन्तु असाध्य श्रम समझ कर इसे फिर छोड़ दिया। इन दोहों पर कुण्डलियायें चिपकाना हमको भी असाध्य श्रम समझ पड़ता है। यदि शेष चार

पद दोहे के बराबर उत्तम हों या उसके लगभग भी पहुँचे तो कुंडलिया उत्तम कही जा सकती है परन्तु ऐसा न हुआ है और न हो सकता है। बिहारी ऐसे सुकवि ने जब जन्म पर्य्यन्त में सात सै नग दोहे बना कर रख दिये हैं तब जब तक कोई वैसाही कवि न हो और उमर भर श्रम न करे तब तक भला उन बूंदों भेंट कहाँ हो सकती है तभी तो नवरत्न के भी प्रसिद्ध कवि भारतेन्दु ने उसे असाध्य-श्रम समझा। परमानन्द ने सतसई का उल्था संस्कृत के श्लोकों में किया है और कृष्ण कवि ने सवैयाओं में। इनके टीकाकारों में सूरति, कृष्ण, चन्द, सरदार, और भारतेन्दुजी सुकवि हैं। एक वैद्य ने सब दोहों में एक एक वैद्यक का नुसख़ा निकाला है परन्तु इसमें टीकाकार का ही बुद्धि-चमत्कार देख पड़ता है। इस टीका का अर्थ बिहारीलाल भी न जानते थे।

सतसई का जो क्रम आज कल चलता है वह औरंगज़ेब बाद-शाह के पुत्र आज़मशाह का बँधवाया हुआ है और सराहनीय भी है। इसका छठवाँ शतक परमोत्तम है। इसमें कहा हुआ षट ऋतु बहुत ही सराहनीय है। प्रथम, पंचम, और सप्तम शतक भी उत्तम हैं और शेष साधारण हैं। इनकी कविता के गुण-दोष हम नीचे देते हैं।

इस महाकवि ने ब्रज भाषा में कविता की है परन्तु फिर भी इस ने कई भाषाओं के शब्दों का यत्र तत्र बहुतायत से व्योहार किया है। किसी भाषा का भी शब्द मिले और यदि उत्तम हो तो उसे काम में लाने में यह महाशय संकोच नहीं करते थे। यदि

इनके शब्दों की गणना की जाय ता वह बहुत ऊँची निकलेगी। इन्होंने रीझबो, देखबो आदि बुंदेलखंडी और ताफ़ता, इज़ाफ़ा, किबिलनुमां ( कुतुबनुमां ), ग़नी, सबोल, अदब, दाग़ आदि फ़ारसी के शब्द रक्खे हैं। छाकु उड़ायक आदि पद इन्होंने बना भी लिये हैं। एकाध स्थान पर इन्होंने असमर्थ शब्द भी कह दिये हैं। यथा 'दीजतु' और 'ज्यों'।

सबहिनु बिनहीं ससि उदै दीजतु अरघ अकाल।
जात जात ज्यों राखियत पिय को नाम सुनाय।

यहां 'दीजतु' से देवैंगी या देती हैं का और 'ज्यों' से 'ज्यों त्यों' का अर्थ लिया गया है पर ये शब्द ये अर्थ पूर्णतया प्रकट करने में असमर्थ हैं। इन्होंने शब्दों को बहुत अधिक मरोड़ा है और उन्हें बहुत ही बिगड़े हुए स्वरूप में रक्खा है। यथा समर ( स्मर ), तूठ्यो ( तुष्ट्यो ), हराहरु ( हलाहलु ), अगिनि ( अग्नि ), मोख ( मोक्ष ) इत्यादि। इसी प्रकार ठिक, भावक, दुसाल, नटसाल, ईठ, नीठि, अनखुली, धरहरि, सवादिल, बट ( बाट के लिये छन्द नम्बर ८९ ), चोरटी, गोरटी, दुकाचित, कुकत, हई ( हैरत नम्बर ११६ ), कैवा ( १२१ ), लाव ( १२८ ), डाढ़ीसी ( १३४ ), रह चटैं ( १३६ ), लाय ( १४१ ), रोज़ ( रोज़ा के ठौर—१८८ ), ईठि, खुदी ( १९९ ), चिलक चौंध ( २१७ ), चुपरी ( ढकी—२२२ ), चौंटत ( २२७ ), लोयन ( लुनाई—२३० ), केलि ( केला—२३२ ), ऊलि ( उछल, २३७ ), जनकु ( मानो—२४२ ), बेपाय ( भूली हुई—२३५ ) सँगी ( ३०६ ), आंचि ( ३३१ ), बौंद ( ३३५ ), गांस (३४९),

बूढ़ ( बोर बहूँटी—३८६ ), पानु ( ३९२ ), कौरि ( ४१५ ), निय ( ४२३ ), ओम ( ४३० ), सुध ( सुधा—४३५ ), पजरै ( ४३९ ), संसो ( सांस ४४१ ), करकै ( करके ५०४ ), बाथ ( ५१० ), धर ( धरा, पृथ्वी, ४३५ ), तैन ( ५३६ ), खियाल ( खेल—५४७ ), आघ (अर्घ्य, मोल—६८४) नीसकै ( ६९० ) इत्यादि असाधारण, अव्यवहृत अथवा बिगड़े हुये स्वरूपों में शब्द लिखे हैं। इनके बड़े कवि होने पर भी इन की शब्द-सम्बन्धिनी बानि प्रशंसनीय नहीं है। तुकान्त के लिये भी इन्होंने शब्द मरोड़े हैं। यथा, चाढ़ (चढ़ कर—२२०), आव ( आब—३२२ ) । कुछ छन्दों में यति-भंग दूषण भी वर्त्तमान है। यथा—

रहि हैं चञ्चल प्रान ये कहु कौन की अगोट। ( ४१४ )<br>
कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेस लजात। ( ४७३ )<br>
चित तरसत मिलत न बनत बसि परोस के बास। ( ५१३ )

निम्न छन्दों में दूरान्वयी दूषण प्रस्तुत हैः—

वेई गड़ि गाड़ैं परीं उपट्यो हारु हियें न।<br>
आन्यो मोरि मतंग मनु मारि गुरेरन मैन॥

जनकु धरत हरि हिय धरे नाजुक कमला बाल।<br>
भजत भार भय भीत ह्वै घन चन्दन बन माल॥

कियो जु चिबुक उठाय कै कम्पित कर भरतार।<br>
टेढ़ोयै टेढ़ी फिरति टेढ़ो तिलक लिलार॥

ढीठ्यो दै बोलत हँसत प्रौढ़ बिलास अपोढ़॥<br>
त्यों त्यों चलत न पिय नयन छकये छकी नवोढ़॥

इन दो एक दूषणों के होते हुए भी इस कविरत्न ने बोल चाल बहुत ही स्वाभाविक रक्खा है।

तेह तरेरो त्योर करि कत करियत दृग लोल।
लीक नहीं यह पीक की श्रुति मनि झलक कपोल॥

छन्द नम्बर १६५, २७९, ३१२, ३१७, और ४७३ भी इसके उदाहरण हैं। इस महाकवि ने इबारत आराई भी ख़ूब ही की है।

कुञ्ज भवन तजि भवन को चलिये नन्द किसोर।
फूटत कली गुलाब की चटकाहट चहुँ ओर॥
केसरि कैसरि क्यों सकै, चम्पक कितक अनूप।
गात रूप लखि जात दुरि जातरूप को रूप॥

बिहारीलाल ने यमक और पद-मैत्री को बड़ा ही आदर दिया है और इनका प्रयोग भी बड़ा मनोरंजक किया है। इसका चमत्कार छन्द नम्बर ५, २५, ४३, ७७, ८९, १५९, १८४, १८८, २००, २०१, २०२, २२७, ३०६, ३३०, ३३२, ३३४, ३४२, ३५४, ३६०, ३६६, ४२३, ४४७, ५२१, और ६३० में ख़ूब देख पड़ता है और साधारणतया सभी जगह प्रस्तुत है।

रस सिँगार मंजन किये कंजन भंजन दैन।
अंजन रंजन हू बिना खंजन गंजन नैन॥
तो पर वारौं उरबसी सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसी ह्वै उरबसी समान॥
गड़े बड़े छबि छाकु छकि छिगुनी छोर छुटैन।
रहे सुरँग रँग रँगि वहीं नहँदी मँहदी नैन॥

पद-मैत्री के साथ दो एक स्थान पर इन्होंने चित्र काव्य भी किया है। यथाः—

खेलन सिखये अलि भले चतुर अहेरी मार।
कानन चारी नैन मृग नागर नरनु सिकार॥

परन्तु शब्दों के बनाव में इस महाकवि ने उद्दंडता आदि गुण भी हाथ से नहीं जाने दिये हैं। उद्दंडता का उदाहरण।

फिरि फिरि चित उतही रहत टुटी लाज की लाव।
अंग अंग छवि भौंर में भयो भौंर की नाव॥

कुल बातों पर ध्यान देने से विदित होता है कि बिहारीलाल की भाषा बहुत मनोहर है। इन्होंने सभी स्थानों पर लहलहात, झलमलात, जगमगात आदि ऐसे ऐसे उत्तम और सजीव शब्द रक्खे हैं कि अधिक उत्तम भाव न होने से भी दोहा चमचमा उठता है। इसी प्रकार जैसा वर्णन किया है उसी के अनुसार भाषा भी लिख कर इन्होंने उसका रूप खड़ा कर दिया है।

इस महाकवि ने कई उत्तम काव्यांगों के बड़ेही साफ़ और उत्तम उदाहरण रख दिये हैं। यथाः—

छुटी न लाज न लालचौ प्यो लखि नैहर गेह।
सट पटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह॥ मध्या॥

मुख पखारि, मुड़हर भिजै, सीस सजल कर छ्वाय।
मोरि उचै, घूंटैनु नै, नारि सरोवर न्हाय॥ स्वभावोक्ति॥

बिहँसति सकुचति सी दिये कुच आंचर विच बांह।
भीजे पट तट को चली न्हाय सरोवर मांह॥ स्वभावोक्ति॥

किती न गोकुल कुल बधू, काहि न केहि सिख दीन।
कौने तजी न कुल गली है मुरली सुर लीन ॥ काकु ॥
मन मोहन सों मोह करि, तू घनस्याम निहारि।
कुंज बिहारी सों बिहरि, गिरिधारी उर धारि ॥ परिकरांकुर ॥
स्वारथ सुकृत न श्रम बृथा देखि बिहंग बिचारि।
बाज पराये पानि पर तू पंछीन न मारि ॥ अन्योक्ति ॥
कालिह दसहरा बीति है धरि मूरख जिय लाज।
दुरयो फिरत कत बनन में नीलकंठ बिनु काज ॥ अन्योक्ति ॥
नाहिन ये पावक प्रबल लुवैं चलत चहुँ पास।
मानहु बिरह बसन्त के ग्रीषम लेत उसास ॥ उत्प्रेक्षा ॥
मिलि चन्दन बेंदी रही गोरे मुँह न लखाय।
ज्यों ज्यों मद लाली चढ़ै त्यों त्यों उघरत जाय ॥ ( उन्मीलित )
डीठि न परत समान दुति कनक कनक से गात।
भूषन कर करकस लगे परस पिछाने जात ॥ ( उन्मीलित )
कंचन तन धन बरन बर रह्यों रंग मिलि रंग।
जानी जाति सुबास ही केसरि लाई अंग ॥ उन्मीलित ॥
अंग अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह।
दिया बढ़ायेहू रहै बढ़ो उजेरो गेह ॥ अतिशयोक्ति ॥
छाले परिबे के डरनि सकत न हाथ छुवाय।
झिझकति हिये गुलाब के झवां झवांवत पाय ॥ अतिशयोक्ति ॥

इस कवि ने अतिशयोक्ति की टांग तोड़ दी है विशेषतया कोमलता, उजलापन और बिरह के वर्णनों में। छन्द नम्बर

६६, २३४, २४१, २४३, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३४, ४४८, ४७७ और ४२४ में इसकी छटा देख पड़ेगी। इस महाकवि ने उपमायें बड़ी ही उत्तम और अनोखी खोज खोज कर दी हैं। उत्प्रेक्षायें और रूपक भी बड़े ही उत्तम कहे हैं।

भो मन मोहन रूप मिलि पानी में को लोन।

साईं सिर कच सेत ज्यों बीत्यो चुनति कपास।

जाके तन की छाँह ढिग जोन्ह छाँह सी होति।

अरगट ही फानूस सी परगट होति लखाय।

भरत ढरत बूड़त तिरत रहट घरी लौं नैन।

आली बाढ़ै बिरह ज्यों पंचाली को चीर।

छन्द नम्बर १७, २७, ३४, ४३, ५४, ६७, ७२, ८४, ९०, ११२, ११४, १२७, १२८, १६२, १६३, २२२, ३१०, ३२३, ३८०, ३९६, ४२२, ४४४, ४६३, ४६७, ४७१, ५२३, ५२४, ५४२, ५६४, ६४०, ६६६, और ६६७ में इनकी उपमा, उत्प्रेक्षा, और रूपक कथन का बल देख पड़ता है। इन्होंने सैकड़ों नये रूपक और उपमायें कही हैं। जहाँ यह पुरानी उपमायें या रूपक भी कहते थे वहाँ भी अपनी आत्मीयता रख देते हैं। यथा—

नीको लसत ललाट पर टीको जड़ित जड़ाय।
छबिहि बढ़ावत रबि मनो ससि मंडल में आय॥
चम चमात चंचल नयन बिच घूंघट पट झीन।
मानो सुर सरिता बिमल जल उछलत जुग मीन॥

इस उत्प्रेक्षा में पुराने विचार को इस कवि ने कैसे नये कपड़े पहिनाये हैं? बिहारी ने एक यह भी विशेषता रक्खी है कि सैकड़ों

रूपक कहने पर भी जहां तक हमें स्मरण है एक भी तद्रूप रूपक नहीं कहा। वास्तव में उत्तम रूपक अभेद ही है। तद्रूप में अंतर नहीं मिटता इसलिये इन्होंने उसे पसन्द न किया। उपर्युक्त काव्याङ्गों के अतिरिक्त भी बिहारी ने बहुत से उत्तम काव्यांग कहे हैं। काव्य के पूर्णाङ्ग होने पर भी बिहारी उसकी रीतियों के बहुत अधीन नहीं रहते थे। मरणावस्था के वर्णन में रसाभास समझ कर बहुतेरे कविगन मूर्छा ही का वर्णन कर देते हैं (नेक मरू करिकै चितई जब चारि घरीलौं मरिये धरी रही) परन्तु बिहारी ने मरण का ही वर्णन कर दिया है।

कहा कहौं वाकी दसा हरि प्रानन के ईस।
बिरह ज्वाल जरिबो लखे मरिबो भयो असीस॥

सिवा संस्कृत के कवि कालिदास के और बहुत लोगों ने गर्भवती नायका का वर्णन नहीं किया है पर बिहारी ने वह भी कहा है।

दृग थरकौहैं अध खुले देह थकौहैं ढार।
सुरति सुखित सी देखिये दुखित गरभ के भार॥

बिहारी की दृष्टि संसार भरके सभी पदार्थों पर बड़ी पैनी पड़ती थी और ये महाशय अपने मतलब की बात ख़ूब देख लेते थे। इन्होंने रंगों और उनके मिलाव का बड़ा उत्तम वर्णन किया है।

यथा—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे स्याम हरित दुति होय॥
सोन जुही सी होति दुति मिलत मालती माल।
देखौ सोन जुही फिरत सोन जुही से अंग।

दुति लपटनु पट सेतहूँ करत बनौटी रंग।

अधर धरत हरि के परति ओठ दीठि पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी इन्द्र धनुष रँग होति॥

सोन जुही सी जगमगै अँग अँग जोबन जोति।
सुरँग कुसुम्भी कंचुकी दुरँग देह दुति होति॥

कंचन तन धन बरन बर रह्यो रंग मिलि रंग।
जानी जाति सुबास ही केसरि लाई अंग॥

इस कवि ने रंगों के साथ संसार और प्रकृति का भी निरीक्षण बहुत अच्छा किया है विशेषतया मानुषीय प्रकृति का। इस के प्रायः सभी दोहों में नेचर निरीक्षण का फल देख पड़ता है परन्तु निम्न दोहे इस गुण के प्रधान उदाहरण हैं:—

रह्यो मोहु मिलनो रह्यो यों कहि गहे मरोर।
उत दै अलिहि उराहनो इत चितई मो ओर॥

छल सों चली छुवाय कै छिनकु छबीली छाहँ।

ज्यों ज्यों बढ़ति बिभावरी त्यों त्यों खरी उताल।
झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहचटैं बाल॥

सतर भौंह रूखे बचन करति कठिन मन नीठि।
कहा करौं ह्वै जाति हरि हेरि हसौंहीं डीठि॥

लरिका लेबे के मिसुन लंगर मो ढिग आय।
गयो अचानक आँगुरी छाती छैल छुवाय॥
( इसमें कैसी शोहदई है )

ज्यों उझकति, झांपति बदन, बिहँसति अति सतराय।
त्यों गुलाल झूठी मुठी झुठकावत प्यो जाय॥

ज्यों ज्यों पट झटकति, हँसति, हठति, नचावति नैन।
त्यों त्यों परम उदारहू फगुवा देत बनैन॥
बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, देन कहै, नटि जाय॥

इन अन्तिम तीन दोहों में इस कवि ने घंटे घंटे भर की बातचीत एक एक दोहे में भर दी है। इसका प्रकृति निरीक्षण निम्न दोहों से भी प्रकट होगाः—१, ६, २३, २६, २८, ३०, ३७, ३८, ४०, ४१, ४२, ४८, ६१, ९५, ९८, १३६, १६८, १९६, २३९, २७१, २८०, ३३५, ३६१, ४१३, ४४४, ४६३, ४६५, ५०९, ५१३, ५४९, ५५१, ६०९, ६५१, ६५२, ६५४, ६६४, ६६३, ६६९, ६८१, ६८६, ६९०, ६९२, ६९३, १८, १९, २२, ५९, १५०, ४०६, ७११, १३४, २१५, ७६, १०५, इत्यादि। इस कवि ने प्रकृति निरीक्षण में अपना कांइयांपन भी प्रकट किया है और इसके दोहों के साथ प्रकृति और कांइयांपन बराबर मिले हैं। मानुषीय प्रकृति सम्बन्धी जितनी बातें इस महाकवि ने लिखी हैं और जितने चोज़ निकाल कर इसने रख दिये हैं उसके आधे भी भाषा का कोई कवि नहीं कर सका है। इन सात सौ दोहों में ख़ूबियाँ ठूंस ठूंस कर भरी हुई हैं। परन्तु इनके नेचर निरीक्षण में बहुधा अश्लीलता और शोहदई भी मिल जाती हैं। देखिये नम्बर ५, १६८, २२८, २८१ २८२, २९५, इत्यादि।

बिहँसि बोलाय, लगाय उर, प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत को प्यो चूम्यो मुँह चूमि॥
( यहां पुत्र में भी पतिभाव आगया है जो निन्द्य है )।
भीगे तन दोऊ कँपत क्यों हूँ जपु निबरैन।

कवियों ने कहा है कि 'देखि परै औ दुराव रहै कवि तोष सोई कविता मन भावैं', परन्तु बिहारी ने दो चार स्थानों पर बिल्कुल साफ़ कह दिया है। इनके नेचर निरीक्षण में केवल एक स्थान पर ग़लती समझ पड़ती है।

पावस घन अँधियार महँ रह्यो भेद नहिँ आन।
राति द्योस जान्यो परत लखि चकई चकवान॥

परन्तु वर्षा ऋतु में चक्रवाक नहीं होते। बहुत से लोग कष्ट-कल्पना करके यह दोष भी निकालना चाहते हैं परन्तु हम उस अर्थ को अग्राह्य मानते हैं।

इस महाकवि ने रूप-वर्णन में सीधासादा सच्चा रूपही दर्शा दिया है। सिवा देवजी के और कोई भी कवि ऐसा रूप नहीं दिखा सका है। देखिये नम्बर ५२, २३५, १५१, ३१२ इत्यादि।

कहलाने एकत बसत अहि, मयूर, मृग, बाघ।
जगत तपोबन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ॥

(कहते हैं कि यह छन्द एक तसवीर को देख कर बना था)

चलतु देत आभरन सुनि वही परोसिहि नांह।
लसी तमासे के दृगनि हांसी आँसुन मांह॥

मानुषीय और विशेषतया नागर-वर्णन में इन्होंने सुकुमारता को भी ख़तम कर दिया है।

जनकु धरत हरि हिय धरे नाजुक कमला बाल।
भजन भार भयभीत ह्वै घन, चन्दन, बन माल॥
झिझकत चित्त कुलाब के झवां झवांवत पायँ।

नागर नायकाओं के साथ इन्होंने ग्रामीणों का भी वर्णन अच्छा किया है।

गोरी गदकारी परै हँसत कपोलनि गाड़।
कैसी लसति गँवारि यह सोनकिरवा की आड़॥
पहला हारु हिये लसै सन की बेंदी भाल।
राखति खेत खरी खरी खरे उरोजनि बाल॥
परन्तु ग्रामीण की इन्होंने निन्दा सदा की।
नागरि सकल बनाव तजि बसी गमेलिन माह।
मूढ़नि में गिनबो न तो हूठ्यो दै इठलाह॥
करि फुलेल को आचमन मीठा कहत सराहि।
रे गन्धी मति अन्ध तू इतर देखावत काहि॥

इस कवि ने शराब का भी बड़ा ही उत्तम वर्णन किया है, और ज्योतिष का भी यत्र तत्र समावेश किया है।

तिय तिथि तरुन किसोर बय पुन्य काल सम दोनु।
पूरे पुन्निनु पाइयतु वैस सन्धि संक्रोनु॥

दो एक और स्थानों पर भी ज्योतिष मिश्रित वर्णन आया है। प्रकृति निरीक्षण और उसके यथोचित वर्णन में यह कविवर भाषा-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है।

इनके दोहाओं में उत्तम छन्दों की गणना करनी कठिन है क्योंकि इनके आधे से अधिक दोहे अच्छे हैं और कोई एक भी दोहा ऐसा नहीं है जो ख़राब कहा जा सके। उत्तम छन्दों के बाहुल्य से ही यह

ग्रन्थ रामायण के पीछे सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। उत्तम छन्दों के उदाहरणार्थ निम्न दोहे विशेषतया द्रष्टव्य हैं :—

३, ८, ३१, ३७, ७०, ७५, ७६, ८१, ८४, १५७, २००, ३१८, ३३७, २४८, ४०२, ४०६, ४१०, ४१७, ४१२, ५०५, ५५१, ५५९, ५८१, ५८४, ६३५, ६५९, २१५, २६९, ३१२, ३१७, ३४१, ४०४। इत्यादि—कुछ उदाहरण भी लीजिये।

बरन, बास, सुकुमारता, सबही रही समाय।
पखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाय॥
( मीलित अलंकार )

लिखन बैठि जाकी सबिहि गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

सायक सम घायक नयन रँगे त्रिबिधि रँग गात।
झखौ निरखि दुरि जात जल लखि जल जात लजात॥

मोहिय को छुटि मान गो निरखत ही ब्रज राज।
रही घरिक लौं मान सी मान किये की लाज॥

बहै सदा पशु नरन को प्रेम पयोधि पगार।
गिरि ते ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार॥

इन्होंने बहुत से ऐसे ऊँचे और ख़ास अपने विचार लिखे हैं कि इनकी चातुर्य्य की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। देखिए ७१, ७२, ८२, ८३, १०६, १६२, १६७, २४०, ३०६, ३३८, ४०२, ४७५, ५३२, ७०० इत्यादि।

करत मलिन आछो छबिहि हरत जु सहज बिकासु।
अंग राग अंगनि लग्यो ज्यों आरसी उसासु॥

पहिरि न भूषन कनक के कहि आवत यहि हेत।
दरपन कैसे मोरचे देह दिखाई देत॥
अंग अंग प्रतिबिम्ब परि दरपन से सब गात।
दोहरे, तिहरे, चौहरे, भूषन जाने जात॥
डीठि बरत बाँधी अटनि चढ़ि धावत न डरात।
इतै उतै मन दुहुन के नट लौं आवत जात॥
जूठ जानि न संग्रहे मनु मुँह निकसे बैन।
याही सों माने किये बातन को बिधि नैन॥
बिरह बिकल बिनही लिखी पाती दई पठाय।
आंक बिहीनीयैं सुचित सूने बाँचत जाय॥
पत्राही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहै आनन ओप उजास॥

ऊँचे ख़यालात भी देखने याेग्य हैं।

वाहि लखे लोयन लगै कौन जुवति की जोति।
जाके तन की छाँह ढिग जोन्ह छाँह सी होति॥

दूर की कौड़ी भी ख़ूब लाते थे।

भई जुतन छबि बसन मिलि बरनि सकै सुन बैन।
अंग ओप आंगी दुरी आंगी अंग दुरै न॥

बारीक ख़यालात भी ख़ूब ही रक्खे हैं।

मानहु बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोंछन को किये भूषन पायन्दाज॥
भीगे तन दोऊ कँपत क्यों हूँ जपु निबरै न।

इनकी ख़सूसियतें भी द्रष्टव्य हैं—ऊपर लिखे हुए दोहों में 'पहिरि न भूषन' देखिये। इन्होंने संयोगादि के दो एक चोज़ भी कहे हैं जो द्रष्टव्य हैं।

नहिँ हरि लौं हियरा धरौं नहिँ हर लौं अरधंग।
एकत ही करि राखिये अंग अंग प्रत्यंग॥

इसे पढ़ कर—

"मन तो श्रुदम् तो मन् शुदी—मन् तन् शुदम् तो जाँ शुदी।
ता कस न गोयद बादऽज़ाँ—मन् दीगरम् तो दीगरी"॥

याद आता है। इन्होंने बहुत से ऐसे विचार और भाव लिखे हैं कि बड़े बड़े कवियों ने भी इनके सामने उनके लिए हाथ फैलाये हैं। एकाध स्थानों पर इन्होंने औरों के भी कुछ भाव लिये हैं।

नई लगनि, कुल की सकुच, बिकल भई अकुलाय।
दुहूँ ओर ऐँची फिरै फिरकी लौं दिन जाय॥ बिहारी।

धाई फिरै फिरकी सी दुहूँ दिसि देव दुवौ गुन जोरि कै ऐँची॥ देव।

पूरन प्रीति हिये हिरकी खिरकी खिरकीन फिरै फिरकीसी॥ देव।

बाल काहि लाली भई लोयन कोयन माहँ।
लाल तिहारे दृगनि की परी दृगन में छाहँ॥ बिहारी।
काहू के रंग रँगे दृग रावरे रावरे रंग रँगे दृग मेरे॥ देव।
नेह न नैनन को कछू उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाय॥ बिहारी।

छलकै चहूँघा अश्रु जल को प्रवाह पैन नेकु विरहागिनि की तपनि बुझाय है ॥ दूलह ।

नैना धैना करत हैं उरज उमेठे जाहिँ ॥ रहीम ।

लगा लगी लोयन करैं नाहक मन बँधि जाहिँ ॥ बिहारी ने भाव लिया ।

भई रहति नट की बटा अटकी नागरि नेह ॥ बिहारी ।

भूतल ते नभ, नभ ते अवनी अग उछलै नट का बटा हुआ ॥
सीतल ।

सायक सम घायक नयन रँगे त्रिबिधि रँग गात ।
झखौ बिलखि दुरि जात जल लखि जल जात लजात ॥ बिहारी ।
कंज सकोच गड़े रहैं पंक मैं मीनन बोरि दियो दहनीरन ॥ दास ।
उठे राम अति प्रेम अधीरा । कहुँ धनु, कहुँ निषंग, कहुँ तीरा ॥
तुलसीदास ।

कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल ।
कहूँ मुरलि, कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट बनमाल ॥ बिहारी ने लिया ।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग ॥ बिहारी ।

यह भाव केशव, पद्माकर एवं अन्य कई कवियों ने कहा है । केशवदास का भाव है ।

पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि ।
आप आपही आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥ बिहारी ।
स्यामही स्याम रही रटि कै पुनि ह्वै गई मूरति नन्दकिसोर की ॥
पद्माकर ।

भरि गुलाल की मूठि सों गई मूठि सी मारि ॥ बिहारी ।

डीठि सी डीठि लगी इनके उनके लगी मूठि सी मूठि गुलाल की ॥

पद्माकर ।

साहित्य-सङ्गीत-कला-विहीनः ।

साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः ॥ भर्तृहरि ।

तन्त्री नाद, कबित्त रस, सरस राग, रति रंग ।

अन बूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ॥ बिहारी ने लिया ।

इतने बड़े शृङ्गारी होकर भी इन्होंने दो एक छन्द भक्ति के भी लिखे हैं। इनका अद्वैत मत जान पड़ता है। परन्तु इनको भक्त कहना बितंडा मात्र है जब ये स्वयं लिखते हैं किः—

ताहि देखि मन तीरथनि बिकटनि जाय बलाय ।

जा मृगनैनी के सदा बेनी परसति पाय ॥

इनके भक्ति छन्दों के ये उदाहरण हैंः—

मोर मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल ।

यहि बानिक मो मन बसो सदा बिहारी लाल ॥

मैं देख्यो निरधार यह जग काचो काँच सो ।

एकै रूप अपार प्रति बिम्बित लखियत नहाँ ॥

जप माला, छापा, तिलक, सरै न एको काम ।

मन काचे नाचे बृथा, साँचे राचे राम ॥

ब्रज बासिन को उचित धन जो धन रुचि तन कोय ।

सुचित न आयो सुचितई कहो कहाँ ते होय ॥

सूमता के भी यह कवि प्रतिकूल था ।

मीत न नीत, गलीत यह जो धरिये धन जोरि।
खाये खरचे जो बचै तौ जोरिये करोरि॥
जेती सम्पति कृपिन के तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यों ज्यों उरज त्यों त्यों होत कठोर॥

यह कवि ऐसा खरा मनुष्य था कि इसने महाराजा जयपुर के यहाँ रहते हुए भी अपना ग्रंथ उनके नाम पर नहीं बनाया और उनकी प्रशंसा में केवल ७ या आठ दोहे कहे। इसके साथ कलि के दानियों की निन्दा भी कर दी। इससे जान पड़ता है कि इस कवि का अच्छा मान जयपुर में भी नहीं हुआ। भूषणजी बिहारी से कवित्व शक्ति में कम थे परन्तु उनके शिवाजी सम्बन्धी छन्द बिहारी के जैसाह वाले छन्दों से कहीं अच्छे हैं। इससे जान पड़ता है कि उत्तम छन्द केवल इच्छा से नहीं बनता वरन् जब चित्त से उसके विषय उमड़ और उत्साह उठते हैं तभी ऐसे छन्द बनते हैं। बिहारीजी ने शिवाजी के पराजय का हाल स्पष्ट नहीं लिखा यद्यपि ख़ास जैसाहि ने उन्हें हराया था। इससे जान पड़ता है कि मुग़लों की ओर से जैसाहि का शिवाजी से लड़ना इन्हें भला न लगा। इस बात से प्रच्छन्नरूप से इनका जातीय प्रेम भी देख पड़ता है। कलियुग के दानियों की यों निन्दा हुई है:—

कब को टेरत दीन रट होत न स्याम सहाय।
तुम हू लागी जगत गुरु जगनायक जग बाय॥
थोरेई गुन रीझबी बिसराई वह बानि।
तुम हू कान्ह मनो भये आजु कालि्ह के दानि॥

बिहारी ने अपनी कविता में धर्म्मसम्बन्धी आचार-विचारों का एवं ऐतिहासिक घटनाओं का भी बहुत हवाला दिया है। इसी प्रकार लोगों के विश्वासों पर भी इनके कई छन्द अवलम्बित हैं।

पूस मास सुनि सखिन पै साईं चलत सवार।
लै कर बीन प्रबीन तिय गायो राग मलार॥

इसमें विश्वास यह है कि मलार गाने से पानी बरसै और पूस की वृष्टि अकाल वृष्टि है। इस पर विश्वास है कि जो अकाल वृष्टि के दिन घर से चलै उसकी अकाल मृत्यु हो। सो मलार से पति न जा सकैगा।

"फिरत काक गोलक भयो दुहूँ देह जिउ एक"। इसमें यह विश्वास है कि कौवे के आँख का गोला एकी होता है और वह यथेच्छया उस गोले को किसी आँख में लगा कर देख सकता है। वास्तव में यह बात नहीं है। "कछु जानत जल थम्भ बिधि दुरजोधन लौं लाल"। कहा जाता है कि दुरजोधन जल-थम्भन-विधि जानता था। बिहारी ने अन्तिम शतक में कुछ दोहे नीति और शिक्षा के भी अच्छे कहे हैं।

जो शिर धरि महिमा मही लहियत राजा राय।
प्रगटत जड़ता आपनी सुमुकुट पहिरत पाय॥
सीतलता रस बास की घटै न महिमा मूर।
पीनस वारे जो तजैं सोरा जानि कपूर॥
बड़े न हूजे गुननि बिनु बिरद बड़ाई पाय।
कनक धतूरे सों कहत गहनो गढ़ो न जाय॥

कनक कनक तै सौगुनो मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है यह पाये बौराय॥
बढ़त बढ़त सम्पति सलिल मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत पुनि सु न घटै बरु समूल कुम्हिलाय॥

इस महाकवि ने यत्र तत्र अपनी कविता में मज़ाक भी ख़ूब रक्खा है। इसके उदाहरण हर जगह मिलेंगे।

बिहारीलाल ने आँखों का भी ख़ूब वर्णन किया है। बहुत से दोहे प्रधान अथवा गौण रूप से आँखो के विषय में हैं। इन्होंने नेत्रों की लड़ाई का भी कथन किया है। आँखों में आँख लगने से आँख नहीं लगती, डीठि में डीठि पड़ने से डीठि किरकिरी हो जाती है, इत्यादि इनके बड़े रुचिकर विषय हैं। कई स्थानों पर इन्होंने कानन (जंगल), कान, और नैन का सम्बन्ध दिखा कर वर्णन किया है। थोड़ी सी बात को भी बिहारी ऐसा कहते हैं कि वह बहुत उत्तम लगती है। इन्होंने रुखाई और चिकनाई का साथ साथ ख़ूब वर्णन किया है (रूखे कैसे होत ये नेह चीकने नैन)। दोहा एक बहुत ही छोटा छन्द है अतः उस में यह भी गुण है कि थोड़ी सी भी उत्त-मता होने से वह चमक उठता है। यदि सवैया या घनाक्षरी में उतनी ही उत्तमता हो तो शेष छन्द में भरती के पद लाने पड़ेंगे जिससे कुल छन्द शिथिल हो जायगा। इस कारण से भी बिहारी के दोहे बड़े भले लगते हैं और इनका यश उज्ज्वल बनाये हुए हैं। परन्तु फिर भी यह असम्भव है कि बिहारी ने समस्त जीवन छन्द रचना कर के भी केवल ७०० दोहे बनाये हों। हमारा तो अनुमान

है कि इन्होंने हज़ारों दोहे बनाये होंगे और उनमें से ये ७०० दोहे चुन लिये और शेष साधारण या शिथिल दोहों का मोह न कर के उन्हें फाड़ डाला। कवि जन अपने बुरे छन्दों पर भी पुत्रवत् स्नेह रखते हैं परन्तु बुरे लड़कों की भाँति भले लड़कों का भी भाग बँटा कर वे पैतृक सम्पत्ति छिन्न भिन्न कर देते हैं। यदि बिहारी के चार पांच हज़ार दोहे होते और उनमें से ये ७०० अच्छे होते तो इनका उतना नाम कभी न होता जितना कि केवल ७०० परमोत्तम दोहों के होने से हुआ। निकृष्ट छन्द बोझ की भाँति सत्कवि को भी थका-कर उसे डुबो देते हैं पर मोहवश कवि गन उस बोझ को फेंक नहीं सकते। बिहारी इस बोझ को छोड़ कर यश के समुद्र में ऊँचे तैर रहे हैं।

इनकी कविता में काइयांपन भरा पड़ा है सो उसमें इशारे-बाज़ी की कोई हद नहीं है। इनके छन्द इतने अच्छे हैं कि बहुत से मसल से हो गये हैं ('बातै हाथी पाइये बातै हाथी पावँ' इत्यादि)। इनके सामयिक दोहे प्रायः मौक़े मौक़े पर कहे जाते हैं।

हिन्दी में केवल बिहारीलाल ने उर्दू के ढंग की कविता भी की है और इन्हें कृतकार्य्यता भी मिली है। इनके बराबर किसी ने भी चोज़ नहीं कहे हैं और इनकी कविता सब सत्य है। यह आप-बीती ख़ूब कहते थे और जगबीती भी ख़ूब देखते थे। स्त्रियों के कोमल स्वभाव के विषय इस रसिक शिरोमणि का निष्कर्ष दर्शनीय और प्रत्येक विवाहित मनुष्य के पूर्णतया ध्यान देने के योग्य है।

पति ऋतु औगुन गुन बढ़त मान माह को सीत।<br>
जात कठिन ह्वै अति मृदौ रवनी मन नवनीत॥

इसी प्रकार की बातों के बाहुल्य के कारण सतसई पढ़ने में चित्त कभी उकताता नहीं है। यह बड़ाही चित्ताकर्षक ग्रन्थ है। इसके कुछ दोहे तो ऐसे हैं कि उनका तात्पर्य्य थियेटरों में ऐक्ट् करने के योग्य है। इस कथन के उदाहरणस्वरूप वह तीन दोहे समझने चाहिएँ जो ऊपर नेचर निरीक्षण के उदाहरणों के अन्त में लिखे गये हैं। जैपूर के आमेरगढ़ान्तर्गत शीश महल का भी इन्होंने बड़ा उत्तम वर्णन किया है।

प्रति बिम्बित जैसाहि दुति दीपति दर्पन धाम।
सब जग जीतन को कियो काय ब्यूहमनु काम॥

इस शीश-महल को हमने भी देखा है। इसमें हज़ारों छोटे छोटे अंगुल अंगुल डेढ़ डेढ़ अंगुल के शीशे लगे हैं और हर ओर दर्शक का रूप देख पड़ता है और यह सचमुच जान पड़ता है कि काय का व्यूह सा बना है। इसकी उपमा बड़ी ही उत्तम है।

बिहारी ने बहुत सी बातों का वर्णन किया है परन्तु स्त्री को यह सबसे अधिक चित्ताकर्षक समझते हैं।

यक भीजे, चहले परे, बूड़े, बहे हजार।
किते न औगुन जग करे नै बै चढ़ती बार॥
ताहि देखि मन तीरथनि बिकटनि जाय बलाय।
जा मृगनैनी के सदा बेनी परसति पाय॥

कुल बातें सोच कर हम बिहारी को बहुत ही उत्तम कवि समझते हैं और तुलसीदास, सूरदास, और देव को छोड़ कर ये महाशय सर्वोत्कृष्ट कवि हैं।

# महाकवि भूषण, त्रिपाठी ।

हिन्दी-साहित्य-सेवियों में शायद ही कोई ऐसा हो जो "भूषण" की कविता से परिचित न हो। वीर रस में इनके जोड़ का दूसरा कवि हिन्दी में एक भी नहीं है वरन् यों कहना चाहिए कि इन्होंने इस रस को ऐसा अपना लिया है कि इसका नाम लेते ही बरबस भूषणजी का स्मरण हो आता है। इनके विषय में हमने सबसे पहले "समालोचक" पत्र में, जिसे जयपुर-निवासी स्वर्गवासी मिस्टर जैनवैद्यजी प्रकाशित किया करते थे, एक लेख लिखा था। उसके पश्चात् काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के अनुरोध से हमने इनके सभी प्राप्य ग्रन्थों का "भूषणग्रन्थावली" के नाम से सम्पादन करना प्रारम्भ किया और वह "नागरी-प्रचारिणीग्रन्थमाला" में निकलने लगे। तीन वर्ष के पश्चात् वह "ग्रंथावली" अब समाप्तप्राय हुई है। इतने बीच में हम ने भूषणजी पर एक लेख कलकत्ता के "देव-नागर" में भी निकाला जिस पर दो एक महाशयों ने कुछ लिखा भी पर हमें अपने लेख के विरुद्ध कोई बात सप्रमाण विदित न हुई। नागरी-प्रचारिणीग्रन्थमाला में प्रकाशित अपनी "भूषण-ग्रन्थावली" में हमने भूषणजी के विषय में ७७ पृष्ठों की एक भूमिका लिखी है जिसमें यथा शक्ति हमने इस कविरत्न की पूर्ण समालो-चना की है और उसकी जीवनी भी दी है। यह "भूषणग्रन्थावली"

उक्त सभा से मिल सकती है। इस छोटे से लेख में उसी भूमिका का सारांश हम देते हैं और दो एक नई बातें भी लिखते हैं।

भूषणजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण कश्यप गोत्री त्रिपाठी (तिवारी) थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर था एवं कविवर चिन्तामणि, महाकवि मतिरामजी और नीलकंठ कवि उपनाम जटाशङ्कर इनके भाई थे। सब भाइयों में इनका दूसरा नम्बर था। यह त्रिविक्रमपुर ( वर्तमान तिकवाँपुर ) में रहते थे जो यमुना नदी के बायें किनारे पर ज़िला कानपुर परगना व डाकख़ाना घाटमपुर में मौज़ा "अकबरपुर बीरबल" से दो मील की दूरी पर बसा है। कानपुर-हमीरपुर पक्की सड़क पर कानपुर से ३० वें एवं घाटमपुर तहसील से ७ वें मील पर "सजेती" नामक एक ग्राम है जहाँ से "तिकवाँपुर" केवल दो मील पर रह जाता है। "अकबरपुर बीरबल" का हवाला "शिवराजभूषण" के छन्द नम्बर २७ में है। रत्नाकरजी श्रीदेवीजी के बड़े भक्त थे। हम ने "भूषणग्रन्थावली" की भूमिका में सप्रमाण सिद्ध किया है कि भूषणजी का जन्म-काल संवत् १६९२ ( सन् १६३५ ) के आस पास का है और संवत् १७७२ ( सन् १७१५) के लगभग इनका स्वर्गवास होना मालूम होता है। प्रायः २० वर्ष तक यह बिलकुल अपढ़ और निकम्मे थे और अपने बड़े भाई चिन्तामणिजी की कमाई से अपना बसर करते थे। एक दिन इनकी बड़ी भावज ने इन्हें भोजन करते समय लवण माँगने पर ऐसा कटु वाक्य कहा कि यह भोजन छोड़ तत्काल चल दिये। इसी समय से बाहर जाकर इन्होंने पढ़ने लिखने में विशेष श्रम किया और आठ

दस वर्ष के अन्दर यह अच्छे विद्वान् और कवि हो गये। जान पड़ता है कि सं० १७२२ के लगभग ३० वर्ष की अवस्था में यह हृदयराम सुत रुद्रराम सुलंकी चित्रकूटाधिपति के यहाँ थे और उसी समय इन्होंने अपनी भद्र कविता के कारण "कवि-भूषण" की उपाधि पाई। यथाः—

"कुल सुलंकि चितकूट पति साहस सील समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई हृदयराम सुत रुद्र"॥
(शिवराज भूषण। छन्द नं० २८)

उस समय भी इनकी कवित्व शक्ति ऐसी बढ़ी चढ़ी हुई थी कि जिसका परिचय नीचे लिखे छन्द से हो जायगाः—

"बाजि बम्ब चढ्यो साजि बाजि जब कलों भूप गाजी महाराज राजी भूषन बखानते। चंडी की सहाय महि मंडी, तेज ताई, ऐंड छंड़ी राय राना जिन दंडी आनि आन ते॥ मंदी भूत रवि, रज बन्दी भूत हठ धर, नन्दी भूतपति भो अनन्दी अनुमान ते। रंकी भूत दुवन, करंकी भूत दिग दन्ती, पंकी भूत समुद सुलंकी के पयान ते"॥ (स्फुट काव्य छन्द नम्बर २)।

भूषणजी का वास्तविक नाम कुछ और था। भूषण तो उनकी उपाधि है। पर अब वास्तविक नाम का कहीं पता तक नहीं लगता।

रुद्रराम सोलंकी के यहाँ से कतिपय लोग इनका दिल्लीश्वर औरंगज़ेब के यहाँ जाना लिखते हैं पर इसका कुछ भी प्रमाण नहीं बरन अनेक विचारों से यह बात अग्राह्य सिद्ध होती है। जो कहानियाँ इनके औरङ्गज़ेब के दरबार में होने और उससे झगड़ कर

चले जाने के विषय में प्रसिद्ध हैं उनका बिलकुल असत्य होना हम सिद्ध समझते हैं। वास्तव में उनका भद्दापन आपही उनकी असत्यता का प्रमाण है। रुद्रराम के यहाँ से या तो भूषणजी सीधे शिवाजी के यहाँ सं० १७२४ के अन्त तक पहुँचे होंगे अथवा अवधूतसिंह के यहाँ होते हुए गये होंगे। अवधूतसिंह का भूषणजी ने एक कवित्त कहा है ( स्फुट काव्य छन्द नम्बर ४ ) पर इनका इतिहास में कहीं पता नहीं लगता। सम्भव है कि "शङ्कर ( रुद्र = रुद्र राम अथवा शिव = शिवाजी ) अवधूत" के हिसाब पर भूषणजी ने रुद्रराम या शिवाजी को ही "अवधूतसिंह" करके एक कवित्त में लिख दिया हो। अस्तु सन् १६६७ के अन्त में ३२ वर्ष की अवस्था में भूषणजी शिवाजी के यहाँ पहुँचे और अचानक एक देवालय पर इनकी महाराज से भेंट हो गई। इन्होंने शिवाजी को पहिचाना नहीं पर उनके कहने पर अपना एक छन्द ( शि० भू० छं० नं० ५६ ) १८ बार पढ़ सुनाया। इस पर महाराज ने इन्हें १८ लक्ष मुद्रा, १८ ग्राम इत्यादि पुरस्कार में दिये और बड़े सन्मान के साथ इन्हें अपना राजकवि बनाया। सुनते हैं कि इसी अवसर पर भूषणजी ने अपनी भावज के पास एक लाख रुपये का लवण भेज दिया था। इसी समय से सं० १७३० तक भूषणजी ने अपना सुप्रसिद्ध ग्रंथ "शिवराजभूषण" निर्मित किया। सं० १७३१ में यह कुछ दिन के लिए अपने घर पर आये पर रास्ते में छत्रसाल बुँदेला के यहाँ भी हो लिये। छत्रसाल ने इनका बड़ा सन्मान किया और चलते समय इनकी पालकी का डंडा अपने कन्धे पर रख लिया। भूषणजी अत्यन्त प्रसन्न होकर पालकी से कूद पड़े

और इन्होंने चार पाँच उत्तमोत्तम छन्द महाराज की प्रशंसा में तत्काल बनाये। ( छत्रसाल दशक के छन्द नम्बर ४ व ५ )। कुछ दिन घर पर रह कर भूषणजी ने कमायूँ महाराज के यहाँ जा कर उनकी प्रशंसा का एक छन्द पढ़ा ( स्फुट काव्य छन्द नम्बर ६ )। महाराज ने इन्हें एक लाख रुपया भेंट देना चाहा पर इनकी विशेष ख़ातिर न की जिस पर रुष्ट होकर बिना रुपया लिये ही यह चल दिये। कुछ दिनों बाद भूषणजी महाराज शिवाजी के यहाँ फिर गये और समय समय पर उनकी प्रशंसा के छन्द बनाते रहे जिन में "शिवाबावनी" के भी छन्द हैं। शायद इन्होंने दो चार और ग्रंथ भी बनाये हैं पर उनका ठीक पता नहीं चलता। "शिवसिंह सरोज" में इनके तीन अन्य ग्रंथों के नाम दिये हैं ( अर्थात् भूषण-हजारा, भूषणउल्लास और दूषणउल्लास ) और "हजारा" का होना कविवर कालिदास त्रिवेदी ने भी लिखा है पर इन ग्रंथों का ठीक पता अब तक कहीं नहीं चला है। इसमें सन्देह नहीं कि भूषणजी के और कई ग्रंथ हैं ज़रूर पर उन किसी का पता नहीं। सं० १७३७ में शिवाजी के स्वर्गवास होने पर भूषणजी कदाचित् छत्रशालजी के यहाँ होते हुए फिर घर लौट आये पर कभी कभी छत्रशाल के यहाँ यह बराबर आते जाते रहे। सं० १७६४ में साहूजी का दिल्ली से छुटकारा हुआ। उस अवसर पर यह अवश्य ही उनके यहाँ गये होंगे। साहूजी विषयक इनका एक उत्तम कवित्त विदित है ( स्फुट काव्य छन्द नम्बर ७ ) और छत्रशालजी की प्रशंसा करते समय तक यह साहूजी को नहीं भूले। यथाः—

"राजत अखंड तेज, छाजत सुजस बड़ो, गाजत गयन्द, दिग्गजन हिये साल को। जाहि के प्रताप सों मलीन आफताप होत, ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को॥ साज सजि गज, तुरी, पैदर कतार दीन्हें भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को? और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊँ अब साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥"

( छत्रशाल दशक छन्द नं० १० )।

इससे स्पष्ट विदित होता है कि साहूजी ने शिवाजी की भाँति भूषणजी की पूरी ख़ातिरदारी की होगी।

सं० १७६७ के निकट भूषणजी अपने अनुज मतिरामजी की प्रेरणा से बूँदी नरेश "राव राजा बुद्धसिंह" के दरबार में गए और उनके वृद्ध प्रपितामह महाराज छत्रसाल हाड़ा विषयक दो कवित्तों के सिवा निम्न लिखित कवित्त भी पढ़ा :—

"रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की निपट जु नाँगी डर काहू के डरै नहीं। भोजन बनावै नित चोखे खानखानन के सोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं॥ उगिलत आसौ तऊ सुकल समर बीच राजै राव बुद्ध कर बिमुख परै नहीं। तेग या तिहारी मतवारी है अछक तो लौं जौ लौं गजराजन की गजक करै नहीं॥"

रावबुद्धसिंह ने इनकी वैसी ख़ातिर बात न की जैसी यह चाहते थे सो थोड़े ही दिनों में यह वहाँ से लौट पड़े। राह में महाराज छत्रसाल बुँदेला के यहाँ पहुँचने पर इन्होंने बुँदेला के महाराज का जो छन्द पढ़ा उसमें "राव राजा" बुद्धसिंह की साफ़ शिकायत है। ऊपर उद्धृत छत्रसाल दशक का छन्द नं० १० देखिये।

सं० १७७२ के निकट जब महाराज साहूजी ने उत्तर का धावा किया था, भूषणजी ने उनकी प्रशंसा में निम्न लिखित छन्द बनायाः—

"बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारै कपि लौं पुकारै कोऊ धरत न सार है। रूम रूँदि डारै, खुरासान खूँदि मारै, खाक खादर लौं झारै, ऐसी साहु की बहार है॥ कक्कर लौं, बक्खर लौं, मक्कर लौं चले जात टक्कर लेवैया कोऊ वार है न पार है। भूषन सिरोज लौं परावने परत फेरि दिल्ली पर परति परिन्दन की छार है॥

(स्फु० का० छन्द नं० ७)।

इस समय भूषनजी की अवस्था ८० वर्ष की थी पर उनमें उद्दंडता वही भरी हुई थी। इसके पीछे उनके जीवित रहने का कोई प्रमाण नहीं मिलता और शायद इसी साल के आसपास उनका देवलोक हुआ। भूषणजी के घरेलू चरित्रों का हाल प्रायः कुछ भी विदित नहीं है, पर यह पुत्रवान् थे क्योंकि तिकवाँपुर में पता लगाने से हमें विदित हुआ है कि ज़िला फ़तेहपुर एवं कहीं मध्यप्रदेश में इनके वंशज अब भी वर्तमान हैं, एवं वृन्द व सीतल कवि भी इन्हीं के वंशज प्रसिद्ध हैं। भूषणजी पूर्णतया धन-सम्पन्न होगये थे और बड़े आदमियों की भाँति रहते थे। देश भर में और राजा महाराजाओं में इनका सदैव बड़ा मान रहा। इनकी कविता में सैकड़ों स्थानों और तत्कालीन ऐतिहासिक पुरुषों के नाम और वर्णन आये हैं जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने देशाटन भी ख़ूब किया था। ये बड़े ही प्रभावशाली कवि होगये हैं और इनका जैसा सन्मान अथवा धन किसी हिन्दी कवि ने अद्यापि उपार्जन नहीं किया।

हम ने भूषणग्रन्थावली में शिवराजभूषण, शिवाबावनी, छत्रशाल दशक, और स्फुट काव्य यह चार ग्रन्थ प्रकाशित करवाये हैं। प्रायः यह सभी ग्रन्थ पहले से प्रकाशित हो चुके थे पर अत्यन्त अशुद्ध और विकृत रूप में। हम ने १७ ग्रन्थों को इस सम्बन्ध में देख कर और अनेक प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रतियों को मिलान करके "ग्रन्थावली" को टिप्पणी सहित संशोधित करके "नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला काशी" में छपवाया है। पहले की मुद्रित प्रतियां में शिवराजभूषण में प्रायः तीन सौ छन्द हैं पर हमारी प्रति में ३८२ छन्द दिये गये हैं। शेष तीन ग्रन्थों के कवित्त हमने ठौर ठौर एक ग्रन्थ से दूसरे में अदल बदल कर दिये हैं एवं उनका क्रम भी समुचित प्रकार से संशोधित कर दिया है। इससे वे ग्रन्थ अब ठीक रूप में आगये हैं।

भूषणजी की कविता से तत्कालीन इतिहास की प्रसिद्ध प्रसिद्ध घटनाओं का पता भलीभांति लग जाता है। इतना ही नहीं वरन इनके अत्यन्त सत्यप्रिय होने के कारण इनके ग्रन्थों से इतिहास को भी अच्छी सहायता मिल सकती है। इन्होंने उस समय की प्रचलित काव्य-प्रणाली को छोड़ कर वीर रस की ओर ध्यान दे एक नवीन प्रकार की कविता का संचार किया। इससे हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि इनके पहले वीर काव्य था ही नहीं परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उक्त रस पर इतना अनुराग अन्य कवियों ने नहीं प्रकट किया था और न उसमें इतनी सफलताही किसी ने प्राप्त की थी। "हिन्दी-नवरत्न" में से वीर रस का पूर्ण प्रतिपादक एक मात्र

यही महाकवि है। अवश्यही वीर रस में हम रौद्र और भयानक रसों को सम्मिलित मानते हैं। यह कवि एक और बात में भी बड़ा भाग्यशाली था कि इसके शेष तीन भाई भी बहुत अच्छे कवि हो गये हैं यहाँ तक कि मतिरामजी तो नवरत्नों में ही सम्मिलित हैं और चिन्तामणिजी भी बड़े नामी कवि होगये हैं, एवं नीलकंठजी भी अच्छो कविता करते थे। हिन्दी में ऐसा दूसरा उदाहरण तो है ही नहीं पर शायद अन्य भाषाओं में भी न मिले! कोई दो सगे भाई किसी अन्य भाषा के सर्व्वोच्च कवियों में से न हुए होंगे और फिर यह कि शेष दो भाई भी उत्तम कवि हों!! ये भ्रातृ वर्ग धन्य हैं!!!

## भूषण के ग्रन्थों पर विचार।

(१) शिवराजभूषण। यह ग्रन्थ इस कविरत्न के प्राप्य ग्रन्थों में सबसे बड़ा है बरन इसीको ग्रन्थ का नाम दिया जा सकता है क्योंकि शेष तीन ग्रन्थ अधिकांश में बहुत छोटे और संग्रह मात्र हैं। इसमें भूषणजी ने अलंकारों का पूर्ण क्रम रखते हुए भी सभी छन्द शिवाजी की ही प्रशंसा में कहे हैं। किसी एक ही व्यक्ति की प्रशंसा में कोई दूसरा नामी अलंकार-ग्रन्थ हमने नहीं देखा है। केवल हमारे चचेरे भाई मिश्र नन्दकिशोरजी उपनाम लेखराज कवि ने जिनका हाल शिवसिंहसरोज एवं डाकृर ग्रियर्सन के (The Modern Vernacular Literature of Hindustan में लिखा हुआ है, श्रीगंगाजी पर "गंगाभूषण" नामक एक अलंकार-ग्रन्थ बनाया है। शिवराजभूषण को भूषणजी ने शिवाजी के यहाँ आतेही

सं० १७२४ से बनाना प्रारम्भ कर दिया था और प्रस्तुत क्रम से ही यह उसे १७३० तक बनाते रहे परन्तु कुछ कुछ अलंकारों के उदाहरण पीछे से जोड़े गये एवं अन्य हेर फेर समय समय पर होते रहे।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रीभगवतीजी की एक बड़े ही प्रभावोत्पादक छन्द द्वारा स्तुति की गई है और फिर राज-वंश वर्णन में रायगढ़ का अत्युत्तम वर्णन है। पीछे कवि-वंश में अपना भी ठीक पता भूषणजी ने दे दिया है। यदि चिन्तामणिजी से यह उस समय रुष्ट न होते तो उनका भी अवश्य नाम लिखते। मतिराम एवं जटाशंकरजी उस समय तक कवि थे ही नहीं और साधारण भाई भतीजों के वर्णन कवि वंश में नहीं हुआ करते। इसके पीछे अलंकारों का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है पर इनमें भी भूषणजी ने तत्कालीन मनुष्यों के वास्तविक चित्र खींच देने में ख़ूब ही कृतकार्यता प्राप्त की है। इनके अलंकारों के उदाहरण भी बड़े स्पष्ट हैं। कुछ थोड़े से अलंकारों को छोड़ और सभी के लक्षण एवं उदाहरण इन्होंने दिये हैं। भूषण ने परिणाम और दीपक अलंकारों के उदाहरण अन्य सभी आचार्य्यों से उत्तमतर कहे हैं पर विकल्प एवं सामान्य के उदाहरण किसी कारण अशुद्ध हो गये हैं। कभी कभी इनके लक्षण अन्य कवियों के लक्षणों के विरुद्ध हो गये हैं पर इन्होंने छन्द नम्बर ३७९ में लिख दिया है कि मैंने यह ग्रन्थ "लखि चारु ग्रन्थन निज मतो युत" बनाया है। भूषणजी भयानक रस के वर्णन में बहुत विशेषता रखते हैं। इन्होंने शिवाजी की शूरता और उसके

दल का इतना वर्णन नहीं किया है जितना कि शत्रुओं पर उसकी धाक का। शिवराज भूषण एक बड़ाही प्रशंसनीय ग्रन्थ है। वह संवत् १७३० की बुध शुदि १३ को समाप्त हुआ पर महीना लिखा नहीं है। उक्त संवत् के श्रावण और कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी बुध के दिन पड़ती है सो भी कार्तिक में बहुत कम पर सावन में विशेष। इससे जान पड़ता है कि सावन शुदि १३ बुधवार संवत् १७३० ( सन् १६७३ ईसवी ) को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। यह बड़ाही विशद ग्रन्थ है और हिन्दी में इसका पूर्ण मान है।

शिवा बावनी—यह भूषणजी के शिवाजी विषयक ५२ छन्दों का एक संग्रह है। प्राबल्य और गौरव में यह ग्रन्थ बहुत ही उच्च कोटि का है और इसके छन्द शिवराजभूषण के छन्दों से भी अधिक प्रभावोत्पादक हैं। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ीही है। कोई सन्देह नहीं कि इस के कवित्त शिवराज भूषण समाप्त होने के पीछे बने। इस बात को हमने अपनी "भूषणग्रन्थावली की भूमिका" में सप्रमाण लिखा है। यह अति उत्तम पुस्तक है और हिन्दी में इसके जोड़ के बहुत ग्रन्थ न मिलेंगे। उदाहरण में हम इसके केवल तीन छन्द यहाँ पर देते हैं:—

"गढ़न गँजाय गढ़धरन सजाय करि छाँड़ि केते धरम दुवार दै भिखारी से। साहि के सपूत पूत बीर सिवराज सिंह केते गढ़ धारी किए बन बन चारी से॥ भूषन बखाने केते दीन्हें बन्दीखाने, सेख सैयद हजारी गहे रैयति बजारी से। महता से मुगल, महाजन से महाराज, डाँड़ि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से" ॥ १ ॥

"दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी डग्ग नाचे डग्ग पर रुंड मुंड फरके। भूषन भनत बाजे जीति के नगारे भारे सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके॥ मारे सुनि सुभट पनारे वारे उद-भट तारे लगे फिरन सितारे गढ़ धर के। बीजापुर बीरन के, गोल-कुंड धीरन के, दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके" ॥२॥

"डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती, बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिंदुवाने की। कढ़ि गई रैयति के मन की कसक सब, मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की॥ भूषन भनत दिल्ली पति दिल धक धका सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की। मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय सीस, खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की" ॥३॥

छत्रशाल दशक—इस छोटे से ग्रन्थ में दो दोहे और आठ कवित्त महाराज छत्रशाल बुँदेला के हैं और वही दोनों दोहे व दो अन्य कवित्त छत्रशाल हाड़ा बूँदी नरेश के। इतना छोटा सा ग्रन्थ होने पर भी यह हिन्दी भाषा की एक नामी पुस्तक है और इसे निकाल डालने से हिन्दी-साहित्य में एक प्रकार की कमी आ जायगी! बस इसीसे पाठक इसकी बहुमूल्यता को बोध कर सकते हैं। यह ग्रन्थ भाषा-साहित्य में एक दम अद्वितीय है, क्योंकि इसका एक भी छन्द किसी प्रकार से न्यून नहीं कहा जा सकता। इस ग्रन्थ के छन्द स्फुट रूप में समय समय पर सं० १७३१ से लेकर १७६७ तक बने और बाद को ग्रन्थ रूप में परिणत कर दिये गये। भूषणजी सच्चे ब्राह्मण थे, यह उन्होंने अपनी कविता से स्पष्ट सिद्ध कर दिया है। उन्हें मान से जितनी प्रसन्नता होती थी उतनी धन-

प्राप्ति से नहीं। इसका सर्वोत्कृष्ट प्रमाण यही है कि जितना धन उन्हें शिवाजी ने दिया उसका दशमांश भी छत्रशाल बुँदेला ने नहीं दिया पर बुँदेला महाराज ने उनका मान बहुत विशेष किया यहाँ तक कि स्वयं अपने कंधे पर उनकी पालकी का डंडा उठा कर रख लिया! वैसे ही भूषणजी ने जैसे जैसे भड़कते हुए रोमांच-कारी छन्द छत्रशाल के विषय में कहे हैं वैसे कवित्त शिवाजी के विषय में शायद ही दो चार मिल सकें!! धन्य भूषणजी धन्य!!! इस ग्रन्थरत्न के भी केवल दो उदाहरण हम यहाँ दे सकते हैं:—

"निकसत म्यान ते मयूखैं प्रलैभानु कैसी फारैं तम तोम से गयन्दन के जाल को। लागति लपटि कंठ बैरिन के नागिनि सी रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन के माल को॥ लाल छितिपाल छत्रसाल महा बाहुबली कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को? प्रति भट कटक कटीले केते काटि काटि कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को"॥

"रैया राय चम्पति को चढ़ो छत्रसालसिंह भूषन भनत सम-सेर जोम जमकैं। भादौं की घटा सी उठीं गरदैं गगन घेरैं सेलैं समसेरैं फेरैं दामिनी सी दमकैं॥ खान उमरावन के, आन राजा रावन के, सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं॥ वैहर बगारन की अरि के अगारन की नाँघतीं पगारन नगारन की धमकैं॥

स्फुट काव्य में भूषणजी के ९ स्फुट छन्द जो हमें मिल सके लिखे गये हैं। इस में भी बड़े ही प्रभावशाली छन्द हैं। इसमें दो छन्द शिवाजी के विषय में हैं, एक रुद्रराम सोलंकी का, एक राव बुद्धसिंह बूँदी-नरेश विषयक, एक अवधूतसिंह के बारे

में, एक शृंगार रस का ( जो कि इस रस में भूषणजी का इकलौता कवित्त है ), एक। कमायूँ नरेश के बाबत, एक साहूजी का और एक शम्भाजी पर। इन में से भी दो छन्द उदाहरणस्वरूप दिये जाते हैं :—

"जादिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह ता दिन दिगन्त लौं दुवन डाटियतु है। प्रलै कैसे धाराधर धमकैं नगारा धूरि धारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है॥ भूषन भनत भुवगोल को कहर तहाँ हहरत तगा जिमि गज काटियतु है। काँच से कचरि जात सेस के असेस फन कमठ की पीठि पै पिठी सो बाँटियतु है"॥

"मेचक कवच साजि बाहन बयारि बाजि गाढ़े दल गाजि रहे दीरघ बदन के। भूषन भनत समसेर सोई दामिनी है हेतु नर कामिनि के मान के कदन के। पैदरि बलाका धुरवान के पताका गहे घेरियत चहूँ ओर सूतेही सदन के। ना करु निरादर पिया सों मिलु सादर ये आए बीर बादर बहादर मदन के"॥

भूषणजी के अन्य ग्रन्थ हैं अवश्य पर उनका अब तक पता नहीं चला है।

## भूषण की कविता का परिचय।

भूषण महाराज ने उपयोगी वर्णनों के साथ भारत मुखोज्ज्वल-कारी शिवाजी और छत्रसाल जैसे प्रकांड महाराजों का यश वर्णन करके हिन्दी-भाषा और देश का भारी उपकार किया है। यदि इन में कोई वैसे बड़े काव्य के गुण न भी होते तो भी इनका मान इसी

कारण से अवश्य होता, पर यहाँ तो "सोने में सुगंध" की कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है। भूषणजी कविता के विचार से भी हिन्दी के नौ सर्वोच्च कवियों तक में उच्च आसन के अधिकारी हैं। इनकी कविता से हिन्दी-साहित्य के एक मुख्य अंग की पूर्ति हुई है और इनका नाम हिन्दी के साथ अटल हो गया है।

इनकी भाषा विशेषतया ब्रजभाषा है पर कहीं कहीं इन्होंने प्राकृत, बुँदेलखंडी, एवं खड़ी बोली का भी प्रयोग किया है। यत्र तत्र इन्होंने फ़ारसी, तुर्की और अरबी भाषाओं के भी असाधारण शब्द तक लिखे हैं पर दो चार स्थानों पर उनका अशुद्ध प्रयोग हो गया है। इन्होंने बहुत कम असाधारण एवं विकृत रूपधारी शब्द लिखे हैं। इस कवि का शब्दसमूह अधिकांश नामी कवियों से भी बढ़ा चढ़ा हुआ है। भूषण ने कुल मिला कर केवल दश प्रकार के छन्दों का व्यवहार किया है। इनकी भाषा और शब्द-योजना की रीति बहुत प्रशंसनीय है। यह महाशय अन्य कवियों की भाँति ऐसे छन्द प्रायः नहीं बनाते थे जो केवल नायक का नाम बदल देने से किसी भी व्यक्ति की प्रशंसा के हो सकते हों। इनके कवित्तों में सैकड़ों ख़ास घटनाओं का समावेश है। ऐतिहासिक घटनाओं के साथ इनकी सत्यप्रियता बड़ी प्रशंनीय है और इनमें स्वतन्त्रता की मात्रा अधिक थी। शिवाजी, छत्रशाल, कमायूँ-नरेश, एवं राव-बुद्ध तक से इन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता का व्यवहार रक्खा और उनकी त्रुटियों तक को प्रगट ही कर दिया। सत्य घटनाओं के साथ ख़याली और भड़कीले वर्णन इन्होंने बहुत कम किये हैं। इतिहास में शिवाजी

भवानी के भक्त लिखे हैं पर भूषणजी उन्हें शिवभक्त बतलाते हैं। इसमें अनेक कारणों से हमने भूषण का ही प्रमाण माना है। इन्होंने शिवाजी को विष्णु का अवतार माना है और बार बार इस पर ज़ोर दिया है। यह ठकुरसोहाती भी हो सकती थी, पर सम्भव है कि भूषणजी का मत हो कि राम, कृष्ण, इत्यादि सभी "अवतार" केवल बहुत बड़े मनुष्य मात्र थे। भूषणजी की कविता के प्राबल्य और उद्दंडता दर्शनीय हैं और उसमें उत्तम छन्दों की संख्या बहुत विशेष है। हमने इनके उत्तम कवित्तों की गणना की और उन्हें केशवदास एवं मतिराम से मिलाया तो इनकी कविता में वैसे छन्दों की संख्या एवं उनका परता अधिक ठहरा। इसीसे हमने भूषणजी का नम्बर बिहारी के बाद एवं इन दोनों के ऊपर रक्खा है।

भूषणजी में जातीयता का एक बहुत भारी गुण है। इन्हें हिन्दू जाति का जितना ध्यान और अभिमान था उतना हमने हिन्दी के किसी भी दूसरे कवि में नहीं पाया। वर्तमान समय की दृष्टि से इनकी मुसलमानों प्रति कटूक्तियाँ अत्यन्त अनुचित प्रतीत होती हैं पर उस समय इन दोनों में औरंगज़ेब के अधम बर्त्ताव के कारण भयंकर शत्रुता थी सो जातीयतावश भूषणजी ने मुसलमानों के विषय में जो बहुतेरे अत्यन्त विषगर्भित वाक्य लिखे हैं वे एक प्रकार से क्षन्तव्य कहे जा सकते हैं। कवियों की बात जाने दीजिए, उस समय के मुसलमान इतिहासकारों तक ने हिन्दुओं के विषय में भूषणजी की कटूक्तियों से कहीं बढ़ कर अनुचित बातें लिखी हैं। भूषण को हिन्दुओं का इतना ध्यान था कि चाहे जिसकी प्रशंसा

हो सभी में वह हिन्दुओं की बात ज़रूरही रख देते थे। वास्तव में इनकी कविता के नायक एक प्रकार से न शिवाजी हैं न छत्रशाल, न राव बुद्ध हैं न अवधूतसिंह, न शम्भाजी हैं न साहूजी, वरन इनके सच्चे नायक हैं हिन्दू! अन्य नायक लोग हैं "हिन्दुवान को अधार", "ढाल हिन्दुवाने की", इत्यादि। निदान भूषणजी की कविता हिन्दू-मय हो रही है।

इनकी कविता में कोई कहने याेग्य दूषण नहीं हैं। सब मिला कर निष्कर्ष यह निकलता है कि भूषण महाराज की कविता वास्तव में हिन्दी-साहित्य की भूषण है और वे सचमुच महाकवि हैं। अब हम शिवराजभूषण में से थाेड़े से उदाहरण देकर इस लेख को समाप्त करते हैं:—

पावक तुल्य अमीतन को भयो मीनन को भयो धाम सुधा को। आनँद भो गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को॥ भूतल माहिँ बली सिवराज भो भूषन भाषत सत्रु मुधा को। बन्दन तेज त्यों चन्दन कीरति साधे सिँगार बधू बसुधा कों॥ १॥

चढ़त तुरंग चतुरङ्ग साजि सिवराज चढ़त प्रताप दिन दिन अति जंग में। भूषन चढ़त मरहट्टन के चित्त चाव खग्ग खुलि चढ़ति है अरिन के अंग में॥ भौंसिला के हाथ गढ़ कोट हैं चढ़त अरि जोट ह्वै चढ़त एकु मेरु गिरि संग में। तुरकान गन व्योम यान हैं चढ़त बिनु मान है चढ़त बदरङ्ग नवरङ्ग में॥ २॥

कामिनि कंत सों, जामिनि चन्द सों, दामिनि पावस मेघ घटा सों। कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों।

भूषन भूषन सों तरुनी नलिनी नव पूषन देव प्रभा सों। जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सों॥ ३॥

अटल रहे हैं दिग अंतन के भूप धरि रैयति को रूप निज देस पेस करिकै। राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को बाना तजि भूषन भनत गुन भरिकै॥ हाड़ा रायठौर कछवाहे और गौर रहे अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै। अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि धीर धरि ऐंड धरि तेग धरि गढ़ धरि कै॥ ४॥

काज मही सिवराज बली हिंदुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै।
भूषन भू निर म्लेच्छ करी चहै म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै॥
हिन्दु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै।
चन्द अलोक ते लोक सुखी यहि कोक अभाग को सोक न छूटै॥ ५॥

यों सिर पै छहरावत छार हैं जाते उठैं असमान बभूरे।
भूषन भूधरऊ धरकैं जिनके धुनि धक्कन यों बल रूरे॥
ते सरजा सिवराज दिए कविराजन को गजराज गरूरे।
सुंडन सों पहिले जिन सोखि कै फेरि महा मद सों नद पूरे॥६॥

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरहू की सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है। साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर सिव की कथान मैं सनेह झलकत है॥ भूषन जहान हिन्दुवान को उबारिबे को तुरकान मारिबे को बीर बलकत है। साहिन सों लरिबे की चरचा चलति आनि सरजा के दृगन उछाह छलकत है॥ ७॥

उमड़ि कुड़ाल मैं खवास खान आये भनि भूषन त्यों धाए सिवराज पूरे मन के। सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर मूछैं तरराने

मुख बोर धीरजन के ॥ एकै कहैं मार मार सम्हरि समर एकै म्लेच्छ गिरे मार बीच बे सम्हार तन के। कुंडनि के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर ठौर जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के ॥ ८ ॥

अजौं भूतनाथ मुंड माल लेत हरषत भूतन अहार लेत अजहूँ उछाह है। भूषन भनत अजौं काटे कर बालन के कारे कुंजरन परी कठिन कराह है ॥ सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो कीन्हों कतलाम दिली दल को सिपाह है। नदी रन मंडल रुहेलन रुधिर अजौं अजौं रबि मंडल रुहेलन की राह है ॥ ९ ॥

सूबन साजि पठावत है नित फौज लखे मरहट्ठन केरी।
औरँग आपनि दुग्ग जमाति बिलोकत तेरियै फौज दरेरी ॥
साहि तनै सिव साहि भई भनि भूषन यों तुव धाक घनेरी।
रातहु द्योस दिलीस तकै तुव सैन कि सूरति सूरति घेरी १०

बानर बरार बाघ बैहर बिलार बिग बगरे बराह जानवरन के जोम हैं। भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं भीतर भवन भरे लीलगऊ लोम हैं ॥ ऐंड़ायल गज गन गैंड़ा गर रात गनि गेहन में गोहन गरूर गहे गोम हैं। सिवाजी कि धाक मिले खल कुल खाक बसे खलन के खेरन खबोसन के खोम हैं ॥ ११ ॥

ऐसे बाजि राज देत महाराज सिवराज भूषन जे बाज की समाजैं निदरत हैं। पौन पायहीन, दृग घूँघट में लीन, मीन जल में बिलीन क्यों बराबरी करत हैं ॥ १ ॥ सबते चलाक चित तेऊ कुलि आलम के रहैं उर अंतर में धीर न धरत हैं। जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं ॥ १२ ॥"

---

# महाकवि केशवदासजी ।

महाकवि केशवदास ने सत्रहवीं शताब्दी में कविता की है—इन्होंने कविप्रिया के द्वितीय प्रभाव में अपने कुल का इस प्रकार वर्णन किया हैः—ब्रह्मा के सनकादि मानसिक पुत्र थे और सनकादि के मानसिक पुत्र सनाढ्य हुए। परशुराम ने सनाढ्यों के पैर पखार कर उन्हें बहुत ग्राम दिये। रामचन्द्र ने उन्हें मथुरा मण्डल में ७०० ग्राम दिये। श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें फिर वही देश दिया।

सनाढ्यों के कुम्भवार उद्देश कुल में देवानन्द हुए। उनके जयदेव और जयदेव के दिनकर पुत्र हुए। इनसे अलाउद्दीन बादशाह बहुत ख़ुश रहता था। इन्होंने गया तीर्थ किया। दिनकर के गयागदाधर उनके जयानन्द और उनके त्रिविक्रम मिश्र पुत्र हुए। इन महाराज के गोपाचल क़िले के राजा ने पैर पूजे। त्रिविक्रम के पुत्र भावशर्म, और उनके सुरोत्तम मिश्र हुए। इनसे मानसिंह से अनबन थी परन्तु रानाजी ने इन्हें बीस गाँव दिये। इन सुरोत्तम मिश्र के पुत्र हरिहरनाथ हुए। ये महाशय तोमर पति के यहाँ रहे। हरिहर के पुत्र कृष्णदत्त हुए। महाराज रुद्र ने इनको पुराण की वृत्ति दी। कृष्णदत्त के पुत्र काशीनाथ हुए और इन्हीं काशीनाथ के बलभद्र, केशवदास और कल्यानदास पुत्र थे।

केशवदास के जन्म का संवत् भली भाँति हमको ज्ञात नहीं है। स्वयं ओड़छे में जाकर हमने केशवदास के विषय में सब लोगों से

पूछ जाँच की परन्तु शोक कि वहाँ कोई इनके विषय में कुछ भी नहीं जानता। बहुत देर पूँछ जाँच के पीछे लोगों ने एक इमली दिखा कर कहा कि यहीं केशवदास का मकान था। इससे अधिक उनके विषय में ओड़छे में कुछ भी नहीं मालूम पड़ा।

केशवदास ने संवत् १६४८ वि० में रसिकप्रिया बनाई थी। यह एक उत्तम ग्रन्थ है और केशव ने केवल पाँच ग्रंथ बनाये हैं। इससे विदित होता है कि ये महाशय ग्रंथ धीरे बनाते थे। इससे विचार यह उठता है कि सम्भवतः चालीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने यह ग्रन्थ बनाया होगा। केशवदास कवि होने के अतिरिक्त संस्कृत के पूर्ण पण्डित भी थे। इनके पिता काशीनाथ ने शीघ्रबोध नामक ज्योतिष का एक ग्रन्थ भी बनाया है। इससे जान पड़ता है कि उन्होंने केशवदास को भी ज्योतिष अवश्य पढ़ाया होगा। फिर इन के पितामह को ओड़छे में पुराण की वृत्ति मिली थी। सो वही वृत्ति इनकी भी होगी। अतः ये पुराण भी ख़ूब पढ़े होंगे। केशवदास की कविता से भी प्रकट होता है कि ये संस्कृत के पूर्ण पण्डित थे। इन्द्रजीतसिंह इनको गुरुवत् समझते थे; इस बात से भी प्रकट होता है कि ये महाशय संस्कृत के पूरे पण्डित होंगे। विज्ञानगीता देखने से भी विदित होता है कि इनको संस्कृत दर्शन-शास्त्र पर भी प्रगाढ़ अधिकार था। इन सब बातों से प्रकट हुआ कि केशवदास ने विद्या प्राप्त करने में पूरा श्रम करके तब काव्य करना प्रारम्भ किया होगा। अतः अनुमान से जान पड़ता है कि इनका जन्म संवत् १६०८ वि० ( सन् १५५२ ई० ) के लगभग हुआ सो सूरदास की मृत्यु के समय केशवदास बारह वर्ष के होंगे।

भूषण के सिवा किसी भाषा-कवि का केशवदास के समान सत्कार नहीं हुआ। ये महाशय ओड़छे में रहते थे। उस समय से अब तक वहाँ गहरवार वंशीय क्षत्रिय राज्य करते हैं। ये क्षत्रिय महाराज रामचन्द्र के वंशोद्भव हैं। इनके पुरिखाओं में पञ्चमसिंह बड़े प्रतापी हुए। पञ्चम के पुत्र बुँदेल थे जिनके कारण गहरवार ठाकुर बुन्देला कहलाने लगे। इन्हीं के बसे हुए देश को बुन्देलखंड कहते हैं और यहाँ इसी कुल के क्षत्रिय बहुत स्थानों पर अब भी राज्य करते हैं। इसी कुल में भारतीचन्द बड़े पराक्रमी राजा उत्पन्न हुए। इन्हीं भारतीचन्द ने कालिंजर के क़िले पर धावा करते हुए हिन्दुस्तान के बादशाह शेरशाह सूर का बध किया। भारतीचन्द के कुल में राजा मधुकर शाह ओड़छे के राजा हुए। इन्होंने अकबर शाह के गढ़ छीन लिये और स्वयं मुरादशाह इनसे लड़कर हार गया। मधुकर शाह के दूलहराम, बीरसिंहदेव, इन्द्रजीतसिंह आदि बारह पुत्र हुए। बड़े पुत्र दूलहराम राजा हुए। केशवदास मधुकर शाह के रामसिंह नामक कोई पुत्र का होना नहीं लिखते, परन्तु ये रामसिंह ही को राजा कहते हैं और उनको इन्द्रजीतसिंह का भाई कहते हैं। मधुकर शाह के बड़े पुत्र दूलहराम थे सो उनका राजा होना अनुमान-सिद्ध है। जान पड़ता है कि इन्हीं का उपनाम रामसिंह था।

जहाँ अकबर के दरबार में और सब राजा खड़े रहते थे वहाँ उसने रामसिंह को बैठक दी। रामसिंह के राज्य का इन्तिज़ाम इन्द्रजीत के हाथ में रहता था। उन्होंने इन्द्रजीतसिंह को कक्षेवा

कमल नामक गढ़ दिया। इन्द्रजीत के यहाँ संगीत का अखाड़ा था। उनके यहाँ निम्न लिखित षट् पातुर थीं:—

रायप्रवीन, नवरँग राय, विचित्र नयना,<br>तान तरंग, रंग राइ, और रंग मूरति ।

इन्द्रजीत की रायप्रवीन से आशनाई थी। रंडी होने पर भी वह पतिव्रता थी। एक बार उसके रूप-लावण्य का वर्णन सुन कर अकबर ने उसे बुला भेजा। उस समय रायप्रवीन ने, जो उत्तम कविता भी करती थी, इन्द्रजीतसिंह की सभा में जाकर यह कवित्त पढ़ा:—

"आई हों बूझन मन्त्र तुम्हें निज<br>सासन सों सिगरी मति गोई।<br>देह तजौं कि तजौं कुल कानि<br>हिये न लजौं लजि है सब कोई॥<br>स्वारथ औ परमारथ को पथ<br>चित्त बिचारि कहौ अब सोई।<br>जा में रहै प्रभु की प्रभुता अरु<br>मोर पतिव्रत भङ्ग न होई॥"

इस बात पर इन्द्रजीत ने उसे अकबर के यहाँ न भेजा। तब अकबर ने क्रोध करके उन पर एक करोड़ रुपया जुरमाना किया। उस समय केशवदास ने आगरा जाकर बीरबल द्वारा यह जुरमाना माफ़ कराया और रायप्रवीन ने अकबर के यहाँ किसी मौक़े से निम्न लिखित दोहा पढ़ कर अपना पातिव्रत बचाया।

'बिनती रायप्रवीन की सुनिये साहि सुजान।
जूठी पातरि भखत हैं बारी बायस स्वान॥'

(२) अब हम स्वयं केशवदास का जीवनचरित्र जहाँ तक हमें उनके काव्य या कहावतों द्वारा ज्ञात हुआ है, नीचे लिखते हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है उनका जन्म ओड़छे में सं० १६०८ में हुआ था। पहले उन्होंने संस्कृत में पूर्ण पण्डिताई प्राप्त की और सम्भवतः ३५ वर्ष की अवस्था में कविता करनी प्रारम्भ की। इनके जन्मस्थान ओड़छे होकर बेतवै नदी बही है। ओड़छे के राज-महल अब भी दर्शनीय हैं और बेतवै तो बड़ो ही मनोरम नदी है। हम तो आध घण्टे तक खड़े हुए उसे देखते ही रहे परन्तु तो भी हमें तृप्ति नहीं हुई। केशवदास ने ओड़छे और बेतवै का बड़ा उत्तम वर्णन किया है। उदाहरणार्थ दो एक छन्द यहाँ दिये जाते हैं।

"नदी बेतवै तीर जहँ तीरथ तुंगारन्य।
नगर ओड़छो बहु बसै धरनी तल में धन्य॥
केशव तुंगारन्य में नदी बेतवै तीर।
नगर ओड़छो बहु बसै पण्डित मंडित भीर॥

ओड़छे तीर तरंगिनि बेतवै ताहि तरै नर केशव को है।
अर्जुन बाहु प्रबाहु प्रबोधित रेवा ज्यों राजन की रज मोहै॥
जोति जगै जमुना सी लगै जग लाल बिलोचन पाप बियो है।
सूर सुता सुभ संगम तुंग तरंग तरंगित गंग सी सो है"॥

सच मुच बेतवै का तरना बड़ा ही दुर्गम है। चालीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने रसिकप्रिया नामक अपना प्रथम ग्रंथ सं० १६४८

कार्तिक शुक्ला ७ सोमवार ( सन् १५९२ ई० ) को समाप्त किया। यह ग्रन्थ इन्द्रजीत के कहने से बना था। इस समय तक केशवदास का पूर्ण आदर ओड़छे में नहीं हुआ था, परन्तु इन्हों ने रसिक-प्रिया में लिखा है किः—

"तिन कवि केसवदास सों कीन्हों धरम सनेहु।
सब सुख दै कै यह कही रसिक-प्रिया करि देहु" ॥

इससे प्रकट होता है कि इन्द्रजीत इनके इस समय से प्रथम शिष्य हो चुके थे। यहाँ "तिन" से इन्द्रजीत का प्रयोजन है। इसी के कुछ दिन पीछे केशवदास को जुरमाना माफ़ कराने आगरा जाना पड़ा। वहाँ जाकर ये महाराज बीरबल से मिले और उनकी प्रशंसा में इन्होंने यह छन्द पढ़ाः—

"पावक पंछी पसू नर-नाग नदी नद लोक रचे दस चारी।
केसव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी ॥
कै बर बीर बली बर को सु भयो कृतकृत्य महा व्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दुवौ करतारी" ॥

इस छन्द को सुन कर महाराज बीरबल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने एक करोड़ का जुर्माना अकबर से माफ़ करा दिया और छः लाख रुपये की हुंडियाँ उनके जेब में थीं वह निकाल कर केशवदास को तुरन्त दे दीं। तब केशव ने परम प्रसन्न होकर यह छन्द पढ़ाः—

केसवदास के भाल लिख्यो बिधि रंक को अंक बनाय सँवारयो।
छोड़े छुट्यो नहिँ धोये धुयो बहु तीरथ के जल जाय पखारयो ॥
ह्वै गयो रंक ते राउ तहीं जब बीर बली बलबीर निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो ॥

तब बीरबल ने परम प्रसन्न होकर इनसे फिर कहा कि 'माँगु'। इसको केशवदास ने यों कहा हैः—

"योंहीं कह्यो जु बीरबल माँगु जु मांगन होय।
माँग्यो तुव दरबार में मोहिँ न रोकै कोय"॥

जब केशवदास जुर्माना माफ़ करा के ओड़छे गये उसी समय से इनका बड़ा भारी मान होने लगा और तभी इन्होंने लिखा किः—

'भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग जुग जाके राज केसौदास राज सो करत है'।

यदि इसके प्रथम इनका इतना मान होता तो बीरबल के यहाँ ये अपने को रंक न कहते। इसी समय इन्द्रजीत ने इन्हें इक्कीस गाँव दिये और एक बार प्रयाग में गंगाजी में खड़े होकर इनसे कहा कि जो चाहिए माँग लीजिए।

"इन्द्रजीत तासों कह्यो माँगन मध्य प्रयाग।
माँग्यो सब दिन एक रस कीजै कृपा सभाग"॥

इससे विदित होता है कि इस समय इनकी पूरी महिमा थी, अतः इन्होंने केवल उसका स्थिर रहना माँगा। इन्द्रजीत के कारण महाराजा रामसिंह भी केशवदास पर बड़ी कृपा करते थे और उनको मन्त्री और मित्र की भाँति मानते थे।

केशवदास के वरदान माँगने से प्रकट होता है कि इन्होंने वरदान माँगने में धनादि की तृष्णा कभी नहीं की और केवल प्रतिष्ठा-वर्द्धक वरदान माँगे। इसी समय महाराजा बीरबल काबुल के युद्ध में मारे गये। तब उनकी उदारता का वर्णन केशवदास ने यों कियाः—

पाप के पुंज पखावज केसव सोक के संख सुने सुषमा में।
झूठ की झालरि झाँझ अलीक के आवझ जूथन जानि जमा में॥
भेद की भेरी बड़े डर के डफ कौतुक भो कलि के कुरमा में।
जूझत ही बल बीर बजे बहु दारिद के दरबार दमामें॥

केशवदास ने कविप्रिया में सिवा अमरसिंह और बीरबल के और किसी समकालीन का दान नहीं वर्णित किया है यद्यपि बहुत से देवताओं का दान वर्णित है।

इससे जान पड़ता है कि केशवदास अमरसिंह के यहाँ भी गये थे। अमरसिंह का हाल अभी हमें पूरा जान नहीं पड़ा। एक अमर-सिंह महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र थे। सम्भव है कि केशवदास उनके यहाँ उदयपुर गये हों क्योंकि केशव के पूर्व पुरुषों का भी चित्तौर के महाराणा से सम्बन्ध था।

सं० १६४८ से १६५८ तक केशवदास कविप्रिया तथा राम-चन्द्रिका बनाते रहे और कार्तिक शुदि ५ संवत् १६५८ विक्रमीय को बुध के दिन उन्होंने कविप्रिया समाप्त की और बुधवार कार्तिक शुदि १२ को रामचन्द्रिका समाप्त की। फिर संवत् १६६७ ( सन् १६१३ ई० ) में इन्होंने विज्ञानगीता समाप्त किया। केशवदास ने कविप्रिया में रामचन्द्रिका और विज्ञानगीता के बहुत से छन्द रक्खे हैं। इससे प्रकट होता है कि इन्होंने या तो कविप्रिया समाप्त करने के पीछे भी उसमें छन्द बढ़ाये हैं या विज्ञानगीता भी उसी पुस्तक के साथ बनता रहा होगा और समाप्त बहुत दिन पीछे हुआ होगा।

हमको सं० १६६७ के पीछे केशवदास के जीते रहने का अब तक कोई प्रमाण नहीं मिला।

एक किंवदन्ती है कि इन्द्रजीतसिंह के चित्त में यह भावना उठी कि उनका दरबार बहुत ही उत्तम है परन्तु लोगों के मर जाने से वह क्षीण हो जायगा। सो वे सोचने लगे कि किस प्रकार वह सभा चिरस्थायिनी हो। इस पर कहा जाता है कि केशवदास ने उनको प्रेत यज्ञ करने की सलाह दी क्योंकि प्रेतों की अवस्था दश हज़ार वर्ष की होती है। कहते हैं कि फिर वहाँ प्रेत-यज्ञ किया भी गया और उसमें सब लोगों के साथ मर कर केशवदास भी प्रेत हो गये। इसी कारण इनको कवि जन कभी कभी "कठिन काव्य के प्रेत" भी कहते हैं क्योंकि इनके प्रेत होने के अतिरिक्त इनका काव्य कठिन भी है। प्रेतयोनि में केशवदास का जी नहीं लगता था। एक बार ये महाशय एक कुएँ में बैठे थे और उसी में गोस्वामी तुलसीदास पानी भरने गये सो कहते हैं कि केशवदास ने उनका लोटा पकड़ लिया। जब तुलसीदास ने छुड़ाने के लिए बहुत कुछ कहा तब इन्होंने कहा कि हमें किसी प्रकार प्रेत-योनि से छुड़ाओ तो हम लोटा छोड़ें। इस पर तुलसीदास ने इनसे कहा कि तुम अपनी बनाई हुई रामचन्द्रिका के इक्कीस पाठ कर डालो तो तुम्हारी प्रेत-योनि छुट जाय। केशवदास को रामचन्द्रिका का पहला कवित्त ही नहीं स्मरण आता था सो तुलसीदास ने उन्हें वह याद दिलाया और वे रामचन्द्रिका के इक्कीस पाठ करके मुक्त हुए। इन्द्रजीतसिंह का प्रेतयज्ञ करना किसी इतिहास में नहीं लिखा है सो यह कथा

केवल मनगढ़न्त जान पड़ती है। यह विख्यात बहुत है इसी कारण इसे हमने लिख दिया। इन सब बातों का निष्कर्ष केवल इतना है कि केशवदास तुलसीदास के पहले मरे थे। गोस्वामीजी सं० १६८० में मरे थे (सम्वत् सोरह सै असी असी गंग के तीर—सावन सुकुला सत्तिमी तुलसी तजो सरीर)। सो केशवदासजी ने सं० १६७४ के लग भग शरीर छोड़ा होगा।

(३ क) केशवदास के विवाह पुत्र पौत्रादि के विषय में हम लोगों को कुछ भी ज्ञात नहीं है। हमारे प्रिय मित्र बाबू राधाकृष्ण-दासजी ने यह लिखा था कि कविवर बिहारीलाल केशवदास के पुत्र थे। उन्होंने इस विषय में बहुत से उत्तम प्रमाण दिये थे परन्तु कुल बातें सोच कर हमारा विचार है कि बिहारीलाल के पिता का नाम केशव अवश्य होगा परन्तु वे ये केशवदास न थे क्योंकि यदि इन दोनों में पिता पुत्र का सम्बन्ध होता तो दो में से एक भी तो इस बात को स्पष्ट रूप से अवश्य लिख जाता। फिर जैसे कालिदास कविन्द्र और दूलह का, एवं ऋषिनाथ ठाकुर सेवक का सम्बन्ध, तथा मतिराम भूषणादि का सम्बन्ध सब पर किंवदन्तियों द्वारा प्रकट है इसी प्रकार इनका भी अवश्य प्रकट होता। केशवदास के विषय में हम लोगों को इतना अवश्य ज्ञात है कि ये महाराज बुड्ढे होकर मरे थे क्योंकि ये स्वयं कहते हैं कि:—

"केसव केसनि असि करी जैसी अरि न कराहिँ।
चन्द्रबदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिँ"॥

(३ ख) केशवदास पण्डित होने पर भी पण्डितों की भाँति शुष्कचित्त न थे वरन् बुढ़ापे को इस कारण बुरा समझते थे कि

चन्द्रवदनी स्त्रियाँ इनको नायक की दृष्टि से न देख कर बूढ़े बाबा समझती थीं। फिर इन्द्रजीतसिंह इनको गुरु की भाँति मानते थे परन्तु इन्होंने उनकी गणिकाओं तक का बड़े आदर के साथ वर्णन किया है यहाँ तक कि उनका रायप्रवीन के साथ अनुचित सम्पर्क तक वर्णित करने में इन्होंने मुँह न मोड़ा। उसी गणिका को इन्होंने रमा, सरस्वती और शिवा तक की उपमा देने में कोई दोष न समझा।

नाचत गावत पढ़त सब सबै बजावत बीन।
तिन में करति कवित्त यक राय प्रवीन प्रवीन॥
रतनाकर पालित सदा परमानन्दहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर रमा कि राय प्रवीन॥
रायप्रवीन कि सारदा सुचि रुचि बासित अंग।
वीणा पुस्तक धारिणी राजहंस सुत संग॥
वृषभ बाहिनी अंग उर बासुकि लसत प्रवीन।
शिव सँग सोहति सर्वदा शिवा कि रायप्रवीन॥
सविता जू कविता दई ता कहँ परम प्रकास।
ताके कारन कविप्रिया कीन्हीं केशवदास॥'

रसिक होने के अतिरिक्त केशवदास कोरे भक्त भी न थे। इन्होंने कृष्ण की शनि से उपमा दी है ('राहु मनो शनि अंक लिये' रसिकप्रिया) और रामचन्द्र के विषय में यह सन्देह उपस्थित कराया कि "कैधौं कोऊ ठग हौ ठगोरी कीन्हें कैधौं तुम हरि हर श्री हौ शिवा चहत फिरत हो।" कोरा भक्त राम को ठग से, कृष्ण

की शनि से और एक गणिका की शिवा, रमा तथा शारदा से समानता कभी न करता। फिर भी केशवदास को रामचन्द्र का इष्ट था ('केशवदास तहाँ करयो रामचन्द्र जू इष्ट' रामचन्द्रिका)।

## केशवदास के ग्रन्थ।

(४) केशवदास ने कुल मिलाकर चार ग्रन्थ विदित बनाये हैं, परन्तु इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी इनके कुछ स्फुट छन्द मिलते हैं, यद्यपि ऐसे छन्द गणना में बहुत थोड़े हैं—

(४ क) रसिकप्रिया। यह ग्रन्थ सन् १५९२ ई० (सोमवार कार्तिक शुदि संवत् १६४८ वि०) में समाप्त हुआ। यह इन्द्रजीतसिंह की इच्छानुसार बनाया गया है जैसा कि इसका नाम प्रकट करता है। इस ग्रन्थ में रसिकों के रुचिकर वर्णन हुआ है यहाँ तक कि वीर, रौद्र, बीभत्स, शान्ति आदि रसों तक में शृंगार रस का पीछा नहीं छोड़ा गया है। इन्होंने प्रच्छन्न और प्रकाश प्रायः सभी उदाहरणों में दिखाया है।

नव-रस वर्णन से मुख्य ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है। फिर संयोग और वियोग एवं प्रच्छन्न और प्रकाश शृंगार का वर्णन है। तदनन्तर नायिका जाति अर्थात् पद्मिनी, चित्रिनी, शंखिनी और हस्तिनी को दिखाकर केशवदास ने चारों प्रकार के नायकों का वर्णन किया है। फिर कर्म्मानुसार नायका-भेद कहा है। जैसे अधिकतर कविजनों ने इस कर्म्म भेद को कहा है वैसे विस्तार के साथ केशवदास ने नहीं कहा। फिर चारों प्रकार का दर्शन (साक्षात्, चित्र, स्वप्न,

श्रवण ) कह कर इन्होंने हाव भाव का वर्णन किया है और इसके पश्चात् वियोग शृंगार कह कर शेष आठों रसों का शृंगार से मिला हुआ वर्णन किया है। यह वर्णन बिलकुल अच्छा नहीं है। अन्त में चारों वृत्तियों ( कौशिकी, भारती, अरभटी, सात्विकी ) को दिखा कर सोलहवाँ अध्याय भी समाप्त कर दिया। केशवदास ने गणिका को अति निन्द्य समझ कर उसका वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं किया। इस ग्रन्थ में केशवदास ने कविता के कुल अंगों का वर्णन न करके केवल भाव-भेद और रस-भेद का वर्णन किया है और वह भी विस्तारपूर्वक नहीं। इस ग्रन्थ में जहाँ तक हो सका है शृंगार रस का ही अवलम्ब लिया गया है। आकार में यह ग्रन्थ पद्माकरजी के जगद्विनोद के बराबर होगा और उत्तमता में मतिरामकृत रसराज से मिलता जुलता है परन्तु उसके बराबर नहीं पहुँचता। यह केशवदास का प्रथम ग्रन्थ है, अतः इसे बहुत उत्तम पाने की आशा करना उचित नहीं है, तो भी यह ख़राब नहीं है और इनका प्रथम ग्रन्थ होने पर भी भाषा के उत्तम ग्रन्थों में इसकी गणना है।

( ४ ख ) विज्ञान-गीता—यह ग्रन्थ संवत् १६६७ वि० ( १६११ ई० ) में बना था। समय के अनुसार यह केशवदास का चौथा ग्रन्थ है परन्तु शोक है कि उत्तमता में यह उनके ग्रन्थों में सबसे न्यून है। इसमें इक्कीस अध्याय हैं जिनमें से बारह अध्याय पर्य्यन्त महामोह और विवेक की लड़ाई का वर्णन है और शेष नौ अध्यायों में ज्ञान कहा गया है। प्रथम अध्याय में कवि-वंश तथा राज-वंश संक्षेपतः कहे गये हैं और एक प्रकार से ग्रन्थ की प्रस्तावना भी

इसी अध्याय में कही गई हैं। द्वितीय सर्ग में काम व रति की बात-चीत होती है, और तीसरे में दम्भ और अहंकार काशी-विजय का विचार करते हैं। इसमें पेट के दो छन्द अच्छे हैं। चौथे अध्याय में महामोह सेना साज कर चलता है और सातों द्वीपों (जिनका वर्णन विष्णुपुराण में हुआ है) और अवतारों को देखता है। इन अन्तिम तीनों अध्यायों की कविता बहुत शिथिल है। पाँचवें अध्याय में कलिनाथ और उसकी रानी की बहस होती है, और छठवें में कलि-नाथ अपनी विजयों और चमू का वर्णन करता है, और रानी काशी का माहात्म्य कहती है। सातवें अध्याय में चारवाक् और कलि की वार्त्ता हुई है और आठवें में शान्ति और करुणा का वर्णन है। नवें में राजधर्म द्वारा महामोह लड़ाई का उद्योग करता है परन्तु वर्षा ऋतु के कारण लड़ना प्रारम्भ नहीं करता। दसवें अध्याय में वर्षा और शरद का उत्तम वर्णन है। ग्यारहवें अध्याय में तीन स्तोत्र पुराने संस्कृतवाले कवियों के ढँग पर बने हैं और उत्तम भी हैं। उनकी टेकें निम्न लिखित हैं:—

'प्रबोधो उदो देहि श्री विन्दु माधो।
'राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु विश्वनाथ।
'नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे।'

इन तीनों स्तोत्रों द्वारा विवेक अपने देवताओं को प्रसन्न करता है। बारहवें अध्याय में महामोह और विवेक का महाघोर युद्ध हुआ जिसमें महामोह पूर्णतया पराजित हो गया। यह युद्ध बहुत ही संक्षेप से कहा गया है। इन बारह अध्यायों में प्रथम, दशम और एकादश

छोड़कर शेष प्रशंनीय नहीं हैं और इनकी कथा का भाव संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय नामक ग्रन्थ से लिया गया है। तेरहवें अध्याय में माया का और चौदहवें में शुकदेवजी का वर्णन है। पन्द्रहवें में मन-शुद्धि, विवेक, और पूजा का हाल है और यह अध्याय औरों की अपेक्षा कुछ उत्तम है। सोलहवें में राजा शिखीध्वज और उसकी रानी चुड़ाला की कथा योग-वाशिष्ठ से कही गई है और सत्रहवें में ज्ञान-विज्ञान की भूमिका है। अट्ठारहवें अध्याय में प्रह्लाद की कथा, उन्नीसवें में बलि की कथा एवं विप्रमहिमा, और बीसवें में योग की सात भूमिकायें लिखी गईं हैं। केशवदास ने अपने अन्तिम (इक्कीसवें) अध्याय में सीधा सादा कामकाजी योग कहा है। यह अध्याय भी बहुत ही उत्तम है। उदाहरण स्वरूप एक छन्द नीचे लिखा जाता है:—

'निसि बासर बस्तु बिचारहि कै
मुख सांचु हिये करुना धनु है।
अघ निग्रह संग्रह धर्म कथानि
परिग्रह साधुनि को गनु है॥
कहि केसव भीतर जोग जगै
अति बाहेर भोगनि सों तनु है।
मन हाथ सदा जिनके तिनको
बनही घरु है घर ही बनु है॥'

विज्ञानगीता के प्रथमार्द्ध में रूपक द्वारा मनुष्य के मोह और विवेक का युद्ध दिखाया गया है। इसमें विशेष गुण बहुत कम हैं और इसका मुख्यांश या तो शिथिल काव्य है या साधारण। उत्तम

काव्य तीनही अध्यायों में पाया जाता है। इस ग्रन्थ का द्वितीयार्द्ध प्रकाश रूप से ज्ञान और वैराग्य का कथन करता है। केशवदास ने संस्कृत के ज्ञान-सम्बन्धी मुख्य मुख्य विभेदों को सूक्ष्मतया कहा है परन्तु पूर्णतया किसी विभाग का वर्णन नहीं किया। इसमें साफ़ साफ़ और क्रमबद्ध रीति से न तो गीता का ज्ञान कहा गया है न योगवाशिष्ठ का। कहना पड़ता है कि श्रीमद् भगवद्गीता पढ़ने में जो अकथनीय अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है उसका चतुर्थांश आनन्द विज्ञानगीता से नहीं मिलता। यह कहा जा सकता है कि इस विज्ञानगीता से संस्कृत से अनभिज्ञ पाठकों को लाभ हो सकता है, परन्तु केशवदास ऐसे पंडित को ज्ञान का अधिक क्रमबद्ध वर्णन करना चाहिए था। इनका गीता पढ़ने से यही ध्यान में आता है कि व्यासदेव और केशवदास की कवित्व-शक्ति में पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। यदि केशवदास ने केवल विज्ञानगीता बनाई होती तो हम उन्हें दूसरे दर्जे के कवि कहते। भगवद्गीता पढ़ने में ज्ञान के साथ साथ काव्य का भी पूरा आनन्द आता है। फिर भी इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि विज्ञानगीता में सदोष काव्य नहा

(४ ग) कविप्रिया। यह ग्रन्थ संवत् १६५८ वि० कार्तिक शुद्धि ५ बुधबार को समाप्त हुआ है। इसमें केशवदास ने अपने कुल और राज-कुल का पूरा वर्णन दिया है और यह इन का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। हमको इसमें निश्चय नहीं है कि इनकी रामचन्द्रिका इनके सब ग्रन्थों में उत्तम है कि कविप्रिया। ये दोनोंही ग्रन्थ

उत्तम हैं। कविप्रिया में सत्रह अध्याय हैं। इसमें केशवदास ने कविता के दूषण, कवियों के गुण-दोष, कविता की जाँच, अलंकार, बारहमासा, नखशिख, और चित्र काव्य लिखा है।

प्रथम अध्याय में राजवंश और द्वितीय में कविवंश कहा गया है। तृतीय अध्याय में दोषों का वर्णन है। इन्होंने लिखा है कि—

'बिप्र न नेगी कीजिये मूढ़ न कीजै मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषण सहित कवित्त॥'

केशवदास ने पाँच मुख्य और बारह अमुख्य दूषण कहे हैं। पाँच मुख्य दूषणों में अन्ध ( पन्थविरोधी ), बधिर ( शब्दविरोधी ), पंगु ( छन्दविरोधी ), नग्न ( अलंकारहीन ) और मृतक ( अर्थहीन ) की गणना है। द्वादश साधारण दोष ये हैं:—

अगण, हीनरस, जतिभंग, व्यर्थ ( अर्थविरोध), अपार्थ (मतवालों अथवा बच्चों की सी निरर्थक बात), कर्णकटु, पुनरुक्ति, देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, लोकविरुद्ध, न्यायविरुद्ध, और आगमविरुद्ध।

चतुर्थ अध्याय में केशवदास ने काव्य को तीन प्रकार का कहा है अर्थात् उत्तम, मध्यम, और अधम। उन्होंने देव काव्य को उत्तम, मानुषी को मध्यम और सदोष को अधम कहा है।

केशव ने सत्य-भाषिणी, असत्य-भाषिणी, और सत्यासत्य-भाषिणी तीन प्रकार की कविमति स्थिर की है। फिर इन्होंने कविता के नियम कहे हैं। पंचम अध्याय से अलंकारों का वर्णन प्रारम्भ हुआ है। इन्होंने अलंकारों के सामान्य और विशिष्ट दो भेद किये हैं। सामान्य अलंकारों में इन्होंने रङ्ग, चित्र, गति और राजश्री का

वर्णन किया है। इन सामान्य अलंकारों में एवं समस्त कविप्रिया में इन्होंने अपना आचार्य्यत्व प्रकट किया है। सफ़ेद बालों के तीन छन्द बहुत ही उत्तम हैं। छठे अध्याय में सीता के मुख की प्रशंसा में निम्नलिखित तीन भावों में घटित होनेवाला छन्द बहुत ही उत्तम है।

'हरि कर मंडन, सकल दुख खंडन,
मुकुर महि मंडल को कहत अखंड मति।
परम सुबास, पुनि पीउप निवास,
परिपूरन प्रकास, केसो दास भू अकास गति॥
बदन मदन कैसो श्रीजू को सदन जहि
सोदर सुभोदर दिनेसजू को मीत अति।
सीता जू के मुख सुषमा की उपमा को
कहि कोमल न कमल अमल न रजनिपति'॥

सातवें अध्याय में समुद्र, नगर, सूर्य्योदय, षट् ऋतु आदि के बहुत से उत्तम वर्णन हैं। आठवें में राजश्री का उत्तम वर्णन किया गया है। इससे जान पड़ता है कि ये राजाओं के बीच में रहे हैं।

नवें अध्याय से विशिष्ट अलंकारों का प्रारम्भ होता है। प्रायः सभी कवियों ने अलंकारों के कथन में इसी विशिष्ट विभाग का वर्णन किया है। केशवदास ने अलंकारों में अन्य कवियों की भाँति क्रम नहीं कहा है न सब अलंकार ही कहे हैं। तेरहवें अध्याय पर्य्यन्त अलंकारों का वर्णन हुवा है। इसमें बहुत स्थानों में एक एक अलंकार को बहुत बढ़ाकर कहा है और उसके बदले कितनेही

अलंकारों का नाम ही नहीं लिया। बहुत से अलंकारों में अन्य कवियों के कहे हुए नामों के प्रतिकूल नाम इन्होंने कहे हैं। दशम अध्याय में आक्षेपालंकार में बारहमासा भी कहा है। पन्द्रहवें अध्याय में नखशिख और सोलहवें में यमक है। इनका नखशिख बहुत विशद बना है। सत्रहवें अध्याय में केशवदास ने चित्र काव्य लिखा है और उसको बड़े परिश्रम से बनाया है। कविप्रिया केशवदास का बहुत उत्तम ग्रन्थ है भी और उन्होंने उसे वैसाही माना भी है। उन्होंने कहा है किः—

'सगुन पदारथ अरथयुत सुबरन मय सुभ साज।
कंठमाल ज्यों कवि प्रिया कंठ करौ कविराज॥
सुबरन जटित पदारथनि भूषन भूषित मानि।
कविप्रिया है कवि प्रिया कवि संजीवनि जानि॥

केशवदास ने अपने किसी और ग्रन्थ की इतनी प्रशंसा नहीं की। जैसे रसिकप्रिया वास्तव में रसिकप्रिया है वैसे ही कविप्रिया भी सच मुच कविप्रिया है। केशवदास ने अपना पूरा आचार्यत्व इस ग्रन्थ में ख़तम कर दिया है। इसको पढ़ने से मनुष्य कविता का बहुत कुछ सामान जान सकता है। कविता के जिज्ञासुओं को काव्य सिखाने में यह ग्रन्थ बड़ा उपकारी है। यह ग्रन्थ इन्द्रजीत की गणिका प्रवीनराय के नाम पर बना है। इसमें शृंगार रस को कवि ने बहुत कम रक्खा है और बहुत से विषयों पर कविता की है। फिर भी इसे प्रधानतः अलंकारों का ग्रन्थ कहना चाहिए क्योंकि अलंकारों के अतिरिक्त इसमें गुण दोष, षट् ऋतु और नखशिख के सिवा

कुछ नहीं कहा गया है। फिर षट् ऋतु और नखशिख भी एक प्रकार से अलंकार ही हैं। अतः केवल गुण दोष का कथन रह गया। सो सदोष कविता सालंकार होने पर भी निन्द्य मानी जायगी। यह ग्रन्थ कुल मिलाकर बहुत उत्तम बना है और इसीसे केशवदास को भाषा-काव्य में आचार्य्य की पदवी मिली है।

( ४ घ ) रामचन्द्रिका। इस ग्रन्थ को केशवदास ने सन् १६०२ ई० ( सं० १६५८ वि० कार्तिक शुदि १२ बुधवार ) में समाप्त किया। इसे इन्द्रजीतसिंह ने बनवाया था। कविप्रिया की भाँति रामचन्द्रिका भी केशवदास का बड़ा ही उत्तम ग्रन्थ है जिसमें इन्होंने रामचन्द्र की कथा कही है। यह ग्रन्थ उनतालीस अध्यायों में समाप्त हुआ है। केशवदास ने रामचन्द्र की उत्पत्ति के पीछे से कथा का आरम्भ किया है। इन्होंने राम की बाल-लीला बिलकुल नहीं कही। केशवदास को वाल्मीकिजी ने स्वप्न में राम-यश गान करने का उपदेश दिया। उसी समय से इन्होंने रामचन्द्र को इष्ट देव माना। विश्वामित्र के अयोध्याप्रवेश के साथ केशवदास ने अयोध्या का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया है। इसको पढ़ने से जान पड़ता है कि राजाओं की सभा कैसी होती है। तुलसीदास ने महाराजा और साधारण व्यक्ति की सभा में बहुत कम अन्तर रक्खा है परन्तु केशवदास नित्य सभायें देखते थे सो वह इसमें कैसे ग़लती करते? इन्होंने विमति से सीता-स्वयंवर में एक शंका उठाई है परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया।

'रावण बाण महाबली जानत सब संसार।
जो दोऊ धनु कर्षि हैं ताको कहा बिचार'॥

यह शंका उठनी न चाहिए थी क्योंकि जो व्यक्ति पहले धनुष चढ़ाता, जनक के प्रणानुसार जानकीजी उसी को ब्याह दी जातीं और प्रण पूर्ण हो जाता। फिर उसके पीछे चाहे सैकड़ों मनुष्य धनुष चढ़ाया करते परन्तु उनसे और राजा जनक के प्रण से कोई सम्बन्ध न होता। रावण के धनुष न उठा सकने पर उसका बाण से यह बहाना करना कि "मैं तो इसे आज़मा चुका और पल भर में उठा लूँगा, अब कुछ आप भी तो उठा कर देखिए" बड़ा ही उत्तम है। वैसे ही बाण का बहाना भी देखने योग्य है। केशवदास कथा के अमुख्य वर्णनों के लिए न ठहर कर तुरन्त मुख्य कथा का वर्णन करने लगते हैं; यह इनमें बड़ा गुण है। इन्होंने ज्योनार में गाली बड़ी ही उत्तम गवाई है, और परशुराम व राम के झगड़े के समय महादेव को बुलाकर बहुत अच्छा निबटेरा करा दिया और जब भरत राम को वन से फेरने गये थे उस समय भरत को भागीरथीजी से समझवा दिया। यह भी झगड़ा मिटाने का अच्छा ढँग है, यद्यपि इस स्थान पर तुलसीदासजी का काव्य अपूर्व आनन्द देता है। केशवदास ने बिभीषण की कठोर वार्त्ता पर रावण को क्रोधित कराया है। जब अंगद रावण से बसीठी करने गया था उस समय रावण ने उसे मिला लेने का पूरा प्रयत्न किया। रावण के योद्धाओं का बड़ा उत्तम परिचय दिया गया है। जब रावण ने कुम्भकर्ण से कठोर बात कही उस समय मन्दोदरी ने अपने तीनों लड़कों को पुकार कर कहा कि तुम्हारे पिता भैयों से भिड़ते हैं तुम उन्हें क्यों नहीं समझाते? इसके पीछे उसने कुम्भकर्ण की बड़ी प्रशंसा की। मन्दो-

दरी का बानरों से डर कर चित्रशाला में भागना और अंगद द्वारा उसकी दुर्गति होनी और तब रावण का यज्ञ छोड़ देना परम स्वाभाविक है। इन सब वर्णनों की उत्तमता देख कर केशवदास की अपूर्व कवित्वशक्ति की जितनी बड़ाई की जाय थोड़ी है। सीता का अग्नि के अङ्क में रामचन्द्र के पास जाना भी ख़ूब उत्तम है। रामचन्द्र ने बानरों इत्यादि का वशिष्ठ से परिचय कराने में भी बहुत उत्तम रीति पर अनुगमन किया है। हनुमान के विषय में रामचन्द्र ने कहा कि—

'सीता पाई रिपु हत्यो देख्यो तुम अरु गेहु।
रामायण जय सिद्धि को कपि शिर टीका देहु'॥

इसके पीछे रामचन्द्रिका की कविता कुछ शिथिल पड़ गई है। रामचन्द्र ने दो अध्यायों में राजश्री की निन्दा की है। इसके पीछे राम का राज्याभिषेक हुआ। ऐसे समय राजश्री की निन्दा अयुक्त जान पड़ती है। अभिषेक में केशवदास ने राजसी ठाट अच्छा दिखाया है। अभिषेक के पीछे अंगद ने रामचन्द्र से कहा कि अब मैं रघुवंशियों से लड़कर अपने बाप का बदला लेना चाहता हूँ। रामचन्द्र ने कहा—

'कोऊ मेरे वंश में तोसों करि है युद्ध।
तब तेरो मन होयगो अंगद मोसों शुद्ध॥'

फिर जब रामचन्द्र ने लव-कुश को युद्धोन्मुख देखा तब अंगद से कहा—

'अंगद जीति इन्हें गहि ल्यावो।
कै अपने बल मारि भगावो॥

वेगि बुझावहु चित्त चिता को।
आजु तिलोदक देहु पिता को॥'

अंगद की मनोकामना भी बड़ी ही स्वाभाविक थी। इसी प्रकार गुरुगोविन्दसिंह को पितृ-हन्ता समझ कर उनके दो मुसल्मान विश्वास-पात्र सैनिकों ने उन पर प्रहार किया था।

केशवदासजी ने भी गोसाईंजी की भाँति भरत का शील गुण और उनका पद बहुत ऊँचा दिखाया है। चौगान का वर्णन अच्छा है। केशवदास ने उरछा के नौचौकिया महल के मुक़ाबिले में रामचन्द्र के यहाँ पाँच चौकें लिखी हैं। राज-प्रासाद के वर्णन में भी इन्होंने दिखा दिया है कि कवि ऐसे ऐसे पदार्थ देखता रहा है। केशव की कविता में राम के राजसी गुण ख़ूब प्रकट हुए हैं। जल-केलि उपवन आदि का वर्णन एवं दूत की कटु-बात को साफ़ साफ़ न कहलाना अच्छा हुआ। श्वान की फिरियाद में मठपतियों की निन्दा है। सीता-त्याग से कथा और कविता फिर बहुत उत्तम होगई हैं। इसके पीछे लवणासुर का बध कहा गया है। वह ब्राह्मणों को विकल करता था। शत्रुघ्न ने उसे युद्ध-घोषणा के प्रथम अन्तिम सन्देश यह कहला भेजा था कि—

'महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसों।
तजौ देश को कै सजौ युद्ध मोसों॥'

जब लव कुश लक्ष्मण तक को जीत चुके और हनुमान् भरत के साथ युद्ध को गये उस समय उन्होंने बड़ा ही स्वाभाविक आश्चर्य्य प्रकट किया कि—

'नाम बरण लघु बेष लघु कहत रीझि हनुमन्त।
इतो बड़ो बिक्रम कियो जीत्यो समर अनन्त॥'

यहाँ शत्रु पर भी हनुमान् का रीझना बड़ा ही स्वाभाविक है क्योंकि सच्चा शूर ही सच्चे शूर के विक्रम पर रीझ सकता है और वह अवश्य रीझेगा उसका चाहे जितना बड़ा अपकार हो गया हो।

शायद बिना बिभीषण की लेथाड़बाज़ी के कोई रामायण पूर्ण नहीं कही जा सकती, परन्तु खेद कि हमारे यहाँ केशव के सिवा संस्कृत तक के किसी कवि को यह न सूझा कि बिभीषण ने कोई बुरा काम भी किया या नहीं। सब कवियों ने उस की इसी कारण बड़ी भारी प्रशंसा की कि वह रामचन्द्र का भक्त था, परन्तु शोक कि उसके प्रचंड दूषण पर किसी ने भी ध्यान न दिया। सत्य है! यदि कोई उसके राक्षसी कर्म्म की तीव्र आलोचना करता तो शायद थानेश्वर और पानीपत पर पृथ्वीराज और राणासांगा को अपने अनुयायियों के उसी राक्षसी व्यवहार के कारण पराजय का असह्य और घातक दुःख न उठाना पड़ता। उस समय आर्य्यों और अनार्य्यों का घोर युद्ध होने को था और यह क्षुद्र हृदय बिभीषण रावण के थोड़े से अनादर से न केवल रावण को वरन् सब राक्षसों के पक्ष को छोड़ कर उन्हीं के मूलोच्छेदन में प्रवृत्त हुआ और फिर अपने सगे भाई और भतीजों को अपने सम्मुख मरवा डालने में भी इस राक्षस को तनिक भी पश्चात्ताप न आया और यह बराबर उनके मारे जाने की तरकीबें रामचन्द्र को बताता गया। केशवदास राजाओं में रहते थे और प्रत्येक मनुष्य के स्वदेश और स्वकुल रक्षण-

वाले कर्त्तव्य एवं धर्म्म को ख़ूब समझते थे, अतः उन्होंने लव द्वारा बिभीषण का इन शब्दों से उपहास कराया:—

'तब दौरि कै बाण बिभीषण लीन्हों।
लव ताहि बिलोकत ही हँसि दीन्हों॥

लव—आउ बिभीषण तू रण दूषण।
एक तुही कुल को कुलभूषण॥
जूझि जुरे जे भले भये जी के।
शत्रुहि आय मिले तुम नीके॥
देव बधू जबही हरि ल्यायो।
क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो॥
यों अपने जिय के उर आये।
छुद्र सबै कुल छिद्र बताये॥

जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ताकी तैं पतिनी करी पतिनी मातु समान॥
को जानै कै बार तू कही न ह्वै है माय।
सो तैंने पतिनी करी सुनु पापिन के राय॥

सिगरे जग माँझ हँसावत है।
रघुबंसिन पाप नसावन है॥
धिक तो कहँ तू अजहूँ जु जियै।
खल जाय हलाहल क्यों न पियै?
कछु है अब तो कहँ लाज हिये।
कहि कौन बिचार हथ्यार लिये?

अब जाय कै रोष कि आगि जरौ।
गरु बाँधि कै सागर बूड़ि मरौ॥
कहा कहौं हौं भरत को जानत है सब कोय।
तो सो पापी संग में क्यों न पराजय होय॥

अन्त में राम ने आठों पुत्रों और भतीजों में अपना सब राज्य बाँटकर उनको नीति का उपदेश दिया। रामचन्द्र की स्वर्ग-यात्रा का केशवदास ने वर्णन नहीं किया। रामचन्द्रिका वास्तव में महा-काव्य है और उसके लक्षण में भी आती है।

केशवदास ने पात्रों के शील गुण का भी अच्छा वर्णन किया है। इन्हों ने भरत को बिलकुल दब्बू भाई नहीं दिखलाया है वरन् जैसे सब छोटों में वे बड़े थे वैसे ही उनका महत्त्व भी अच्छा दिखाया गया है। जब राम ने भरत से सीता छोड़ने को कहा तब उन्होंने स्वयं रामचन्द्र से यह कहाः—

'वै माता वैसे पिता तुम सो भैया पाय।
भरत भये अपबाद को भाजन भूतल आय॥'

जब लव-कुश ने उनके दो भाइयों को मार डाला तब भरत ने कहा कि—

'बालक रावण के न सहायक।
ना लवणासुर के हित लायक॥
हैं निज पातक वृक्षन के फल।
मोहत हैं रघुबंसिन के दल॥

शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि ।
पूत भये तजि पाप समाजनि ॥
हम हूँ तेहि तीरथ जाय मरैंगे ।
सतसंगति दोष अशेष हरैंगे ॥

रामचन्द्रिका ग्रन्थ भाषा-काव्य का शृंगार है। ऐसा रोचक ग्रन्थ भाषा-साहित्य में सिवा तुलसीकृत रामायण के एक भी नहीं है। इस ग्रन्थ में गणना में कविप्रिया से अधिक उत्तम छन्द नहीं हैं, परन्तु इसमें एक उत्तम कथा भी वर्णित है इसी कारण इसकी रोचकता बहुत बढ़ गई है। इसे एक बार उठा लेने से रामचन्द्र के लंका जीत कर अयोध्या लौटने तक बिना पढ़ लिये पुस्तक रखने को चित्त ही नहीं चाहता। इस ग्रन्थ में केशवदास छन्द इतनी शीघ्रता से बदलते गये हैं कि छन्द कहीं अरुचिकर नहीं होते।

भाषा-साहित्य में कथा-प्रसंग वर्णन करने की छन्दानुसार दो प्रणालियाँ हैं, एक तो गोसाईंजी की भाँति दोहा चौपायोंवाली और दूसरी केशवदास की भाँति विविधछन्दोंवाली। प्रथम प्रकार में काव्य बहुत उत्तम न होने पर वर्णन रोचक नहीं रहता, परन्तु द्वितीय प्रथा में साहित्य की विशेष उत्तमता न होने पर भी कथा उतनी शीघ्र अरुचिकर नहीं होती। यह द्वितीय प्रथा केशवदास ने इसी ग्रन्थ द्वारा चलाई है।

केशवदास भाषा-कविता के प्रायः अरुणोदय काल में हुए हैं अतः इन्होंने एक रीति-ग्रन्थ भी बनाया है। अब रीति-ग्रन्थ बनाने की भी परिपाटी सी चल पड़ी है।

कथा वर्णन करने की भी दो प्रथायें हैं, एक तो संस्कृत के कवियों की भाँति और दूसरी गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति। इन दोनों प्रथाओं का अन्तर हम एक उदाहरण द्वारा दिखलावेंगे। संस्कृत के कवि यदि भुज का वर्णन करेंगे तो वे उसकी लम्बाई का, बजुल्ले का, कलाई की गठन का और अँगूठियों का वर्णन करके उसे छोड़ देंगे, परन्तु यदि गोसाईंजी भुज का वर्णन करेंगे तो शायद इन बातों का कथन न हो परन्तु बाहु मूल से लगाकर उँगलियों के नखों तक का बिना उपमा और रूपकों आदि के सीधा सादा रूप एक एक रोम पर्य्यन्त दिखा देंगे। संस्कृत के कवि मुख्य कथा को छोड़ कर रूपक-उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं आदि पर विशेष ध्यान देंगे, सूर्य्योदय, गंगा की तरंगों, समुद्र आदि पर अधिक झुकाव रक्खेंगे और नायकों के काव्य-सम्बन्धी चोटीले भाव सुझानेवाले छोटे छोटे कर्म्मों और भावों को कह कर उनके सहारे काव्य की छटा दिखावेंगे और सूक्ष्म रीति पर कथा का भी डोर लिये रहेंगे, परन्तु गोस्वामीजी इन बातों पर विशेष ध्यान न देंगे किन्तु मुख्य कथा को सांगोपांग बड़े विस्तारपूर्वक कहेंगे। यदि नैषध को पढ़िए तो कहीं कहीं यह भूल जाता है कि हम कोई कथा पढ़ रहे हैं और यह जान पड़ता है कि यह कोरा काव्य है, परन्तु तुलसीदास में यह कहीं नहीं भूलता कि हम कथा पढ़ रहे हैं। जिस प्रथा को हम तुलसीदासवाली अथवा भाषा की प्रथा कह रहे हैं वह वास्तव में महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास की प्रथा है। अधिक संक्षेपतः हम इन दोनों प्रथाओं को काव्य-सम्बन्धी प्रथा और कथा-सम्बन्धी प्रथा कहेंगे—हमारे

केशवदासजी ने इसी काव्य-प्रथा में रामचन्द्रिका कही है। यह दोनों प्रथायें भाषा में भी स्थिर हैं।

( ४ ङ ) केशवदास का बनाया हुआ वीरसिंह देव पर भी एक ग्रन्थ सुना जाता है परन्तु अभी वह देखने में नहीं आया है।

अब हम केशदास की कविता के गुण-दोष यथाशक्ति दिखाने का प्रयत्न करते हैं।

( ५ क ) केशवदासजी गोस्वामी तुलसीदासजी के समकालीन कवि थे। उस समय तक भाषा-साहित्य स्थिर नहीं हुआ था। इसी कारण पण्डित-समाज में इसकी कविता बहुत आदर की दृष्टि से नहीं देखी जाती थी। अतः ये दोनों कवि भाषा में काव्य करने में कुछ लज्जा सी बोध करते थे। गोस्वामीजी ने लिखा है कि—

'भाषा भनित मोरि मति थोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिँ खोरी'॥

इसी प्रकार केशवदासजी ने कहा है कि—

'उपज्यो तेहि कुल मन्दमति शठ कबि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास॥
भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्दमति तेहि कुल केशवदास'॥

इसी भाषा कवि होने की ग्लानि के कारण इन दोनों कवियों ने यत्र तत्र श्लोक भी बनाये हैं। केशवदास की भाषा ब्रज-भाषा थी परन्तु कहीं कहीं बुन्देल खंडी शब्द भी इसमें मिल गये हैं।

( ५ ख ) केशवदास की कविता में संस्कृत के शब्द बहुतायत से आते थे और इसी कारण इनकी कविता में कहीं कहीं श्रुति-कटु

शब्द भी आ जाते थे। संस्कृत-शब्दों में मिलित वर्ण बहुतायत से होते हैं और अधिकतर ऐसेही वर्ण श्रुति-कटु समझे जाते हैं। केशवदास शब्दों की योजना में कर्ण-कटु नहीं मानते। इनके मत में जब अर्थ-योजना ऐसी हो कि वह कहने में अच्छी न लगे, तब कर्ण-कटु दूषण होता है। यथा—

'कहत न नीको लागई सो कहिए कटु कर्ण।
केशवदास कवित्त में भूलि न ताको वर्ण॥
बारन बन्यो बनावतनि सुबरन बली बिसालु।
चढ़िये राज मँगाइ कै मानो राजत कालु'॥

इस उदाहरण में एक भी शब्द कर्ण-कटु नहीं है, परन्तु अर्थ में श्रुति-कटु दूषण अवश्य है।

( ५ ग ) इस बात के होते हुए भी केशवदास की भाषा बहुत उत्तम है और दो चार चुने चुने आचार्य्यों को छोड़ कर और किसी की भाषा इनसे उत्तम नहीं है। बहुत लोग समझते हैं कि इनकी कविता में ओज गुण अधिकता से है, परन्तु इनकी समस्त कविता पढ़ कर हम यही कहेंगे कि उसमें माधुर्य्य और प्रसाद गुणों की ही प्रधानता है। इनकी भाषा का उदाहरण स्वरूप एक छन्द हम नीचे देते हैं।

शोभित मंचन की अवली गज दन्त मई छबि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो बसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जुन्हाई॥
ता महँ केशवदास बिराजत राज कुमार सबै सुखदाई।
देवन सों मिलि देव सभा जनु सीय स्वयंबर देखन आई'॥

( ५ घ ) केशवदास ने अपने कथावाले ग्रन्थों में छन्द बहुत शीघ्र बदले हैं। इस कारण से इनकी रामचन्द्रिका और भी सुहावनी हो गई है। अपने रीति और रस ग्रन्थों में इन्होंने प्रायः लक्षण आदि दोहों और उदाहरण सवैया अथवा दंडकों में कहे हैं। यह रीति इन्हीं की चलाई हुई है और भाषा के प्रायः सभी कवियों ने इनका अनुकरण किया है; केवल कथा प्रसंगवाले कवियों में से बहुतों ने गोस्वामी तुलसीदास के मार्ग पर चल कर दोहा-चौपाइयों में हीं कविता की है।

( ५ ङ ) केशवदास ने तुकान्त में बड़ी सख़्ती नहीं रक्खी। कई स्थानों पर सवैया में दो पदों में एक प्रकार के तुकान्त रक्खे और शेष दो में बिलकुल दूसरे प्रकार के ( रामचन्द्रिका अध्याय सातवाँ छन्द चौंतीसवाँ, अध्याय चौबीसवाँ छन्द बाईसवाँ, अध्याय उनतालीसवाँ छन्द छत्तीसवाँ देखिए )। विज्ञानगीता में भी एक स्थान पर 'साधु' का दूसरा तुकान्त 'कराल' रक्खा है ( पृष्ठ १९ वाँ देखिए )। इसी प्रकार कई स्थानों में किया है। इससे प्रकट होता है कि यह तुकान्त अधिक नहीं मानते थे; परन्तु शोक है कि इनके पीछे कवियों ने इस स्वच्छन्दता को स्थिर नहीं रक्खा। भाषा में तुकान्तहीन छन्द लिखने में कोई दूषण नहीं परन्तु अभी इसे बहुत कम लोग मानते हैं।

( ५ च ) केशवदास को अनुप्रास का इष्ट न था जैसा कि इनके बनाये हुए पूर्वोक्त छन्दों से प्रकट होगा, परन्तु कभी कभी एकाध अनुप्रास पूर्ण छन्द भी ये लिख देते थे। यथाः—

'सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटीहू घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ कि बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुण धूरजटी जटी पंचबटी॥

इस छन्द को इन्होंने 'एषा पंचबटी' वाला श्लोक देख कर बना दिया। इसी प्रकार बहुत स्थानों पर इन्होंने संस्कृत के भाव लिये हैं और कितने ही स्थानों पर पुराने श्लोकों का उलथा ही कर दिया है।

(६ क) केशवदास की कविता में अलंकार बहुतायत से आते थे परन्तु पूर्ण रसों के उदाहरण इनकी, या बहुत से कवियों की कविता में अधिकता से नहीं पाये जाते। इन्होंने परिसंख्यायें बहुत स्थान पर लिखी हैं ('मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय' इत्यादि)। रामराज का वर्णन विशेषतया परिसंख्याओं में हुआ है। उपमायें, रूपक, और दृष्टान्त भी अधिकता से इनके काव्य में पाये जाते हैं। विज्ञानगीता में रसों और अलङ्कारों के उदाहरण बहुत कम आये हैं।

(६ ख) केशवदास की कविता में उत्तमोत्तम छन्दों का बाहुल्य है। प्रायः प्रत्येक विषय पर इन्होंने उत्तम कविता की है और हर विषय पर वह सराहनीय है। केशवदास को भाषा का मिल्टन कहना चाहिए। इन दोनों मनुष्यों के पाण्डित्य और काव्य अत्यन्त सराहनीय हैं परन्तु शेक्सपियर और तुलसीदास एवं सूर-दास की बराबर इनकी कविता नहीं पहुँचती। जहाँ केशवदास ने प्रत्येक विषय पर उत्तम काव्य किया है वहाँ यह भी कहना पड़ता

है कि इनकी कविता किसी स्थान पर ऐसी नहीं है कि वैसी रचना कोई भी दूसरा कवि न बना सका हो। बिना तन्मय होने के अद्वितीय काव्य कोई भी नहीं बना सकता। हमारे कवियों में सूरदास, तुलसीदास, बिहारीलाल, भूषण आदि एक एक विषय में आसक्त थे अतः उस उस विषय पर उन्होंने ऐसी उत्तम सच्ची कविता की है जैसी किसी भाषा का कोई भी कवि उस विषय पर नहीं बना सका। केशवदास किसी विषय में तल्लीन होकर आत्मविस्मरण नहीं कर सकते थे, अतः इनकी कविता ऐसी कहीं नहीं हुई है कि मानो कवि बिमल बिमल कर कह रहा हो। ये महाशय बड़े पण्डित और बुद्धिमान् थे परन्तु स्वभावतः कवि न थे। तो भी अद्वितीय न होने पर भी इनकी कविता बहुत ही ऊँचे दरजे की है और हम सूरदास, तुलसीदास, भूषण, बिहारी और देव के अतिरिक्त इनको किसी से नीचा पद नहीं दे सकते।

( ६ ग ) केशवदास ने बहुत बातों के बड़ेही हृदयग्राही वर्णन किये हैं। इनमें से निम्न लिखित विषयों के वर्णन विशेषतया सराहनीय हैं:—

अयोध्या, स्वयंबर, सूर्य्योदय, राम-विवाह, परशुराम और राम का संवाद, भरत की सेना, वर्षा, लंकादाह, उपवन, रामाश्वमेध की चमू ( रामचन्द्रिका में ) और वर्षा और शरद् ( विज्ञानगीता में )।

केशवदास सदैव महाराजों में रहे, अतः इन्होंने बड़े आदमियों की बात चीत और उनके साज सामान का बहुत ही यथा-योग्य वर्णन किया है। उदाहरणार्थ निम्न लिखित वार्तालाप देखिए:—

विश्वामित्र दशरथ, विश्वामित्र जनक, सीता रावण (इसमें स्त्रियों के ऊँचे पद का पूरा विचार रहा है), सीता हनुमान इत्यादि। केशवदास ने केवल रावणाङ्गद संवाद ऐसा कराया है जैसा राजाओं की सभाओं में होना असम्भव है। इस विषय में वाल्मीकिजी की कविता दर्शनीय है। केशवदासजी ऋषियों और राजाओं की बात-चीत में ऋषियों के मान पर सदैव ध्यान रखते थे।

( ७ ) इन्होंने कहीं कहीं अनुपयुक्त कथन भी कर दिये हैं।

( ७ क ) रावण का दूत रामचन्द्र से कुछ कहने के लिए उनके पास भेजा गया था। उसने लौट कर रावण से रामचन्द्र का वर्णन निम्न दंडक द्वारा कियाः—

"भूतल के इन्द्र भूमि बैठे हुते रामचन्द्र
मारिच कनक मृगछालहि बिछाये जू।
कुम्भ हर कुम्भकर्ण नासा हर गोद शीस
चरण अकम्प अच्छ अरि उर लाये जू॥
देवान्तक नारान्तक त्योंहीं मुसक्यात बीर
बिभीषण बैन तन कान रुख बाये जू।
मेघनाद मकराक्ष महोदर प्राण हर
बाण त्यों बिलोकत परम सुख पाये जू"॥

यह छन्द सुन कर रावण को कुछ भी क्रोध नहीं आया। ऐसा कटु वाक्य केशवदास भले ही कहें परन्तु स्वयं रावण का दूत रावण ही से ऐसा कह कर अपना प्राण गँवाये बिना कभी न बचता। ऐसी ऐसी बातें हमारे कवियों ने भक्ति-भाव के कारण

रावण को ज़लील बनाने के निमित्त कही हैं परन्तु उन्होंने नहीं सोचा ये बातें सम्भव भी हैं या नहीं।

( ७ ख ) केशवदास ने जहाँ तक हो सका है सनाढ्यों की बड़ी बड़ाई की है। ये बातें उत्तम कवि के मुख से शोभा नहीं पातीं।

( ७ ग ) केशवदास ने सीता के छोड़े जाने के कुछ ही पहले जो सीता और राम का वार्तालाप कराया है उसमें काल-विरुद्ध दूषण है। वह ऐसी ही बात चीत है जैसी आज कल की यहाँ की स्त्रियाँ अपने पतियों से करती हैं, परन्तु उस समय स्त्रियों का पद यहाँ भी वैसा ही था जैसा आज कल योरप में है। इस विषय में भवभूतिकृत उत्तररामचरित्र देखने योग्य है।

( ७ घ ) केशवदास ने कविप्रिया में पृथ्वी को त्रिकोण कहा है ( छठवाँ अध्याय )। वास्तव में यह आकार हिन्द का है जैसा कि सब जानते हैं और पृथ्वी गोल है। इससे अनुमान होता है कि केशवदास ज्योतिष अच्छी तरह नहीं जानते थे।

( ७ ङ ) महर्षि विश्वामित्र का राक्षसों द्वारा यज्ञ करने में पीड़ित होना एक आश्चर्य्य की बात है। यह सन्देह उठता है कि ऋषि लोग तो शाप से ही अपना काम चला लेते थे, तब विश्वामित्र शाप से काम न लेकर अयोध्या क्यों दौड़े आये? इसका उत्तर वाल्मीकिजी ने दे दिया है। विश्वामित्र ने कई बार क्रोध करके अपनी तपस्या का फल खो दिया अतः उन्होंने निश्चय कर लिया

था कि वे क्रोध न करेंगे। फिर बिना क्रोध के शाप नहीं हो सकता इस कारण वे शाप भी नहीं दे सकते थे। गोस्वामी तुलसीदास ने इस बात को बचा कर विश्वामित्र को क्रोध नहीं कराया परन्तु केशवदास ने कह दिया कि:—

"जान्यो विश्वामित्र के क्रोध बस्यो उर आय।
राजा दशरथ सों कह्यो बचन बशिष्ठ बनाय"॥

( ८ क ) आज कल हमारे यहाँ तीर्थस्थान और प्रतिमा-पूजन बहुत प्रचलित हैं परन्तु केशवदास इन दोनों बातों के प्रतिकूल थे। उन्होंने गोदावरी के विषय में लिखा है कि:—

'रीति मनों अविवेक कि थापी। साधुन की गति पावत पापी॥

इन्होंने रामचन्द्रिका में गंगासागर से सत्संग को बड़ा बतलाया है, और विज्ञानगीता में लिखा है कि:—

'चित्त न तजत बिकार न्हात यद्यपि नर गंगा'॥

और इसी ग्रन्थ में कहा है कि प्रतिमा-पूजन शूद्र को करना चाहिए। इन्होंने मठपतियों की इतनी निन्दा की है कि उनके छूने को भी पाप बतलाया है। केशवदास ने असली देव की व्याख्या रामचन्द्रिका के पचीसवें अध्याय में रामचन्द्र से कराई है।

"राम रमापति देव नहिँ रंग न रूप न भेव।
देव कहत ऋषि कौन को सिखऊँ जाकी सेव?॥
सत चित प्रकाश प्रभेव। तेहि वेद मानत देव॥
तेहि पूजि ऋषि रुचिमंडि। सब प्राकृतन को छांडि॥"

इसी प्रकार विज्ञानगीता के पन्द्रहवें अध्याय में यह लिखा है:—

"अजन्मु है अमनु है। अशेष अन्तु सनु है॥
अनादि अन्त हीनु है। जु नित्य ही नवीनु है॥
अरूप है अमेय है। अमाप है अमेय है॥
निरीह निर्विकार है। सुमध्य अध्यहार है॥
अकृत्य है अखंडित्वै। अशेष जीव मंडित्वै॥
समस्त शक्ति युक्त है। सुदेव देव मुक्त है॥"

तासों पूजा करहु ऋषि कृत्रिम देवन छंडि।
मनसा बाचा कर्मना निपट कपट को खंडि॥

इसी अध्याय में इन्होंने कहा है कि वासना छोड़ कर प्राणायाम साधना अच्छा है। इन कथनों से प्रकट है कि केशवदास भी सूरदास की भाँति केवल एक परमेश्वर को मानते थे और शेष देवताओं को कृत्रिम समझते थे।

वासना छोड़ना और प्राणायाम साधना गीता का आशय है। विज्ञानगीता का उदाहरण स्वरूप जो छन्द ऊपर कहा गया है वह भी गीता के आशय पर है और उसी के आशय पर विज्ञानगीता वाला जीवन मुक्त का निम्न लक्षण भी है:—

लोक कों सुख दुःखनि के जनि राग बिरागनि या महँ आनै।
डारै उपारि समूल अहंतरु कंचन काँच न जो पहिँचानै॥
बालक ज्यों भवै भूतल में भव आपुन से जड़ जंगम जानै।
केशव बेद पुरान प्रमान तिन्हैं सब जीवन मुक्त बखानै॥

इन्होंने विज्ञानगीता के निम्न दोहे में अद्वैत मत का बड़ा ही हृदयग्राही उदाहरण दिया है:—

'देव अरूप अमेय है कहे निरीह प्रकास।
सर्व जीव मंडित कहौ कैसे केशवदास? ॥
ज्यों अकाश घट घटनि में पूरण लीन न होय।
यों पूरण संदेह में रहे कहे मुनि लोग ॥'

केशवदास कहते हैं कि मनुष्य नित्य प्रति लौट लौट कर वही कर्म करता है परन्तु आश्चर्य्य कि वह ऊबता नहीं। इनके मत से संसार और स्वर्ग नरक निम्नानुसार हैं:—

'जोही जानो कर्म सब सबै जगत के कन्त।
आदि सरस मध्यम विरस अति नीरस है अन्त ॥
जोई करै सो भोगवै यह समुझौ नृपनाथ।
स्वर्ग नरक बन्धन मुकुत मानों मन की गाथ ॥'

(८ ख) इस प्रकार से गूढ़ ज्ञान कह कर इन्होंने साधारण मनुष्यों के लिए मोटिया ज्ञान भी कहा है।

केशवदास ने दान दो प्रकार के कहे हैं, एक सुपात्रों और द्वितीय कुपात्रों का।

इनके मत में कुपात्रों के दान से पुण्य के स्थान पर दानी को घोर पाप लगता है। सुपात्रों का दान तीन प्रकार का होता है, अर्थात् सात्विक, राजस और तामस।

'पूजिये द्विज आपने कर नारि संयुत जानिये।
देव देवहि थापि कै पुनि वेद मन्त्र बखानिये ॥
हाथ लै कुश गोत्र उच्चरि स्वर्ण युक्त प्रमानिये।
दान दै कछु और दीजहि दान सात्विक जानिये' ॥

देत नहीं अपने कर दानै। औरन हाथ जु मंगल जानै॥
दानहि देत जु आरसु आवै। सो वह राजस दान कहावै॥
बिप्रन दीजत हीन बिधानै। सो वह जानहु तामस दानै॥
द्विज धाम देहिं जो जाय। बहु भाँति पूजि सुराय॥
कछु नाहिनै परिमान। कहिये सो उत्तम दान॥
द्विज को जो देत बोलाय। कहिये सो मध्यम राय॥
गुनि जांचना मिसि दानु। अति हीन ता कहँ जानु॥

दानपात्रों के क्रम को इन्होंने यों कहा है :—

'पहिले निज वर्त्तिन देहु अबै। फिरि पावहिं नागर लोग सबै॥
फिरि देहु सबै निज देसिन को। उबरो धन देहु बिदेसिन को॥

दान सकाम तथा अकाम एवं दक्षिण ( धर्मनिमित्त ) और बाम ( धर्म-विरुद्ध ) भी होते हैं।

केशवदास ने भूमिदान को सर्व-श्रेष्ठ माना है। इन्होंने दानपात्र ब्राह्मणों को ही माना है और उन्हीं में न्यूनाधिक गुणों के कारण उत्तमता की न्यूनाधिकता कर दी है। भूखों, कंगालों आदि का दान से इन्होंने अधिक सम्बन्ध नहीं माना है और न देशहितकारक दानों का वर्णन किया है।

( ८ ग ) केशवदास ने हर स्थान पर ब्राह्मणों की महिमा गाई है। उदाहरणार्थ दो एक छन्द नीचे लिखे जाते हैं।

'द्विज दोषी न बिचारिये कहा पुरुष कह नारि।
राम बिरामन कीजिये बाम ताड़का तारि॥
ब्रह्म दोष के अग्नि कण सब समूल जरि जात॥

ज्यों द्विज दोष ते सन्तति नाशति त्यों गुण भाजत लोभ के आगे ॥
बिप्रन जानहु ये जग रूपै । जानहु ये सब विष्णु स्वरूपै ॥

साचारो वा निराचारो साधुर्वाऽसाधुरेव च ।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥

जिनके पूजे तुम भये अन्तर्यामी ओप ।
तिनकी बात हमैं कहा बूझत त्रिभुवन दीप ॥

'गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै
भोगवै नरक घोर चोर को अभय दानि ॥'

परन्तु इसके साथही साथ केशवदास शत्रु पर आने वाली दया को भी निन्द्य समझते थे ।

'दया धिक अरि पै आवै ।'

( ८ ग ) अन्त में सब धर्म्मों का सार केशवदास ने निम्न लिखित कलि-धर्म्म कहा है :—

जब वेद पुराण नसै हैं । जप तीरथ मध्य बसै हैं ॥
उपदेश जुमारि किवारे । कलि केवल नाम उधारे ॥

स्त्रियों के वास्ते केशवदास ने केवल पति-भक्ति धर्म्म कहा है ।

'कुबजे कलही काहली कुटिल कृतघ्न कुरूप ।
सपनेहू न तजै तरुणि कोढ़ीहू पति भूप ॥
नारी तजै न आपनो सपनेहू भरतार ।
पंगु गुंग बौरा बधिर अन्ध अनाथ अपार' ॥

( ९ क ) केशवदास ने अपने सब ग्रन्थों में अन्य ग्रन्थों के छन्द बराबर लिखे हैं । इनकी कविता कुछ कठिन भी होती है, यहाँ तक कि कवियों में यह बात प्रसिद्ध है कि—

'कवि कहँ दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई'

( ९ ख ) केशवदास सर्वव्यापिनी दृष्टि के कवि थे ( poet of general vision )। इन्होंने रामचन्द्रिका में रामचन्द्र की ठग से भी समानता कराई है। अब इसका प्रयोजन नहीं है कि कवि उन्हें ठग कहता है वरन् जंगल में ऐसे लोग भी मिलते थे जो उन्हें ठग समझ बैठते थे। इसी भाँति इन्होंने हनुमान के विषय में बिभीषण से रावण को यह सलाह दिलवाई कि—

'एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई।
बुन्द सोंकिगो कहा महा समुद्र छीजई'॥

( ९ ग ) केशवदास ने एक महा-काव्य भी बनाया है क्योंकि रामचन्द्रिका वास्तव में महाकाव्य है और महाकाव्य के लक्षण में भी आती है। केशवदास के मतानुसार भी यह उत्तम काव्य है।

केशवदास भाषा-काव्य के एक बड़ेही भारी कवि थे और देवजी आदि ने भी इनको महाकवि माना है यथा 'केशव आदि महाकविन' इत्यादि। ये महाशय भाषा के भाम मम्मट के समान थे।

---

# महाकवि मतिरामजी ।

मतिरामजी तिवारी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर था। ये महाराज तिकवाँपूर ज़िला कानपूर के रहने वाले थे और इनका जन्म सम्भवतः संवत् १६९६ सन् १६४० ईसवी में हुआ था। मतिराम के किसी ग्रन्थ से उनके विषय कुछ भी ज्ञात नहीं होता परन्तु ये महाशय महाकवि भूषण के छोटे भाई हैं और भूषण की कविता से उनके विषय में सब बातें ज्ञात हुई है। भूषण की जीवनी लिखने में हम ने लिखा है कि उनका जन्म सं० १६९२ के लगभग हुआ था। मतिराम उनके छोटे भाई थे अतः अनुमान से जाना जाता है कि इनका जन्म सं० १६९६ के लगभग हुआ होगा।

मतिरामजी बूँदी के महाराज रावभाऊसिंह के यहाँ रहते थे। महाराज भाऊसिंह सन् १६५९ ई० में सिंहासनारूढ़ हुए थे और सन् १६८८ ई० तक उन्होंने राज्य किया था। उसी समय में मतिरामजी ने अपना ग्रन्थ "ललितललाम" बनाया होगा क्योंकि 'ललितललाम' ख़ास कर रावभाऊसिंह के वास्ते बनाया गया था और उसमें इन्हीं महाराज की प्रशंसा में क़रीब सौ छन्द हैं। मतिरामजी महाराजा शम्भुनाथ के यहाँ भी रहे हैं और इन्हीं के नाम से उन्होंने 'छन्दसार पिङ्गल' नामक बड़ा ग्रन्थ बनाया है।

शिवसिंहजी इनका कुमाऊँ नरेश उद्योतसिंह के यहाँ रहना भी बतलाते हैं। उन्होंने इनका कोटा में भी रहना कहा है परन्तु यह माननीय नहीं। शिवसिंहजी समझते थे कि रावभाऊसिंह कोटा के राजा थे परन्तु वास्तव में वे केवल बूँदी के राजा थे। ललितललाम में मतिराम ने रावभाऊसिंह के पूर्वजों का इस प्रकार वंश कहा है। बूँदी-नरेश सुरजनराव के पुत्र भोजसिंह, उनके रतनसिंह और उनके गोपीनाथ हुए। गोपीनाथ के पुत्र छत्रशाल और उनके भाऊसिंह थे। बूँदी के महाराजा रघुवीरसिंह ने सन् १८९७ ई० में ललितललाम का टीका गुलाब कवि द्वारा बनवाया। गुलाब कवि ने अपनी टीका की भूमिका में भाऊसिंह के पीछे वाले बूँदी के महाराजाओं के नाम लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं:—भाऊसिंह के पुत्र कृष्णसिंह, उनके अनिरुद्धसिंह, उनके राव राजा बुद्धसिंह और उनके उम्मेदसिंह हुए। उम्मेदसिंह के पुत्र अजीतसिंह, उनके विष्णुसिंह, उनके रामसिंह और उनके महाराजा रघुवीरसिंह पुत्र हुए। हिन्दुस्तान में वीरता, राजभक्ति और न्याय में बूँदी-नरेशों से बढ़ कर सिवा चित्तौर के और कहीं के नरेश नहीं हुए।

ललितललाम अलङ्कारों का ग्रन्थ है और वह एक बूँदी-नरेश की आज्ञा से सम्भवतः सन् १६७४ ई० में बना और दूसरे बूँदी-नरेश की आज्ञा से गुलाब कवि ने सन् १८९७ ई० में उसकी टीका रची। इसके छापने में भी ऐसी निरालसता से काम लिया गया है कि इसमें कोई दोष नहीं रहा। मतिराम ने भाऊसिंह की प्रशंसा में कितने ही उत्तम छन्द कहे हैं। उदाहरणार्थ एक छन्द नीचे लिखा जाता है।

"सूबनि उमेड़ि दिली दल दलिबे को चमू सुभट समूहनि सिवा की उमहति है। कहै मतिराम ताहि रोकिबे को संगर में काहू के न हिम्मति हिये में उलहति है॥ शत्रुशाल नन्द के प्रताप की लपट सब गरबो गनीम बरगीन को दहति है। पति पातसाह की इजति उमरावन की राखी रैया राव भावसिंह की रहति है॥"

मतिराम ने भाऊसिंह के हाथियों का वर्णन बहुत किया है; जान पड़ता है कि उनके हाथी बहुत से और उत्तम थे। इस ग्रन्थ में कुल मिला कर ४४४ छन्द हैं, सो यह भूषण कृत 'शिवराज-भूषण' से आकार एवं अलंकारों की संख्या में कुछ बड़ा है। यह बहुत ही उत्तम ग्रन्थ है। मतिराम ने 'रसराज' बनाने में इसके उत्तम उत्तम छन्द उठा कर उस ग्रन्थ में भी रख दिये हैं। यदि कोई मनुष्य बिना गुरु की सहायता के अलंकार पढ़ना चाहे तो हम उसे 'शिवराजभूषण' और 'ललितललाम' पढ़ने की अनुमति देंगे। ललितललाम में शृङ्गार का बाहुल्य नहीं है। यह मतिराम का पहला ग्रन्थ है।

रसराज—में मतिरामजी ने भावों का वर्णन किया है, परन्तु इन्होंने नायका-भेद से ग्रन्थ उठाया है और कुल नायका-भेद कह के अन्त में कह दिया है कि भाव भेद में यह आलम्बन-विभाग में आता है। सिवा भावों के इसमें रसों का वर्णन नहीं हुआ है केवल शृङ्गार रस का नाम आ गया है परन्तु उसका स्वरूप नहीं दर-शाया गया है। भावों का वर्णन पूरा हुआ है। मतिराम ने जम्भा को नवाँ सात्विक भाव माना है। रसराज मतिराम का बहुत

उत्तम ग्रन्थ है। नायका-भेद के ग्रन्थों में इसका बहुत ऊँचा पद है। देवजी के ग्रन्थों के अतिरिक्त 'रसराज' से उत्तम भाव भेद किसी अन्य ग्रंथ में नहीं वर्णित है। इसमें ४२६ छन्द हैं। नायका-भेद के पढ़ने वाले इस ग्रन्थ को सबसे पहले पढ़ते हैं और इसमें बहुत सुगम और साफ़ रीति से नायका-भेद वर्णित भी है। यह ग्रन्थ सम्भवतः सं० १७६७ के लगभग बना है। उस समय जान पड़ता है कि बूँदी-नरेशों से इनसे सम्बन्ध टूट चुका था क्योंकि ललितललाम की भाँति यह ग्रन्थ किसी के नाम पर नहीं बनाया गया है। सं० १७६७ के कुछ ही पहले मतिरामजी के कहने से उनके बड़े भाई भूषण महाराज बूँदी-नरेश के यहाँ जाकर अप्रसन्नता के साथ लौटे थे उसी समय से जान पड़ता है कि मतिरामजी ने भी बूँदी दरबार से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। १७६७ के पश्चात् मतिरामजी के जीवित रहने का कोई प्रमाण नहीं है पर यदि यह भूषणजी के पहले मरे होते तो भूषण इनके विषय में कुछ अवश्य लिखते। जान पड़ता है कि सं० १७७३ के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ।

छन्दसारपिङ्गल—हमारे पास वर्त्तमान नहीं है। इसके आदि के दो चार पृष्ठ पण्डित युगलकिशोरजी के पास हैं, जिनके पढ़ने से विदित होता है कि यह ग्रंथ बहुत बड़ा होगा क्योंकि यह बड़े विस्तारपूर्वक उठा है। जैसी कविता मतिरामजी करते थे वैसी ही इस ग्रंथ में भी पाई जाती है।

'यह ग्रन्थ महाराजा शम्भुनाथ के नाम पर बनाया गया है। ये महाराज कविता में बड़े पटु थे। इनका बनाया हुआ नखशिख

हमारे पास वर्त्तमान है। काव्य में ये अपना नाम नृप शम्भु रखते थे।

मतिरामजी की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। इनकी भाषा बहुत ही उत्तम होती थी। सिवा देवजी के ग्रौर कोई भी कवि ऐसी मधुर भाषा लिखने में समर्थ नहीं हुआ है। इनकी कविता में मिलित वर्ण बहुत ही कम आने पाये हैं। इनको अनुप्रासादि का इष्ट न था परन्तु उचित रीति पर भाषा-सम्बन्धी प्रायः सभी सद्गुण इन्होंने अपनी कविता में रक्खे हैं। माधुर्य्य ग्रौर प्रसाद मानों इन्हीं के वास्ते रचे गये थे। इनकी भाषा का उदाहरणस्वरूप हम एक छन्द नीचे लिखते हैं।

बेलिन सों लपटाय रही हैं तमालन की अवली अति कारी।
कोकिल कूक कपोतन के कुल केलि करैं अति आनँद वारी॥
सोच करै जनि होहु सुखी मतिराम प्रवीन सबै नर नारी।
मंजुल बंजुल कुंजन के घन पुंज सखी ससुरारि तिहारी॥

मतिरामजी ने उपमायें भी कहीं कहीं बहुत अच्छी रक्खी हैं।

पिय आयो नव बाल तन बाढ़्यो हरष बिलास।
प्रथम बारि बूँदन उठै ज्यों बसुमती सुबास॥

देवजी की भाँति मतिराम ने भी मानुषीय प्रकृति के अतिरिक्त सांसारिक प्रकृति पर विशेष ध्यान नहीं दिया है, परन्तु मानुषीय प्रकृति का वर्णन अच्छा किया है। उदाहरण लीजिए:—

ह्वाँ मिलि मोहन सों मतिराम सुकेलि करी अति आनँद वारी।
तेई लता द्रुम देखतै दुःख चले अँसुवा अँखियान ते भारी॥

आवति हौं जमुना तट को नहिँ जानि परै बिछुरे गिरिधारी।
जानति हौं सखि आवन चाहत कुंजन ते कढ़ि कुंजबिहारी॥

मतिरामजी ने प्राकृतिक वर्णन को इतना नहीं बढ़ाया है कि वे तसवीर खड़ी कर सकते, परन्तु कहीं कहीं उन्होंने ऐसा किया भी है।

अंजन दै निकसै नित नैननि मंजन कै नित अंग सँवारै।
रूप गुमान भरी मग मैं पगही के अँगूठा अनौट सुधारै॥
जोबन के मद सों मतिराम भई मतवारिनि लोग निहारै।
जात चली यहिँ भाँति गली बिथुरी अलकैं अचरा न सँभारै॥

मतिरामजी ने जैसे उत्तम कवित्त और सवैया कहे हैं वैसेही दोहे भी बनाने में यह कवि समर्थ हुआ है।

तिय को मिल्यो न प्रानपति सजल जलद तन मैन।
सजल जलद लखि कै भये सजल जलद से नैन॥
पीतम को मन भावती मिलति बाँह दै कंठ।
बाहीं छुटै न कंठ ते नाहीं छुटै न कंठ॥

मतिरामजी ने केवल तीन ग्रन्थ बनाये हैं परन्तु तो भी इनकी कविता में सैकड़ों उत्तम छन्द भरे हैं। देवजी की भाँति यह महाकवि भी बहुत ही उत्तम छन्द बनाने में समर्थ हुआ है। उत्तम छन्दों की गणना करने से जान पड़ेगा कि इनकी कविता में भी देवजी की भाँति ऐसे छन्दों का बाहुल्य है। उदाहरणार्थ केवल एक छन्द नीचे लिखा जाता है।

वैसेई चितै कै मेरे चित को चुरावती हौ बोलती हौ वैसियै मधुर मृदु बानि सों। कवि मतिराम ग्रंक भरत मयंक मुखी वैसेही रहत गहि भुज लतिकानि सों॥ चूमत कपोल पान करत ग्रधर रस वैसियै निहारी रीति सकल कलानि सों। कहा चतुराई ठानियत प्रानप्यारी तेरो मान जानियत रूखी मुख मुसकानि सों॥

कुल बातों पर ध्यान देने से जान पड़ता है कि मतिराम महाराज भाषा के बहुत बड़े कवि थे ग्रौर सिवा दो चार परमोत्तम कवियों के ग्रौर किसी कवि की रचना मतिराम की कविता से समानता नहीं कर सकती। यदि देवजी के पार्श्ववर्त्ती होने का कोई कवि हक रखता है तो वह यही कवि है। इनके ग्रतिरिक्त देवजी के ग्रपूर्व गुण कहीं भी नहीं पाये जाते। मतिराम के सवैयाग्रों से देवजी का ग्रौर दोहों से बिहारीलाल का स्मर्ण ग्राता है। शृंगारी कवियों में इनकी वीर कविता बहुत ग्रच्छी होती है ग्रौर ललितललाम में इन्होंने भूषण का भाई होना सार्थक कर दिखाया है।

———

## महाकवि चन्दबरदाई ।

चन्दबरदाई हिन्दी का वस्तुतः प्रथम कवि है। इसके पहिले भी पुषी आदि कवि होगये हैं परन्तु उनके नामों के अतिरिक्त उनकी रचना आदि पढ़ने का हम लोगों को सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। चन्दबरदाई की कविता से प्रकट होता है कि वह प्रौढ़ रचना है और छन्द आदि की रीतियों पर इसमें ऐसा अनुगमन हुआ है कि जान पड़ता है कि यह महाशय दृढ़ रीतियों पर चलता था और स्वयं इसने हिन्दीकाव्य-रचना की नीव नहीं डाली। उस समय चारण आदि राजा महाराजाओं के यहाँ प्रायः रहा करते थे और उनका यह काम ही था कि हिन्दी-कविता में राज-यश गान करें। स्वयं कविचन्द ने लिखा है कि गुजरात में एक बार राजा भोरा-भीमंग के राजकवि से उससे बाद हुआ था जिससे भी उस समय दरबारों में कवियों के उपस्थित रहने का प्रमाण मिलता है। कवियों की उस समय इतनी चाह थी कि चित्तौर के रावलसमरसिंहजी का ब्याह जब पृथ्वीराज की भगिनी पृथा कुँवरि से हुआ था तब उन्होंने कलेवा करने के समय दायज में सहठ कविचन्द के पुत्र जल्हकवि को ले लिया तब भोजन किया। यह हाल रासो में लिखा है। रासो के समाप्त करने के पहिले ही कविचन्द का शरीर-पात हो गया था तब उसके इसी पुत्र जल्ह ने उसका अन्तिम भाग लिख कर ग्रन्थ समाप्त किया। इन सब बातों से विदित है कि उस समय

हिन्दी-कविता का अच्छा प्रचार था पर तत्कालीन अन्य कवियों के ग्रन्थ ऐसे उत्तम न थे कि आठ सौ वर्षों के पीछे भी अब तक जीवित रहते और उनका प्रचार लोक में रहता। उस समय और उसके पहिले के ग्रन्थों में काल के कुचक्र ने केवल इस एक ग्रन्थ-रत्न को सजीव रक्खा और वह शेष सब ग्रन्थों को निगल कर अपने उदर-समुद्र में सदा के लिये लीन कर गया जहाँ से अब उनका निकलना ऐसा ही दुःसाध्य है जैसा कि स्थिर महासागर में फेंके हुए एक लोह के छोटे से टुकड़े का। अतः यद्यपि वास्तव में कवि-चन्द हिन्दी का प्रथम कवि न था परन्तु वह हिन्दी का प्रथम उत्त-मोत्तम कवि अवश्य था और काल ने अब अन्य कवियों के यशों को चर्वित करके उसे प्रथम कवि बना भी दिया है।

कविचन्द ने अपने जन्मादि के विषय कुछ वर्णन नहीं किया और पृथ्वीराज इत्यादि के विषय संवत् लिखते हुए भी अपने विषय संवत् नहीं लिखे। हम लोग इतना तो अवश्य जानते हैं कि वह जगात गोत्र का भाट था और उसका जन्म लाहौर में हुआ था पर इससे अधिक उसके जन्म पूर्व पुरुष आदि के विषय निश्चयात्मक रीति पर कुछ नहीं जानते। चन्द के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०५ वि० में हुआ था और अनुमान से जान पड़ता है कि यह पृथ्वीराज से अवस्था में कुछ बड़ा था क्योंकि एक तो पृथ्वी-राज इसकी सलाहों को आदर से सुनता था और दूसरे एक स्थान पर अपनी सलाह न मानने पर इसने लिखा है कि राजा ने धन और वय से मत्त होकर मेरी अनुमति नहीं मानी। यदि यह राजा से बड़ा न होता तो ऐसा लिखने का इसे साहस ही न होता और

यदि यह ऐसा लिखता भी तो राजा इस पर अवश्य रुष्ट हो जाता पर पृथ्वोराज का इससे रुष्ट होना पाया नहीं जाता है और ऐसा लिखने के पीछे भी इसका पूर्ववत् मान रहा है। फिर पृथ्वोराज की भगिनी पृथाकुवँरि के विवाह के समय इसका पुत्र जल्ह ऐसा गुणी हो चुका था कि रावलसमरसिंह ने उसे सहठ दायज में लिया। अतः वह उस समय सम्भवतः २५ वर्ष का होगा और तब चन्द शायद ४५ साल का हो। इसके पीछे संवत् १२२८ में पृथ्वीराज ने एक ख़ज़ाना पृथ्वो खुदा कर पाया था जिसका वर्णन रासे के ७३८ पृष्ठ में है। पृथ्वीराज की मृत्यु संवत् १२४८ में ४३ वर्ष की अवस्था में हुई थी। उसी समय चन्द की भी मृत्यु हुई क्योंकि वह राजा के साथ ही मारा गया था, सो १२४८ वि० में चन्द की अवस्था सम्भवतः ६५ वर्ष की थी। अतः उसका जन्म-काल ११८३ वि० अथवा सन् ११२६ ई० के लगभग समझ पड़ता है। इससे बहुत अधिक भी इनकी अवस्था नहीं जान पड़ती क्योंकि यदि अधिक बुड्ढे होते तो मृत्यु पर्य्यन्त ये युद्धों में न सम्मिलित रह सकते। इस दूसरे हिसाब से भी उसकी अवस्था पृथ्वोराज से प्रायः २८ वर्ष बड़ी निकलती है जो बात प्रथम अनुमान से भी मिलती है। चन्द की मृत्यु पृथ्वीराज के साथ ही हुई यह बात प्रसिद्ध है अतः सन् ११९३ ई० में वह मरा। कहते हैं कि जब शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को पकड़ ले गया, तब चन्द राजा के छोड़ाने के विचार से ग़ोर देश को गया और वहीं मारा गया।

चन्द के पितादि का हाल हमें ज्ञात नहीं है। यह लाहौर में उत्पन्न हुआ था और अजमेर में इसका पालन-पोषण हुआ। यह

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर की राजधानी थी। यहीं चन्द पृथ्वी-राज के साथ रहने लगा और यहीं यह पृथ्वीराज के तीन प्रधान मन्त्रियों में एक होगया। पृथ्वीराज के शेष दोनों मन्त्रियों के नाम कैमास और गुरुराम पुरोहित थे। कैमास तीनों में भी प्रधान था। चन्द अजमेर से मृत्यु पर्य्यन्त सदैव पृथ्वीराज के साथ रहा और युद्धों में भी लड़ता रहा। जो जो हाल रासो में वर्णित है उस सब में एक प्रकार से चन्द की भी जीवनी वर्णित है। इसकी स्त्री बड़ी गुणवती थी और रासो उसीसे कहा गया है। बीच बीच में उसने बहुत से प्रश्न भी किये हैं। इनका पुत्र जल्ह बड़ा गुणवान् था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है रावलसमरसिंहजी उसे दहेज में ले गये थे और वह उसी समय से चित्तौर में रहने लगा। यह रावलसमरसिंह चित्तौर-नरेश और वर्त्तमान उदयपूर के महाराणा के पूर्व पुरुष थे। एक बार कैमास पृथ्वीराज की ओर से गुजरात के राजा भोरा भीमंग से लड़ने गया पर भीमंग की भेजी हुई एक खत्री-बालिका पर ऐसा आसक्त हो गया कि पृथ्वीराज को छोड़ भीमंग से मिल गया और नागौर पर उसका अधिकार करा दिया। यह दशा देख चन्दबरदाई एक सेनासहित नागौर जाने लगा। मार्ग में भीमंग के दल से युद्ध भी हुआ पर उस दल को घोर समर में पराजित करके यह वीर कवि कैमास के पास जान पर खेल कर जा पहुँचा। इसे देख कर कैमास को ऐसी लज्जा लगी कि वह सर न उठाता था। तब चन्द ने उसे समझाया कि भूल सबसे हो जाती है पर भूल का न सुधारना ही मुख्यशः निन्द्य है। इस पर

चन्द ग्रौर कैमास ने मिल कर युद्ध में भोरा भीमंग के दल को पराजित करके नागौर पर फिर पृथ्वीराज का ग्रधिकार कराया ग्रौर तब ये दोनों दिल्ली लौट ग्राये। इस वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि चन्दबरदाई कोरा कवि ही न था वरन् प्रचंड युद्ध-कर्त्ता भी था।

पृथ्वीराज के यहाँ चन्द की ऐसी प्रतिष्ठा थी जैसी कि ख़ास राजा के भाई की हो। एक बार चन्द द्वारिकापुरी को दर्शनार्थ गया। उस समय इसके साथ बहुत से हाथी, सैकड़ों घोड़े, ग्रौर हज़ारों पैदल गये। मार्ग में यह चित्तौर के समीप भी ठहरा। उस समय पृथ्वीराज की भगिनी पृथाकुवँरि स्वयं इसके डेरे पर इससे मिलने ग्राईं ग्रौर तब यह कवि चित्तौर जाकर महारानी के भाई की भाँति दो चार दिन पहुनई में वहाँ रहा। महारानी पृथाकुवँरि राव-लसमरसिंह की पटरानी थीं। यह हाल भी रासो में लिखा है। इससे इस कविरत्न के सन्मान का हाल प्रत्यक्ष प्रकट होता है। द्वारिका से पलटते हुए चन्दकवि पृथ्वीराज के शत्रु भोरा-भीमंग के यहाँ भी गया ग्रौर वहाँ भी इस ने पृथ्वीराज का यश गान किया। वहाँ के राजकवि को इसी ग्रवसर पर चन्द ने वाद में हराया था। कन्नौज के महाराजा जैचन्द के भाई का विवाह एक परम सुन्दरी राजकुमारी से होता था ग्रौर बारात भी गई थी पर राजकुमारी की इच्छा पृथ्वीराज के साथ विवाह करने की थी। यह सुन कर पृथ्वीराज ने ससैन वहाँ जाने का विचार किया। यही झगड़ा जैचन्द से शत्रुता फिर उभड़ने का प्रधान कारण

हुआ। चन्द ने इस अवसर पर पृथ्वीराज को ऐसा करने से बहुत रोका पर उसने न माना। इसी पर चन्द ने लिखा है कि धन-वय-मत्त राजा ने उसकी अनुमति का आदर न किया। यदि चन्द की अनुमति मानी जाती तो पृथ्वीराज और जैचन्द का झगड़ा न बढ़ता और शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को पराजित करने में समर्थ न होता।

चन्दबरदाई का एक मात्र ग्रन्थ पृथ्वीराजरासो है परन्तु इसी एक ग्रन्थ में २००० से ऊपर पृष्ठ हैं। यह ग्रन्थ माने वर्त्तमान काल का ऋग्वेद है। जैसे ऋग्वेद अपने समय का बड़ा मनोहर ऐसा इतिहास बताता है जो अन्यत्र अप्राप्य है उसी प्रकार रासो भी अपने समय का परम दुष्प्राप्य इतिहास विस्तार-पूर्वक बताता है। पृथ्वीराज के समकालीन प्रायः सभी भारतवर्षीय राजाओं का सविस्तर वर्णन इस ग्रन्थरत्न में मिलता है। पर दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ अप्राप्य हो गया था। यह देख काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा साहस करके प्रचुर द्रव्य व्यय से इसे प्रकाशित कर रही है यहाँ तक कि प्रायः १८०० पृष्ठ तक छप चुके हैं और शेष छपते जाते हैं। पण्डितवर मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने रासो पर बहुत अधिक और परम प्रशंसनीय श्रम किया है और इसके विषय बहुत सी बातें खोज द्वारा निकाली हैं। उनके साथ मित्रवर राधाकृष्णदास एवं श्यामसुन्दरदास ने भी इसके विषय प्रचुर श्रम किया और यह इन्हीं तीनों महाशयों के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। दो भागों के पीछे बाबू राधाकृष्णदास की अकाल मृत्यु से अब शेष भाग दो

ही महाशय सम्पादित करते हैं। रासो में सम्पादकों ने फुटनोट में अर्थ-पाठान्तर आदि भी दिये हैं जो सन्तोषदायक हैं।

रासो की रचना से प्रकट होता है कि वह जैसे जैसे घटनायें होती गई हैं वैसे ही वैसे बनता गया है। ऐसा नहीं हुआ है कि सब घटनाओं के पीछे वह एक साथ बनाया गया हो। इसी कारण जैसे कविगण किसी घटना के वर्णन में प्रायः कह दिया करते हैं कि इस घटना से आगे चल कर बहुत उपद्रव अथवा लाभ हुए हैं जो आगे लिखे जावेंगे, वैसे कथन रासो में नहीं पाये जाते। इसी कारण से रासो में प्रत्येक घटना का बड़ा ही सजीव, परिपूर्ण एवं भव्य वर्णन है। प्रत्येक घटना में जैसी जैसी मन्त्रियों से सलाहें ली गईं, और जिस जिस मन्त्री ने जो जो कहा वह सब रासो में लिखा है चाहे वह अनुमतियाँ नितान्त साधारण ही क्यों न हों। इसी प्रकार युद्धों में जितने जितने दिन प्रत्येक युद्ध रहा, जिस जिस में जो जैसा लड़ा और जिस प्रकार अपनी अथवा शत्रु की चमू रक्खी गई, वह सब अत्यन्त परिपूर्णता के साथ कहा गया है। प्रायः सब युद्धों में चन्द ने स्वसेन तथा शत्रुसेना दोनों की शोभा का वर्णन किया है और सदैव पृथक् प्रकार से। इसी प्रकार चन्द ने न जानें कितने युद्धों के वर्णन दिये हैं परन्तु उन सब में पार्थक्य वर्त्तमान है। इससे भी प्रकट होता है कि चन्द ने घटनाओं के साथ ही साथ रासो को बनाया है नहीं तो एक ही प्रकार की घटनायें लिखने में एक ही से वर्णन हो जाते और उनमें पार्थक्य बहुत कम रहता।

इन बातों के रहते हुए भी पण्डितवर महामहोपाध्याय कविराज श्यामलजी को रासो के असली ग्रन्थ होने के विषय सन्देह हो

गया है। उनका मत है कि रासो को किसी ने सोलहवीं या सत्र-हवीं शताब्दी में चन्द के नाम से बना दिया है। इस सन्देह की पुष्टि में दो प्रधान कारण बतलाये जाते हैं; एक तो यह कि रासो में प्रति सैकड़ा १० के लगभग अरबी फ़ारसी आदि के शब्द हैं और दूसरे इसमें लिखे हुए घटनाओं के संवत् सब अशुद्ध हैं। कहा जाता है कि चन्द के समय हिन्दी में इतने विदेशीय शब्दों का होना असम्भव है क्योंकि मुसल्मानों के आने के पीछे ही उनके शब्द हिन्दी में आ सकते थे।

विदेशीय शब्दों के विषय पण्डितवर मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या का मत है कि रासो में इतने अधिक विदेशीय शब्द हैं भी नहीं और थोड़े बहुत विदेशीय शब्दों का होना शङ्का का कारण भी नहीं हो सकता। बाबू श्यामसुन्दरदासजी का मत है कि प्रति सैकड़े १० ऐसे शब्द रासो में हैं। हमारे मत में कम से कम प्रति सैकड़ा ५ विदेशीय शब्द रासो में अवश्य होंगे पर इस बात से कोई सन्देह न होनी चाहिए। भारत में शहाबुद्दीन के साथ ही यवनों का प्रवेश नहीं हुआ है बरन् उसके प्रायः दो सौ वर्ष पहले से ही महमूद ग़ज़नवी की चढ़ाइयाँ होने लगी थीं और पञ्जाब का एक बृहदंश मुसल्मानों के अधिकार में चला गया था। महमूद से भी पहिले सिन्ध देश पर मुसल्मानों का अधिकार हो गया था। अतः पञ्जाबी भाषा में मुसल्मानी शब्दों का मिलना स्वाभाविक ही था। फिर चन्दबरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था जहाँ उस समय मुसल्मानों हीं का अधिकार था। चन्द ने अपना बाल्य-काल इसी

स्थान पर बिताया था। स्वयं पृथ्वीराज के यहाँ शहाबुद्दीन का भाई हुसेन और हुसेन-पुत्र रहते थे और उन्हें जागीर भी मिली थी। पृथ्वीराज के राज्य की सीमा मुसल्मानी राज्य से मिली हुई थी। ऐसी दशा में व्यापारिक सम्बन्ध से भी मुसल्मानों का यातायात हिन्दुओं में अवश्य रहता होगा। इन सब कारणों से चन्द की भाषा में मुसल्मानी शब्दों का होना स्वाभाविक था और इन शब्दों के कारण हम रासो के विषय में कोई सन्देह नहीं उठा सकते।

सन् संवतों का गड़बड़ अधिक सन्देह का कारण हो सकता था पर भाग्यवश विचार करने से वह भी निर्मूल ठहरता है। चन्द के दिये हुए संवतों में घटनाओं का काल अटकल पच्चू नहीं लिखा है वरन् इतिहास द्वारा जाने हुए समय से चन्द के कहे हुए संवत् सदा ९० वर्ष कम पड़ते हैं और यही अन्तर एक दो नहीं प्रत्येक घटना के संवत् में देख पड़ता है। यदि चन्द के किसी संवत् में ९० जोड़ दें तो ऐतिहासिक यथार्थ संवत् निकल आता है। चन्द ने पृथ्वीराज के जन्म, दिल्ली गोद जाने, कन्नौज जाने, तथा अन्तिम युद्ध के १११५, ११२२, ११५१, ११५८ संवत् दिये हैं और इनमें ९० जोड़ देने से प्रत्येक घटना के यथार्थ संवत् निकल आते हैं (पृथ्वी-राज रासो पृष्ठ १४० देखिये)। प्रत्येक घटना में केवल ९० साल का अन्तर होने से प्रकट है कि कवि इन घटनाओं के संवतों से अनभिज्ञ न था नहीं तो किसी में ९० वर्षों का अन्तर पड़ता और किसी में कुछ और। यदि यह कहें कि यह अशुद्धता इस कारण हुई कि रासो सोलहवीं शताब्दी में बना और उसका रचयिता

वास्तविक संवतों से अनभिज्ञ था, तो आश्चर्य्य-सागर में डूबना पड़ता है। जो कवि पृथ्वीराज के समय की छोटी छोटी घटनाओं तक के जानने का श्रम उठावेगा वह क्या इतना भी न जान लेगा कि शहाबुद्दीन ने किस संवत् में भारत पर विजय पाई थी। मुसल्मानी राजत्व काल में इतना जानना कुछ कठिन भी न था। अतः चाहे जिस घटना का संवत् वह अशुद्ध लिखता पर इस घटना का काल अशुद्ध नहीं लिख सकता था। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि रासो में साधारण विक्रमीय संवत् का प्रयोग नहीं हुआ है वरन् किसी ऐसे संवत् का प्रयोग हुआ है जो वर्त्तमान काल के प्रचलित विक्रमीय संवत् से ९० वर्ष पीछे था। अब देखना चाहिये कि चन्द ने इस विभिन्नता का कुछ संकेत भी दिया है कि नहीं। रासो के १३८ वें पृष्ठ पर यह दो दोहे मिलते हैं :—

एकादस सै पंच दह विक्रम साक अनन्द।
तेहि रिपु जयपुर हरन को भय प्रिथिराज नरिन्द॥
एकादस सै पंचदह विक्रम जिम ध्रम सुत्त।
त्रतिय साक प्रथिराज को लिष्यो विप्र गुन गुप्त॥

इससे प्रकट है कि चन्द पृथ्वीराज का जन्म १११५ विक्रम अनन्द संवत् में बताता है। अतः वह साधारण संवत् न लिख कर 'अनन्द' संवत् लिखता है। अनन्द का अर्थ साधारणतया आनन्द भी कहा जा सकता है पर इस स्थान पर आनन्द के अर्थ लगाने से ठीक अर्थ नहीं बैठता है। यदि आनन्दद शब्द होता तो आनन्द वाला अर्थ बैठ सकता था। अतः प्रकट होता है कि चन्द अनन्द

संज्ञा का कोई विक्रमीय संवत् लिखता है। यह अनन्द संवत् जान पड़ता है कि साधारण संवत् से ९० वर्ष पीछे था। पण्डितवर पंड्याजी ने लिखा है कि उस समय के चित्तौर-नरेश समरसिंहजी और उनकी महारानी पृथाजी के कुछ पट्टे परवाने आदि भी मिले हैं जो असली जान पड़ते हैं। इनमें भी इसी अनन्द संवत् में समय दिया गया है जो साधारण संवत् से ९० वर्ष पीछे है। उन्होंने यह भी कहा है कि बाप्पा रावल आदि के भी समय इसी संवत् से मिलाये जा सकते हैं। नागरी-प्रचारिणी-सभा के खोज में जो पुराने आज्ञा पत्र पृथ्वीराज, समरसिंह आदि के मिले हैं उनमें भी इसी संवत् का प्रयोग हुआ है। अतः जान पड़ता है कि उस समय राजाओं के यहाँ यही अनन्द संवत् प्रचलित था।

अनन्द संवत् किस प्रकार चला और साधारण संवत् से वह ९० वर्ष पीछे क्यों है इसके विषय पंड्याजी ने कई तर्क दिये हैं पर दुर्भाग्यवश उनमें से किसी पर हमारा मत नहीं जमता है। बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने भी एक कारण बतलाया है पर वह भी हमें ठीक नहीं जान पड़ता।

पण्डित वर पंड्याजी की दलीलों पर विचार।

## दलील।

( १ ) अनन्द शब्द 'अ' और 'नन्द' से बना है। अ के अर्थ अभाव के हैं जो गणनाक्रम में शून्य के माने जाते हैं और नव नन्द हुये थे ( जिन्होंने चन्द्र गुप्त के प्रथम राज किया था ) सो नन्द के अर्थ गणना में ९ के इसी प्रकार माने जाते हैं जैसे चन्द्रमा के १,

नेत्र के २, राम के ३, वेद के ४, बाण के ५, शास्त्र के ६, ऋषि के ७, वसु के ८ माने जाते हैं। अतः अनन्द के अर्थ ९० के हुए।

## उत्तर।

यह यथार्थ है पर ९० के अर्थ उपर्युक्त दोहे में लगाने से प्रसंग नहीं बैठता। उसका अर्थ यही आता है कि विक्रम संवत् ९०। पर ९० से हीन ऐसा नहीं आता। यदि 'बिना अनन्द' दोहे में होता तो अनन्द से ९० वाला अर्थ निकालने में कुछ प्रयोजन बनता।

## दलील।

( २ ) विक्रमादित्य का यदि अब का प्रचलित संवत् माना जाय तो मरण काल में विक्रम की अवस्था १६० वर्ष की ठहरती है जो असम्भव जान पड़ती है; अतः सम्भव है कि ७० वर्ष की उचित आयु मान कर उस से ९० वर्ष निकाल कर अनन्द संवत् पड़ा हो।

## उत्तर।

यह केवल अनुमानही अनुमान है और इसका कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। जिसकी अवस्था १६० वर्ष की निकलती हो उसे केवल ७० वर्ष का अल्पजीवी मानना युक्तियुक्त नहीं है। उसे कम से कम ९० या ९५ वर्ष का तो मानना ही चाहिये। ऐसी दशा में उसे केवल ७० वर्ष का मान कर ९० वर्ष उसके संवत् से निकाल डालना तो यही हुआ कि ९० वर्ष की हमें आवश्यकता है सो किसी न किसी प्रकार वह आया चहैं।

## दलील ।

पंड्याजी लिखते हैं कि अन्य बातों में गड़ बड़ प्रमाण मान लिये जाते हैं तो इसी में क्यों न माने जायँ।

## उत्तर ।

इस में औचित्य छोड़ दिया जाता है। किसी भी बात में गड़बड़ प्रमाण न मानना चाहिए। विक्रमीय वर्त्तमान संवत् के चलने का कारण यही है कि जब किसी कारण कोई संवत् चल पड़ा तो बिना पूर्ण प्रमाण के वह बदला भी नहीं जा सकता।

## दलील ।

(३) नन्दवंशी चन्द्र गुप्त और उसके अकुलीन सन्तानों ने भारत में प्रायः ९० वर्ष राज किया है। चन्द्र गुप्त नन्द महाराज का एक मुरा नामक नायन से उत्पन्न पुत्र था, इसी से वह और उसके वंशी मौर्य्य कहलाये। सम्भव है कि चन्द ने इस अकुलीन राजकाल को विक्रम संवत् से निकाल कर अनन्द संवत् लिखा हो और इसी से साधारण संवत् से यह ९० वर्ष पीछे रह गया हो।

## उत्तर ।

पर ऐसी दशा में इसे अनन्द संवत् न कह कर चन्द 'अमौर्य्य' संवत् कहता, क्योंकि नन्द तो अकुलीन था नहीं और उसका राज काल भी निकाला नहीं गया था, फिर उसका नाम इस संवत्

में क्यों आता? दूसरे चन्द्र गुप्त और उसके वंशी अकुलीन राजे विक्रम के पहले हुए थे सो विक्रम संवत् में उनका राजत्व काल था ही नहीं, फिर वह उससे निकाला क्या जाता?

## दलील।

(४) ऊपर लिखे हुए दूसरे दोहे का अर्थ वह यों लगाते हैं कि युधिष्ठिर (धर्म्म सुत) का संवत् जैसे ११०० या १११५ पर था (विक्रम के प्रथम) उसी प्रकार पृथ्वीराज का संवत् ११०० या १११५ है (विक्रम के पीछे), सो ११०० या १११५ तक युधिष्ठिर का प्रथम साका रहा, इसी काल तक विक्रम का द्वितीय साका रहा, और अब पृथ्वीराज का तृतीय साका प्रारम्भ होता है।

## उत्तर।

इस अर्थ के लेने से भी अनन्द संवत् की उत्पत्ति के विषय कुछ जान नहीं पड़ता है अतः संवतों के गड़ बड़ मिटाने में यह दोहा सहायक नहा हैं।

मित्रवर बाबू श्याम सुन्दरदासजी ने हमें लिख भेजा है कि मदन-पाल से लेकर जैचन्द तक कन्नौज के राजाओं का राजत्व काल प्रायः ९० वर्ष होता है सो स्यात पृथ्वीराज के कवि ने यह समय विक्रम के संवत् से निकाल कर नया संवत् लिखा हो। पर इस काल के निकालने से तो स्वयं पृथ्वीराज का, उसके पिता सोमेश्वर का और उसके नाना अनंगपाल का भी समय निकल जाता है। पृथ्वीराज ने अनंगपाल ही का दिया हुआ दिल्ली का राज पाया

था। अतः राठूरों का काल चन्द अपने संवत् से नहीं निकाल सकता था।

इन बातों से विदित होता है कि अभी तक हम लोगों को अनन्द संवत् के चलने तथा उसके ९० वर्ष पीछे रहने का कारण नहीं ज्ञात है पर इतना ज़रूर जान पड़ता है कि अनन्द संवत् चलता अवश्य था और वह साधारण संवत् से ९० या ९१ वर्ष पीछे अवश्य था। उसके चलने का कारण न ज्ञात होना उसके अस्तित्व में सन्देह नहीं डाल सकता। भारत के प्राचीन इतिहास में निश्चयपूर्वक बहुत कम बातें ज्ञात हैं और प्राचीन शिला-लेखों, ताम्र-पत्रों आदि से नित नई बातें ज्ञात होती जाती हैं। महाराज कनिष्क के वंश में अब तक केवल हविष्क तथा वसुदेव नामक राजाओं का नाम ज्ञात था पर अभी कल की बात है कि गोस्वामी राधाचरणदासजी ने एक शिला-लेख पाया जिससे वशिष्क नामक कनिष्क वंशी एक और राजा का भी नाम ज्ञात हो गया। ऐसी दशा में किसी दिन अनन्द संवत् का कारण ज्ञात हो सकता है। यह पंड्याजी के प्रयत्नों का ही फल है कि हम लोगों को अनन्द संवत् का हाल ज्ञात हुआ जिससे चन्द के संवतों का झगड़ा सुलझ गया।

इन कारणों से प्रकट है कि रासो जाली नहीं है बरन् पृथ्वीराज के समय में ही चन्द ने इसे बनाया था। इसके अकृत्रिम होने का एक यह भी कारण समझ पड़ता है कि यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी आदि में इसे बनाता तो वह स्वयं अपना नाम न लिख कर ऐसा भारी ( २५०० पृष्ठ का ) उत्तम महाकाव्य चन्द को क्यों सम-

र्प्पित कर देता? कितने ही पंडितों ने पुराण ग्रन्थ बना कर अपना नाम न लिख कर व्यासदेव को ग्रन्थ अवश्य दे दिया है पर उन्होंने ऐसा इस कारण किया कि उनका ग्रन्थ पुराणों की भाँति पूजा जावे। रासो के रचयिता को यह भी लालच न था तब वह अपना अमूल्य ग्रन्थ चन्द को कभी न देता।

यह बड़ा भारी ग्रन्थ प्रायः २५०० पृष्ठ का है और इसमें सभी प्रकार के वर्णन आये हैं पर उनमें भी युद्ध और शृंगार प्रधान हैं। मंगलाचरण में कवि ने एक छन्द में आदि देव गुरु आदि की स्तुति और फिर तीन षट्पदों में (जिन्हें यह कवि कवित्त कहता है) धर्म्म, कर्म्म, एवं मुक्ति की स्तुति की है। इसके पीछे चन्द पुराने कवियों की स्तुति करता है जिनमें व्यास, शुकदेव, श्रीहर्ष, कालिदास, डंडमाली और जयदेव का इसने नाम लिया है। इनमें से सब कवि संस्कृत के हैं पर स्यात् डंडमाली भाषा का कवि हो। चन्द ने कहा है कि इसने गंगा सरित का वर्णन किया है, यथाः—

सतं डंड माली उलाली कवित्तं। जिनैं बुद्धि तारंग गंगा सरित्तं॥

तदनन्तर चन्द की स्त्री चन्द से प्रश्न करती है और तब चन्द ईश्वर प्रभाव पुराणादि का वर्णन करता है। ईश्वर के कथन में चन्द ने प्रथम तो एक निराकार निर्गुन ब्रह्म का वर्णन किया है पर अन्त में ब्रह्मा की उत्पत्ति कह कर अन्य देवताओं का भी वर्णन कर दिया है। इसने यहाँ विष्णु और शिव का कथन नहीं किया। इसकी बन्दना से उदाहरणार्थ दो छन्द नीचे लिखे जाते हैं। ईश्वरवर्णन १८५ पृष्ठ पर उत्तम है।

साटक ( शार्दूल विक्रीडित छन्द )।

आदी देव प्रनम्य नम्य गुरयं बानीय बन्दे पयं।
सिष्टं धारन धारयं बसुमती लच्छीस चर्नाश्रयं॥
तंगुं तिष्ठति ईस दुष्ट दहनं सुर्नाथ सिद्धि श्रयं।
थिर्चेजंगम जीव चन्द नमयं सर्वेस बर्दामयं॥
( यह रासो का प्रथम छन्द है )।

## कवित्त ( छप्पय )।

सम बनिता बर बन्दि चन्द जंपिय कोमल कल।
सबद ब्रह्म इह सत्ति अपर पावन कहि निर्मल॥
जिहित सबद नहिँ रूप रेख आकार ब्रह्म नहिँ।
अकल अगाध अपार पार पावन त्रयपुर महिँ॥
तिहिँ सबद ब्रह्म रचना करौं गुरु प्रसाद सरसे प्रसन।
जद्यपि सु उकुति चूकौं जु गति कमल बदनि कवि तहँ हँसन॥

अष्टादशपुराण कह कर चन्द अपनी लघुता कहता है और फिर खल स्वभाव कह कर सरस्वती, शिव, गणेश की स्तुति करता है। इस प्रकार ९४ छन्दों में बन्दना तथा भूमिका कह कर चन्द ने क्रमशः परीक्षित, वशिष्ठ, आबूगिरि उत्पत्ति, ऋषियों के यज्ञ, चहुवान उत्पत्ति, क्षत्रियों के ३६ वंशों की उत्पत्ति आदि की कथायें कही हैं। इसके पीछे कवि ने चहुवानों के वंश का वर्णन किया है। बोसलतेव की उत्पत्ति कह कर चन्द ने आना की उत्पत्ति कही। आना ने अपनी माता से सुना कि बोसलदेव ने खूब मृगया खेली

और फिर वह नपुंसक होगया पर पुनः पुंसत्व प्राप्त करके उसने अनुचित आचरण किया। बीसलदेव ने बालुका राय से युद्ध किया और फिर गौरी वैश्या का सतीत्व नष्ट कर डाला। इससे उसके शापवश वह सर्प से दंशित होकर ढूंढा नाम राक्षस होगया। ढूंढा ने सारंगदेव को मार कर अजमेर उजाड़ दिया। यह सुन आना ढूंढा के पास गया और ढूंढा ने प्रसन्न हो उसे अजमेर दे दिया और स्वयं हारिफ ऋषि से उपदेश ग्रहण कर महात्मा होगया। बीसलदेव के पुत्र सारंगदेव हुए जिनका ही पुत्र आनाजी था। इसने आनासागर बनवाया जो अब तक एक प्रसिद्ध ताल है। आनाजी का पुत्र सोमेश्वर था जो पृथ्वीराज का पिता हुआ। दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री पृथ्वीराज की माता थी। पृथ्वीराज की कथा चन्द ने अपनी स्त्री की इच्छानुसार कही। मंगलाचरण में कवि ने प्रायः साठ पृष्ठों में दशावतार की कथा इस स्थान पर कही है जो परमोत्तम है। यह सब उपर्युक्त वर्णन २५४ पृष्ठों में समाप्त होगये हैं और शेष ग्रन्थ में पृथ्वीराज की कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है। पृथ्वीराज का शत्रुओं से प्रायः युद्ध हुआ करता था और रासो में अधिकतर पृथ्वीराज के युद्धों, विवाहों एवं मृगया का ही वर्णन है। अतः विस्तारभय से अधिक न कह कर हम यहाँ पृथ्वीराज के शत्रुओं, शत्रुता के कारणों, और युद्धों का दिग्दर्शन कराये देते हैं।

---

| शत्रु- | शत्रुता के कारण तथा परिणाम। |
| --- | --- |
| (१) भोरा भीमंग गुजरात का राजा। | पृथ्वीराज के एक सामन्त ने एक बार इसके भाइयों को कहासुनी में मार डाला। यह सलष की कन्या इंछिनी को चाहता था पर पृथ्वीराज ने उससे विवाह कर लिया। इसने पृथ्वीराज के पिता को एक युद्ध में मार डाला। अंत में कई युद्धों के बाद पृथ्वीराज ने इसे मार डाला। |
| (२) नाहरराय। | इससे एक विवाह के कारण युद्ध हुआ। इसने प्रथम अपनी कन्या पृथ्वीराज से विवाहने को कहा पर पीछे यह नट गया। यह पराजित हुआ और विवाह हुआ। |
| (३) मुद्गलराय मेवाती। | इसने कर नहीं दिया था पर इसे पराजित होना पड़ा। |
| (४) शहाबुद्दीनगोरी। | इसकी चित्ररेखा नामक एक परम सुन्दरी वेश्या थी पर इसका भाई हुसेन उससे फँस गया। इस पर इन दोनों में खट पट हुई और हुसेन पृज्वीराज के शरण आया। इसी पर इससे बहुत बार युद्ध हुआ और सदा यह हारा तथा कई बार पकड़ा भी गया पर दुर्भाग्यवश राजा ने इससे दंड |

लेकर इसे हर बार छोड़दिया। पृथ्वीराज ने अपनी भगिनी पृथा कुवँरि का विवाह जब रावलसमरसिंह से किया था उस समय इनके सब सामन्तों के साथ शहाबुद्दीन ने भी रावल को दायज दिया था जिससे प्रकट है कि वह उस समय अपने को पृथ्वीराज का दबायल समझता था। पर अन्त में ११९३ ई० में इसने एक बार राजा को युद्ध में पकड़ कर मार डाला और यह भारत का बादशाह हो गया। पश्चिम के घक्करों ने इसे फिर मार भी डाला पर इसके दास क़ुतबुद्दीन के हाथ से भारत का राज न छूटा।

(५) कुमोदमनि कुमाऊँ का राजा। — यादवराज विजयपाल की पुत्री पद्मावती का इससे विवाह होता था पर पृथ्वीराज ने इसे पराजित करके पद्मावती से अपना विवाह किया।

(६) जैचन्द कन्नौज का राजा। — यह भी अनंगपाल का दौहित्र था जैसे कि पृथ्वीराज था पर अनंगपाल ने राज पृथ्वीराज को दिया। देवगिरि के राजा यादवराज की कन्या शशिब्रता से इसके भाई का विवाह होता था पर पृथ्वीराज ने शशिब्रता को हर

कर उससे अपना विवाह किया। इन दोनों बातों से और विशेषतया अन्तिम बात से क्रुद्ध कर जैचन्द ने एक यज्ञ में पृथ्वीराज की मूर्ति का अपमान किया। इस पर पृथ्वीराज ने यज्ञ विध्वंस कर डाला और इसकी पुत्री संयोगिता को हर कर उससे विवाह किया। इन्हीं कारणों से इसने शहाबुद्दीन से मिल कर अदूरदर्शिता से पृथ्वीराज का सर्वनाश करवा डाला पर दूसरे ही साल ११९४ ई० में शहाबुद्दीन ने इसे भी मार कर कन्नौज का भी राज छीन लिया।

( ७ ) अनंगपाल। यह पृथ्वीराज का नाना था और इसी ने प्रसन्नता से पृथ्वीराज को दिल्ली का विशाल राज देकर बदरीनाथ की यात्रा की पर इसके वंशधर तोंवर राजपूत पृथ्वीराज से अप्रसन्न हुए और उन्होंने इसे बहका कर पृथ्वीराज से लड़ा दिया। इसके पराजित होने पर पृथ्वीराज इस के पैरों पड़ा और उसने इसे बहुत प्रसन्न किया। अन्त में यह फिर बदरीनारायण को चला गया।

(८) करनाटक युद्ध। इस युद्ध को पृथ्वीराज ने विजय-लालसा से रचा था। अन्त में करनाटकी नामक एक रूपवती वेश्या पाकर यह वहाँ से प्रसन्नता-पूर्वक लौट आया।

(९) गज्जरराय। यह भीम का साथी था और इसने पृथ्वीराज के बहनोई समरसिंह की राजधानी चित्तौर पर धावा किया था पर पृथ्वीराज ने इसे भी हराया।

(१०) भीम उज्जैन का राजा। इसने पहले अपनी कन्या इन्द्रावती का विवाह पृथ्वीराज से करने का वचन दिया पर पीछे से यह नट गया। युद्ध में इसे हरा कर पृथ्वीराज ने यह विवाह किया।

(११) भान काँगरा का राजा। इसने पृथ्वीराज के दूत का अनादर किया। यह पराजित हुआ और इसने अपनी कन्या पृथ्वीराज को विवाह दी।

(१२) पंचाइन चंदेरी का राजा। यह रणथम्भौर के राजा भान की कन्या हंसावती से विवाह करना चाहता था पर भान ने अपनी कन्या पृथ्वीराज को विवाही। इसी पर पंचाइन से युद्ध हुआ और वह पराजित हुआ।

(१३) बालुकाराय। यह जैचन्द का आश्रयी राजा था और जैचन्द ही के कारण पृथ्वीराज से दो बार लड़ कर मारा गया।

(१४) परिमाल महोबा का राजा। कन्नौज से संयोगिता वाले युद्ध से पलटते हुए पृथ्वीराज के कुछ सामन्त राह भूल महोबे चले गये और कुछ झगड़ा होने पर परिमाल ने उन का वध कर डाला। इस पर पृथ्वीराज ने

> प्रचण्ड कोप करके परिमाल के हितू मलिखान को सिरसा में मारा और महोबा पहुँच आल्हा ऊदन आदि को पराजित करके परिमाल को मार कर महोबा खोद डाला। इस युद्ध में पृथ्वीराज की भी सेना की बड़ी हानि हुई।

इस वर्णन से विदित होता है कि चौदह प्रधान शत्रुओं में नौ की शत्रुता पृथ्वीराज से विवाहों के कारण हुई। यदि इन्हें विवाह करने का इतना भारी शौक़ न होता तो ४३ वर्ष की ही स्वल्पावस्था में ऐसा पराक्रमी राजा शहाबुद्दीन से हार कर काल-कवलित न होता और भारत उस समय यवनों के शासन में न जाता। पृथ्वीराज जितना पराक्रमी शूर तथा उदार था वैसा ही अदूरदर्शी तथा हठी था। इन्हीं कारणों से ही यह बड़े बड़े सामन्त और बृहत् सेना रखते हुए भी एक क्षुद्र शत्रु से हार कर राजपाट और जीव तक खो बैठा। इस उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पृथ्वीराज ने आठ विवाह किये और एक वेश्या को रक्खा। इसके अतिरिक्त चन्द-पुंडीर की कन्या एवं एक और स्त्री से इन्होंने विवाह किये। रासो के देखने से प्रकट होता है कि पृथ्वीराज के प्रायः तीन ही काम थे अर्थात् विवाह, आखेट और युद्ध।

रासो प्रायः संवत् १२२५ से १२४८ तक बनता रहा। यह वह समय था जब प्राकृत भाषा का अन्त हो रहा था और हिन्दी का प्रचार होता जाता था। प्राकृत का अन्तिम व्याकरण-कर्ता हेमचन्द्र हुआ है जिसकी मृत्यु संवत् १२२६ वि० में हुई। अपने सम-

यानुसार रासो में प्राकृत मिश्रित भाषा है पर चन्द् शब्दों को शुद्ध स्वरूप में प्रायः लिखता था। अपनी भाषा के विषय उसने यह श्लोक कहा है किः—

उक्ति धर्म्म विशालस्य राजनीतिं नवं रसं।
षट् भाषा पुराणञ्च कुरानं कथितं मया॥
(रासो पृष्ठ २३)।

इससे विदित हुआ कि चन्द् ने अपनी कविता में छः भाषाओं के शब्द, संस्कृत के शब्द (पुराण), तथा अरबी के शब्द (.कुरान) रक्खे हैं। परन्तु अरबी और संस्कृत के अतिरिक्त चन्द् ने किन छः भाषाओं के शब्द रक्खे हैं यह विचारना शेष है। संस्कृत एवं प्राकृत के अतिरिक्त शौरसेनी, मागधी, अर्द्ध मागधी, अवधी, शाकारी, आभीरी, चांडाली, शावरी, पैशाची, पञ्जाबी राजपूतानी आदि भाषायें उत्तरीय भारत में प्रचलित हुई हैं। इनमें से चन्द् कौन सी छः भाषाओं का प्रयोग करता था यह प्रश्न उठता है। बाबू श्यामसुन्दरदासजी का मत है कि रासो में प्रति सैकड़ा तीस शुद्ध संस्कृत के और तीस शौरसेनी के शब्द मिलते हैं और शेष अन्य भाषाओं के हैं। प्राकृत और शौरसेनी के अतिरिक्त चन्द् मागधी, अवधी, राजपूतानी और पञ्जाबी के शब्दों का भी प्रयोग करता है और यही छः भाषायें हैं जिनका वह संस्कृत एवं अरबी के अतिरिक्त प्रयोग करता है। चन्द् की भाषा में माधुर्य्य एवं प्रसाद की मात्रा कम तथा ओज की विशेष है। प्राकृत मिश्रित भाषा लिखने के कारण चन्द् अनुस्वार से द्वितीया के स्थान पर प्रथमा

का भी काम ले लेता है। इसकी भाषा से इसका अगाध पांडित्य प्रकट होता है। इसने संस्कृत के अच्छे अच्छे शब्द लिखे हैं तथा पुराणों की कथाओं का अच्छा ज्ञान दिखाया है यद्यपि संस्कृत के ग्रन्थ उस समय अनुवादित नहीं हुए थे। इसकी भाषा ऐसी कठिन है कि एकाएकी समझ में पूर्णतया नहीं आती और इनके कठिन छन्दों का प्रायः आशय मात्र समझ में आता है। इसकी भाषा कई भाषाओं का मिश्रण होने एवं प्राकृत प्रधान होने के कारण वर्त्तमान हिन्दी से बहुत भिन्न है और पढ़ने में मिलित वर्णों, अनुस्वारों के बाहुल्य, चन्दह, नरिन्दह आदि शब्दों के प्राचीन रूपों के होने से एक प्रकार की दूसरी ही भाषा जान पड़ती है पर फिर भी वह ध्यानपूर्वक देखने से वर्त्तमान हिन्दी से बहुत कुछ मिलती भी है। चन्द ने उस समय की प्रचलित हिन्दी लिखी है और हम लोग आज कल की हिन्दी लिखते हैं। यह मानना पड़ेगा कि उस समय के देखते हुए वर्त्तमान हिन्दी ने बड़ी उन्नति करली है पर चन्द की हिन्दी अब भी अपने बालकपन से ही एक अलौकिक आनन्द देती है। जन्म ग्रहण करते ही हिन्दी ने जो रूप पाया उसका प्रत्यक्ष ऐतिहासिक प्रमाण चन्द की हिन्दी है। चन्द ने शौरसेनी एवं गुजराती ढर्रों को लेकर रचना की है परन्तु माध्यमिक समय में ब्रजभाषा का ही विशेष आदर रहा। आज कल नवीन प्रथा के कविजनों की रुचि खड़ी बोली की ओर झुक रही है। यह खड़ी बोली उर्दू से पूर्ण रूपेण मिलती है, केवल फ़ारसी आदि शब्दों के स्थान पर संस्कृत के शब्द रखती है।

चन्द ने संस्कृत काल की कविता के कुछ ही पीछे कविता की है। यह कवि संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि श्रीहर्ष का समकालीन था, सो छन्दों में इसने श्लोकों से मिलते हुए कई छन्द कहे हैं। इसके साटक एक प्रकार से हिन्दी के श्लोक हैं। इनकी मात्रा चन्द की कविता में बहुत है और ये परम मनोहर हैं। षटपद छन्द का भी चन्द ने विशेष आदर किया है और यह छन्द अपनी मनोहरता के कारण अत्यन्त आदरणीय है भी। इन छन्दों के अतिरिक्त चन्द ने प्रायः सभी छन्द लिखे हैं और कोई छन्द इतनी दूर नहीं चलाया कि वह अरुचिकर हो जावे। चन्द ने कथा और छन्द ऐसे क्रम-बद्ध प्रकार से कहे हैं कि जान पड़ता है कि चन्द ही इस प्रथा का चलाने वाला नहीं है वरन् यह रीति उस समय के कवियों में स्थिर थी। चन्द ने एकाध छन्द ऐसा भी कहदिया है जिस का अब पता भी लगना कठिन है, यथा, बथूवा छन्द रासो पृष्ठ ८। पंड्याजी ने इसे रिड्डुक छन्द माना है। उदाहरणार्थ यह छन्द यहाँ लिखा भी जाता है।

प्रथम सु मंगल मूल श्रुतबिय। स्मृति सत्य जल सिंचिय॥
सुतरु एक धर ध्रम्म उभ्यो॥
त्रिषट साष रम्मिय त्रिपुर। बरन पत्त मुख पत्त सुभ्यो॥
कुसुम रंग भारह सुफल। उकति अलंब अभीर॥
रस दरसन पारस रमिय। आस असन कवि कीर॥

चन्द ने श्लोक भी अच्छे अच्छे संस्कृत में कहे हैं।

इस महाकवि ने युद्ध और शृंगार रस तो उत्तम कहे ही हैं पर अन्य प्रकार के भी अनेकानेक परमोत्तम वर्णन रासो में वर्त्तमान हैं।

इसने कई स्थानों पर गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति देवताओं की विनतियां बहुत विशद कहीं हैं, यथा शिवस्तुति (४ ३ तथा ७७, पृष्ठ ), ईश्वर-स्तुति (१६० पृष्ठ) भूमि-देवी-वर्णन (५८६ पृष्ठ ), सूर्य्य आदि वर्णन ( १३९६ तथा १३९७ पृष्ठ ) देवी-स्तुति ( ४९२ पृष्ठ )। चन्द ने नीति, बसन्त ( १२८७, १५०४, १५०७ ), उपबन ( ५५३ ), बाग ( ५५२ ), पक्षी ( पृष्ठ २४२ ) तलवार ( १२२५ ) मृगया ( १५१२, ४७६ ), सवारी ( ५९९ ), खेमे ( ४८५ ), सिंह ( ५७८ ), बन, वर्षा, शरद ( पृष्ठ ७६४ ), पकवान, भोजन, राज्याभिषेक ( ५९६ ), विवाह तैयारी ( ६४९ ), नखशिख ( ५६२ ) आदि सभी कुछ परमोत्तम कहा है। पृथ्वीराज की रानियों ( १०८४, १०८७ ) के वर्णन, ( ८०१, ८०२ ) में नखशिख, ( ७७९ ) शृंगार रस, ( १२८१, १३४३ ) आदि का अच्छा कथन है और पृथ्वीराज की भगिनी पृथा कुवँरि ( ६४५ ) के वर्णन में भी नखशिख ( ६५२ ) उत्तम कहा गया है। हंसावती के वर्णन में संयोग शृंगार अच्छा है और वियोग का भी यत्र तत्र कथन अच्छा हुआ है। षट्ऋतु ( १५७८, १५८८ ) और नखशिख ( १२४२, ५६३,५६६ ),चन्द ने कई बार और कई प्रकार कहा है। १५६ पृष्ठ पर पृथ्वीराज की शोभा वर्णन करने में कवि ने उपमायें अच्छी अच्छी कही हैं। कैमास जिस स्त्री पर लुब्ध हो कर कुछ दिनों के लिए पृथ्वीराज का साथ छोड़ कर भोरा भीमंग का साथी हो गया था उसके वर्णन का एक छन्द यहाँ लिखते हैं।

चन्द बदन चख कमल भौंह जनु भ्रमर गंधरत।
कीर नास बिम्बोष्ठ दसन दामिनी दमकत॥

भुज मृनाल कुच कोक सिंह लंकी गति बारुन ।
कनक कन्ति दुति देह जंघ कदली दल आरुन ॥
अल संग नयन मयनं मुदित उदित अनंगह अंग तिहि ।
आनी सुमन्त्र आरम्भ बर देखत भूलत देव जिहि ॥

पृथक् पृथक् वर्णनों में इस कविरत्न ने उपमा, रूपकों आदि का भी परमोत्तम कथन किया है ( पृष्ठ ७७३, ७७४, ८२१, ११३४, ११३५, १३०४, १३०५, १४१८ आदि )।

प्रभात एवं सूर्य्य का चन्द ने कई बार उत्तम वर्णन किया है ( १३१६, १३१७, १२२५, १२२६ )। दो एक स्थान पर योगियों की क्रियाओं का भी वर्णन है ( १४५०, १२४५, १२४६ )। पृथ्वीराज के गुणों तथा कीर्ति आदि का बहुत वर्णन कई बार किया गया है ( १२८४, १२८५, १४५५ तेज और आकार का निर्णय, आदि )।

इस कविरत्न ने शोभा को हर एक स्थान पर निहारा है और क्या देवता, क्या स्त्री, क्या सिंह, क्या मृगया, क्या युद्ध, क्या कन्नौजादि वर्णन सभी स्थानों और बातों में उसका ध्यान नहीं छोड़ा और कविता में उसे भली भाँति सन्निविष्ट किया ( १४८२, १६२३, १६६७, १५७३, १५७४, ५५०, ५५२, ५७३, ५७८, ५७६, ५१६, आदि )।

यह युद्ध प्रधान ग्रन्थ है अतः इसमें युद्ध का वर्णन बहुत बार और कितनेही प्रकार है ( ७०६, ७०८, ८१५, १२२५, १२२६, ११३४, ११३५, १३७५, १३७६, १३८१, १३८२, आदि )। चन्द ने युद्ध तो सत्य सत्य कहे हैं पर कवियों की विस्तारकारिणी प्रकृति के वश

सेन संख्या में अत्युक्ति कर दी है। जैचन्द एवं सुलतानी दल की गणना में इन्होंने ३० और १८ लाख मनुष्य कहे हैं जो सर्वथा असम्भव है।

स्त्रियों के रूप, शृंगार, शोभा आदि का भी कई बार परमोत्तम वर्णन इस महाकवि ने किया है (५५०, ५६२, ५६६, ५७३, ६४५, ६४६, ६५२, ६५३, ७७९, ७८१, ८०१, ८०४, १२४२, १२४३, १०८४, १०८७, १२८१, १३०४, १३०५, १३४३, १४८२ आदि)।

चन्द ने शिव का भी शृंगार अच्छा कहा है (१५७३, १५७४)। यह वर्णन और ऐसे ही ऐसे सैकड़ों अन्य वर्णन चन्द कवि ने रासो में बड़ी उत्तमता से किये हैं। पृष्ठादि का जहाँ हवाला है वह नागरी प्रचारिणी सभा वाली रासो की प्रति का है। उदाहरण देने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जावेगा अतः हम थोड़े ही से उदाहरणों पर यहाँ सन्तोष करते हैं।

## उदाहरण।

(पृथ्वीराज)—भयो जनम पृथिराज द्रुग्ग खर हरिय सिखर गुर।
भयो भूमि भूचाल धमकि धस मसिय अरिनि पुर॥
गढ़न कोट से लोट नीर सरितन बहु बढ्ढिय।
भौचक भय भूमिया चमक चक्कित चित चढ्ढिय॥
खुरसान थान खल भल परिय अम्भपात भय अम्भ निय।
बैताल बीर बिकसे मनह हुंकारत खह देव निय॥
करिय नवनि कवि चन्द छन्द अन्नेक पढ्ढि कर।

तूं सुरपति सम कुवँर देव सामन्त समो वर ॥
अग्नि कन्हँ जल चंद पवन गोइंद प्रबल बल ।
धरा चन्द बल धीर तेज चामंड जलन खल ॥
रवि तेज कहर कारंभ सब चन्द अमृत आबू धनी ।
द्रग पाल सबल सामन्त सब रहै दब्बि धरती घनी ॥

(पृथ्वी देवी)—पीत बसन आरुहिय रत्त तिलकावलि मंडिय ।
छूटिय चंचल चाल अलक गुंथिय सिर छंडिय ॥
सीस फूल मनि बंध पास नग सेत रत्त बिच ।
मनों कनक साखा प्रचंड काली उप्पम रुच ॥
मनु सोम सहायक राह होइ कोटि भान सोभा गही ।
अदभूत द्रब्य ससि अहि गल्यो साष सुरंग भनावही ॥

(अप्सरा)—हरित कनक कांतिं कापि चंपेव गोरी ।
रसित पदुम गंधा फुल्ल राजीव नेत्रा ॥
उरज जलज सोभा नाभि कोसं सरोजं ।
चरन कमल हस्ती लीलया राजहंसी ॥

(सरस्वती)—मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा अब्धा बुधा गोपनी ।
सेतं चीर सरीर नीर गहिरा गौरी गिरा जोगनी ॥
बीना पानि सुबानि जानि दधिजा हंसा रसा आसिनी ।
लंबोजा चिहुरार भार जघना बिघ्ना घना नासिनी ॥

(नाहरराय सुता)—तन्मै स्याम सुरंग बाम नयनं मन्मथ्थ बल्ली कला ।
सुष्षं धामय तेज दीपक कला तारुन्य लच्छी ग्रहा ॥
रूपं रंजित मंजु माल कलया, बासंत पत्रावली ।
श्रव्वं लच्छन काम धीरज गुणै धन्यै दुती दम्पती ॥

(चित्ररेखा वेश्या)—वेस्या बंछित भूप रूप मनसा शृंगार हारावली।
सोयं सूरति लच्छि अच्छित गुनं बेली सु कामावली॥
का बर्नैं कवि उक्ति जुक्ति मनयं त्रैलोक्यमं साधनं।
सोयं बाल तिरत्त उष्ट विद्रुमं का मोद जोगेश्वरं॥

चन्दबरदाई जैसा भाषा का वास्तविक आदि-कवि था वैसे ही संस्कृत के आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि की भाँति वर्णन भी प्रायः पूर्ण और मनोहर करता था। काव्य-प्रौढ़ता में चन्द का पद बहुत बढ़ा हुआ है और जितने विषयों के इस महाकवि ने उत्तम तथा पूर्ण वर्णन किये हैं उतने के किसी भी अन्य भाषा कवि ने नहीं किये। चन्द को नवरत्नों में रियायत से अथवा पुराने कवि होने के कारण नहीं स्थान दिया गया है वरन् उसकी काव्य-प्रौढ़ता ही के कारण उसे यह सन्मान मिला है। रासो भी हिन्दी का एक अमूल्य रत्न है और प्रत्येक हिन्दी रसिक को इसे पढ़ना चाहिये। इस लेख के भाषा सम्बन्धी भाग में मित्रवर बाबू श्यामसुन्दरदास के एक उस लेख से भी सहायता ली गई है जो कि उन्होंने कृपया हमारे पास भेज दिया था।

———

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

भारत कुमुदिनि बन्धु ये भारतेन्दु हरिचन्द।
जिन बिरचो कविता करन जातीयता बलन्द॥

# भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म भादों शुदि ७ संवत् १९०७ वि० को काशीपुरी में हुआ था। हर्ष का विषय है कि इस महाकवि की जीवनी इसके वात्सल्य-भाजन गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास ने और आरा-निवासी बाबू शिवनन्दनसहायजी ने लिखी है। प्रथम पुस्तक में ११४ और द्वितीय में ४४६ पृष्ठ हैं। ये दोनों पुस्तकें बहुत ही संतोषदायक हैं और इन दोनों हीं महाशयों का श्रम अत्यन्त सराहनीय है। हम लोग इस विषय में बाबू शिवनन्दनसहायजी के बहुत ही कृतज्ञ हैं कि उन्होंने अत्यन्त परिश्रम करके भारतेन्दुजी की बृहद् जीवनी देखने का हम लोगों को अवसर दिया। इस जीवनी में बाबू साहब ने गद्य काव्य भी अच्छा किया है और कई स्थानों पर इसकी भाषा पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। इस कथन के उदाहरण-स्वरूप हम पाठकों से इनके पृष्ठ ३३७ को पढ़ने का अनुरोध करेंगे। इन दोनों जीवनियों के अतिरिक्त "सरस्वती" के प्रथम भाग में भी इनकी छोटी सी जीवनी दी हुई है। इनकी जीवनी के विषय में बहुत कुछ इन तीनों जीवनियों से विदित हो जाता है अतः हम उसे यहाँ सूक्ष्मतया लिखते हैं।

इनके मूल पुरुष राय बालकृष्णजी थे जिनके प्रपौत्र प्रसिद्ध सेठ अमीचंद हुए, और इन महाशय के पौत्र बाबू हर्षचन्दजी हुए।

इन्हीं के पौत्र बाबू हरिश्चन्द्र और दौहित्र बाबू राधाकृष्णदासजी थे। भारतेन्दुजी के पिता बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास एक सत्कवि हो गये हैं। इनका वर्णन इनकी कविता की समालोचना में अलग लिखा जायगा। मुकुंदी बीबी भारतेन्दुजी की बड़ी और गोविंदी बीबी छोटी बहिन थीं, और बाबू गोकुलचंदजी इनके छोटे भाई थे जिनके दो पुत्र और दो पौत्र अद्यावधि वर्तमान हैं। भारतेन्दुजी के दो पुत्र और विद्यावती नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। इनके पुत्र शैशवावस्था ही में परलोकगामी हुए। इनकी कन्या और उसके पाँच पुत्र ईश्वर की कृपा से वर्तमान हैं।

इनकी बुद्धि ऐसी प्रखर थी कि केवल पाँच वर्ष की अवस्था में जब कि और और बालक बोलना तक नहीं जानते इन्होंने निम्न लिखित दोहा बनाया था:—

"लै ब्योंड़ा ठाढ़े भए श्रीअनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सैन को हनन लगे बलवान" ॥

इनकी माता का देहांत सं० १९१२ में और पिता का सं० १९१७ में हो गया। इनको पैतृक सम्पत्ति लाखों रुपये की मिली थी अतः केवल १० वर्ष की अवस्था में ये सम्पन्न घर के स्वच्छन्द बालक हो गये। एक बार इनके पिता तर्पण कर रहे थे तब इन्होंने उनसे पूँछा कि "बाबूजी पानी में पानी मिलाने से क्या लाभ?" इस पर क्रुद्ध होकर इनके पिता ने कहा था कि तू हमारे घर को डुबोवेगा। इसी प्रकार इन्होंने "करन चहत जस चारु कछु कछु वा भगवान को" इस पद का केवल ६ वर्ष की अवस्था में एक चमत्कारिक

अर्थ सभा में लगाया था, इस पर इनके पिता ने प्रसन्न होकर कहा था कि "तू मेरा नाम चलावेगा।" इनके पिता के ये दोनों वाक्य यथार्थ हुए जैसा कि इनकी जीवनी से प्रकट होगा। बाल्यावस्था में ये बड़े उपद्रवी थे यहाँ तक कि एक बार तीन कोस तक बराबर दौड़ते ही चले गये थे।

भारतेन्दुजी के हिन्दी, फ़ारसी और अँगरेज़ी के प्रथम शिक्षक क्रमशः पं० ईश्वरीदत्त तिवारी, मोलवी ताजअली और बाबू नन्दकिशोर थे। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के मकान पर एक स्कूल था, उसमें भी कुछ दिन तक ये पढ़े थे। इसी कारण ये राजा साहब को भी गुरुवत् मानते थे। इन्होंने कुछ दिन क्वीन्स कालेज बनारस में भी शिक्षा पाई थी। पढ़ने में इन्होंने कभी मन नहीं लगाया परन्तु फिर भी अपनी बुद्धि की तीव्रता से ये अपने सब सहपाठियों से उत्तम परीक्षा देकर अपने अध्यापकों को आश्चर्य में डाल देते थे। ११ वर्ष की अवस्था में इन्होंने पढ़ना छोड़ कर सकुटुम्ब जगन्नाथजी की यात्रा की। इन्होंने महाराष्ट्री, बँगला, गुजराती, माड़वारी आदि अनेक विद्यायें समय समय पर स्वयं पढ़ लीं। इनके काव्यगुरु पंडित लोकनाथजी थे।

१४ वर्ष की अवस्था में बाबू गुलाबराय की कन्या मन्नोदेवी से इनका विवाह हुआ। इन्होंने सं० १९२३ में कुचेसर, सं० १९२८ में हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर आदि, और सं० १९३४ में पुष्कर क्षेत्र की यात्रा की। इस साल इन्होंने प्रयाग में एक व्याख्यान भी दिया था। सं० १९३६ में इन्होंने सरयूपार की यात्रा की और उसी वर्ष

काशीनरेश के साथ वैद्यनाथजी के दर्शन किये। सं० १९३८ में ये महाशय महाराणा सज्जनसिंहजी से मिलने को मेवाड़ पधारे और वहाँ इन्होंने श्रीनाथद्वारा के दर्शन किये। सं० १९४० में ये बलिया गये और डुमरावँ, पटना, कलकत्ता, हरिहर क्षेत्र और इलाहाबाद को भी ये महाशय प्रायः जाया करते थे।

इनमें स्वदेश-प्रेम की मात्रा विशेष थी। इनके काव्यों और कार्यों से स्वदेश-प्रेम के सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं। उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जाता है:—

(१) इन्होंने सं० १९२३ में चौखम्भा स्कूल स्थापित किया जिसमें बिना फ़ीस दिये बालक पढ़ते थे और असमर्थों को भोजन-वस्त्र और पुस्तक इत्यादि की सहायता दी जाती थी। इस पाठ-शाला को भारतेन्दुजी ने १२ वर्ष पर्य्यन्त अपने ही व्यय से चलाया, फिर म्यूनिसिपैलिटी और सरकार ने भी कुछ कुछ सहायता की। धीरे धीरे वह हाई स्कूल हो गया और अब तक हरिश्चन्द्र हाई स्कूल के नाम से स्थित रह कर इनकी कीर्ति बढ़ा रहा है।

(२) सं० १९२५ में कविवचनसुधा नामक मासिक-पत्र निकाला जो दूसरे साल पाक्षिक हुआ और उसमें गद्य काव्य भी दिया जाने लगा। कुछ काल उपरांत यह साप्ताहिक हो गया और इसमें काव्य, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी विषय के लेख दिये जाने लगे। इसे भारतेन्दुजी ने ७½ साल तक बड़ी उत्तमता से चलाया। तदनन्तर यह अन्य हाथों में जाकर सब लोगों की सहानुभूति खो बैठा और फिर भारतेन्दु के अस्त होने पर जब इसने एक दिन भी अपना कालम

काला नहीं किया तब सबकी आँखों में घृणास्पद होकर उसी साल अपना मुँह काला कर इस संसार से कूच किया।

( ३ ) सं० १९३० में इन्होंने हरिश्चन्द्र मैगज़ीन निकाली जो आठ मास चल कर हरिश्चन्द्रचंद्रिका के नाम से प्रकाशित होने लगी और सं० १९३६ में भारतेन्दुजी ने इसे मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या को दे दी जिनके प्रबंध में थोड़े ही समय के बाद चंद्रिका भी अस्त हो गई। सं० १९४० में भारतेन्दुजी ने नवोदिता के नाम से इसे फिर निकाला परन्तु तीन ही मास प्रकाशित होकर यह सदैव के लिए अस्त हुई।

( ४ ) सं० १९३० में इन्होंने स्त्रियों के उपकारार्थ गवर्नमेंट की इच्छानुसार बालाबोधिनी नामक पत्रिका निकाली परन्तु वह भी चार ही वर्ष चली।

( ५ ) सं० १९२७ में इनके द्वारा कवितावर्द्धिनी सभा स्थापित हुई जिसमें प्रसिद्ध कवि सरदार, सेवक, बाबा दीनदयाल गिरि, नारायण, द्विज कवि मन्नालाल इत्यादि उपस्थित होते थे। भारतेन्दुजी स्वयं पुस्तक-रचना करते थे और पुरस्कार और प्रशंसा-पत्र देकर और और लेखकों को पुस्तक-रचना के वास्ते उत्साहित करते थे। इसी सभा से पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, द्विज बलदेव, इत्यादि को प्रशंसा-पत्र मिले थे।

( ६ ) सं० १९३० में इन्हीं महाशय ने "तदीय समाज" स्थापित की जिसमें सभ्यों से कई नियम पालन करने को प्रतिज्ञा-पत्र लिये जाते थे। इन नियमों में हिंसा-निषेध और स्वदेशी वस्तु का व्यवहार

भी था। इस समाज से भगवद्भक्ति नामक मासिक पत्रिका भी निकलती थी जो कुछ दिन चल कर बंद हो गई। यह समाज इनको बहुत प्रिय था।

(७) इसी सं० में इन्होंने 'पेनीरीडिंगक्लब' क़ायम किया। उसमें सुलेखकों के लिखे हुए उत्तम उत्तम लेख भी पढ़े जाते थे। एक बार बाबू साहब उसमें श्रान्त पथिक का वेष बना कर गये श्रौर गठरी पटक पैर फैला कर इस ढंग से बैठे कि दर्शक गण अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। इसी में एक बार थीयेटर का स्टेज बना कर ये चूसापैग़ंबर बने थे। सैकडों गज़ काग़ज़ जोड़ कर जन्मपत्री की भाँति लपेटे हुए हाथ में लिये थे जिसे खोलते श्रौर अपने उपदेश पढ़ते जाते थे। इस पाँचवें पैग़म्बर के उपदेशोंवाला लेख हास्य रस में सच्चे उपदेश का अच्छा नमूना है।

(८) सं० १९३१ में इनके द्वारा वैश्यहितैषिणी सभा स्थापित हुई। अपनी स्थापित सभाओं के अतिरिक्त अन्यान्य सभाओं श्रौर देशहितैषी कार्यों में ये सहायक रहते थे।

(९) सं० १९३२ में इन्होंने श्रीनिम्बार्क, श्रीरामानुज, श्रीमध्व श्रौर श्रीविष्णु स्वामी नामक वैष्णवों की चार सम्प्रदायों में प्रविष्ट, प्रवीण श्रौर पारंगत नामक तीन परीक्षायें नियत कीं श्रौर ये परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तियों को पारितोषिक भी देते थे।

(१०) इन्होंने सामाजिक सुधार पर भी पूरा ध्यान दिया था श्रौर अपनी पुत्री के विवाह में अश्लील गीतों का गाना बंद कर दिया था। इस विषय में इनकी कविता में स्थान स्थान पर बहुत कुछ पाया जाता है।

इनके जीवनयात्रा की प्रायः सभी बातों का निचोड़ ज़िंदादिली है और इनके सब कार्यों से यह प्रकट होती है। ये शतरंज अच्छी खेलते थे, गाने बजाने का शौक़ रखते थे, और कई बाजे बजाते भी थे। कबूतर उड़ाने का भी व्यसन था, तथा ताश भी खेलते थे। हुकुम, चिड़िया, ईंट और पान के स्थान पर इन्होंने शंख, चक्र, गदा और पद्म रक्खा था; इसी प्रकार बीबी, बादशाह की जगह देवी, देवताओं के रूप रक्खे थे। बुढ़वा मंगल के मेले में बड़ा उत्सव करते थे। उदारता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि कवि पंडितों को हज़ारों रुपये दान कर देते थे। जिसने इनकी कोई चीज़ पसन्द की वह तुरन्त उसके नज़र हुई। दीपमालिका को इतर के चिराग़ जलाते थे, और देह में लगाने के वास्ते तो सदैव तेल के स्थान पर इतर ही बर्ता जाता था। सारांश यह कि रुपये को पानी की तरह बहाते थे। इनकी यह दशा सुन कर महाराज काशी-नरेश ने एक दिन इनसे कहा कि "बबुआ घर को देख कर काम करो" इस पर इन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि "हुज़ूर ! यह धन मेरे बहुत से बुज़ुर्गों को खा गया है अब मैं इसको खा डालूँगा"। सं० १९२७ में ये अपने छोटे भाई से अलग हुए थे और थोड़े ही सालों में इन्होंने अपने भाग की समस्त पैतृक सम्पत्ति उड़ा डाली। अपने ननिहाल की कई लाख रुपये की सम्पत्ति के ये और इनके छोटे भाई उत्तराधिकारी थे। इनकी उड़ाऊ दशा देख कर इनकी नानी ने कुल सम्पत्ति का हिबानामा इनके अनुज के नाम लिख दिया परन्तु बिना इनकी रज़ामन्दी के वह क़ानून के अनुसार ठीक नहीं था।

अपनी नानी के कहने पर इन्होंने तुरन्त उस पर हस्ताक्षर कर दिये और इस प्रकार अपने भाग के दो ढाई लाख रुपये छोड़ देने में इन्होंने कुछ भी आगा पीछा नहीं किया। यह काम इन्हीं का सा दरियादिल आदमी कर सकता था। इनमें हास्य की मात्रा इतनी थी कि होली में लकड़ी का बड़ा मोटा कुन्दा कमर में बाँध कर कबीर गाते गलियों में निकलते थे। पहली अपरैल को अँगरेज़ी सभ्यता के अनुसार मनुष्य दिल्लगी के लिए कोई भी झूठ बोल सकता है। भारतेन्दुजी उस दिन कुछ न कुछ अवश्य करते थे। एक बार आपने नोटिस दिया कि महाराज बिजियानगरम् की कोठी में एक योरोपीय विद्वान् सूर्य्य और चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतारेंगे। हज़ारों मनुष्य वहाँ एकत्र हुए परन्तु कुछ न देख कर लज्जित हो लौट गये। एक बार प्रकाशित कर दिया कि एक बड़े प्रसिद्ध गायक हरिश्चन्द्र स्कूल में मुफ़्त अपना गाना सुनावेंगे। जब हज़ारों आदमी एकत्र हुए तब परदा खुला और एक मनुष्य विदूषक के वस्त्र पहिने उलटा तान पूरा लिये घोर खरस्वर करने लगा। यह देख लोग हँसते हुए शरमा कर घर लौट गये। एक बार इन्होंने एक मित्र से नोटिस दिला दिया कि एक मेम रामनगर के पास खड़ाऊँ पर सवार गंगाजी को पार करेगी और खड़ाऊँ न डूबेगी। हज़ारों लोग एकत्र हुए परन्तु न कहीं मेम न खड़ाऊँ। पीछे सब समझे कि यह भी मज़ाक़ था। भारतेन्दुजी ने सुन्दर कपड़े, खिलौने, फ़ोटो एवं अपूर्व पदार्थों का संग्रह सदैव किया। इनको तसवीरों का संग्रह बहुत ही प्रिय था और इन्होंने बड़ा परिश्रम करके बहुत से बाद-शाहों एवं अन्य महाराजों की तसवीरें एकत्र कीं परन्तु एक हज़-

रत ने आकर उनकी बड़ी प्रशंसा की और इन्हें अपनी आदत से विवश होकर वह संग्रह उन्हें दे डालना पड़ा। इसी दान के पीछे लोगों ने इन्हें पछताते देखा। फिर इन्होंने ५००) तक व्यय करके वह संग्रह उन हज़रत से मँगाना चाहा परन्तु उन्होंने न दिया। इनके साथ के बैठने वाले हमारे एक बनारसवासी मित्र हमसे कहते थे कि इनके साथ बैठने में लोगों का जी इतना प्रसन्न रहता था कि कभी चित्त ऊबता ही न था। चाहे जितना शोक क्यों न हो, परन्तु इनके पास पहुँचे कि जी प्रफुल्लित हो गया।

सब उत्तम पदार्थों के शौक़ में इन्हें मद्य की भी लत पड़ गई थी परन्तु फिर भी अपने काव्य में इन्होंने मदिरा की बड़ी निन्दा की है। मल्लिका नामक एक बंगालिन से भी इनका लगाव हो गया था और इन्होंने उसे घर बिठला लिया। इनके सब गुणों में माधवी और मल्लिका-विषयक कलङ्क बिलकुल छिप जाता है। महाकवि कालिदास के मतानुसार "एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" और ये भारतेन्दु थे भी तो इनमें कलंक का होना स्वाभाविक ही था। अतः लोगों को उस पर दृष्टि भी न डालनी चाहिए। अपने स्वभाव का इन्होंने स्वयं बड़ा ही उत्तम एवं यथार्थ वर्णन किया है। यथाः—

सेवक गुनी जन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुन गानी के।
सोधेन सों सोधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरीश्चन्द्र नगद दमाद अभिमानी के॥

चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, दास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के॥

मेवाड़ यात्रा में इन्हें भय उपस्थित हुआ कि इनका अन्तकाल निकट आ गया। उस समय इन्होंने अपने अनुज से पत्र द्वारा अपनी स्त्री को प्रसन्न रखने तथा मल्लिका की भी लाज रखने का आग्रह किया था। इनका सम्मान साधारण जनसमाज एवं राजा महाराजाओं में बहुत अधिक था, और होता क्यों न? ऐसे पुरुष-रत्न इस स्वार्थी संसार में कहाँ देख पड़ते हैं? और सब बातें छोड़ कर हम इनके सम्मान के विषय में केवल एक बात यहाँ लिखते हैं—संवत् १९३७ में पंडित रामशङ्करव्यासजी ने 'सारसुधानिधि' नामक पत्र में इन्हें 'भारतेन्दु' की पदवी से विभूषित करने का प्रस्ताव छपवाया। उसी समय समस्त पत्रों एवं सब मनुष्यों ने मुक्त कंठ से इन्हें भारतेन्दु कहना शुरू कर दिया और तभी से इन्हें यह उपाधि मिली। हिन्दी, हिन्दू, और हिन्द के प्रचण्ड दुर्भाग्य से संवत् १९४० में ये महाशय क्षयी रोग से पीड़ित हुए और सब कुछ दवा होने पर भी ६ जनवरी संवत् १९४१ को पौने दस बजे रात को भारत का चन्द्र संसार को रोता छोड़ अस्त हो गया।

इस महाकवि ने केवल ३५ वर्ष इस संसार को सुशोभित किया और प्रायः १८ वर्ष की अवस्था से काव्य-रचना प्रारम्भ की। पहले ये केवल गद्य लिखते थे और पीछे से पद्य भी लिखने लगे। इस १७

वर्ष के अल्पकाल में इन्होंने १७५ ग्रन्थ बनाये और ७५ ग्रन्थ इनके सम्पादित, संग्रहीत वा उत्साह देकर बनवाये हुए और भी वर्तमान हैं। यों तो इन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था ही में एक दोहा बनाया था परन्तु १६ या १७ वर्ष की अवस्था से कविता रचना आरम्भ कर दिया। इन्होंने अपनी समस्त रचनाओं के प्रकाशित करने का स्वत्व बाबू रामदीनसिंह अध्यक्ष खड्गविलास प्रेस को दे दिया था, जिन्होंने इनके मुख्य मुख्य ग्रन्थों को "हरिश्चन्द्रकला" के नाम से छः भागों में प्रकाशित किया है। इसमें इन्होंने कागज़ वा छापा साधारणतया अच्छा लगाया है, परन्तु इनको भारतेन्दुजी की कविता को सर्व-साधारण में प्रचार करने का इतना ध्यान नहीं था जितना कि उस से अपने लाभ उठाने का। इस कारण इन्होंने कला का मूल्य इतना अधिक रक्खा है कि उसको साधारण कविता-प्रेमी नहीं ख़रीद सकते। इसका आकार कुल मिला कर इंडियन ला रिपोर्ट चारों हाईकोर्टों का दो तिहाई होगा और बरख़िलाफ़ उसके मूल्य ड्योढ़ से ज़ियादा! याने इंडियन ला रिपोर्ट का सालाना २०) और इस का ३२)!! और तिस पर मज़ा यह कि कागज़ वा छपाई भी उससे बहुत नाक़िस है!!! हम कला के एक एक भाग पर क्रम से अपनी अनुमति प्रकाशित करते हैं।

## प्रथम भाग—नाटकावली।

(१) "नाटक" नामक ४६ पृष्ठ के लेख में इन्होंने नाटक के लक्षण वा नाटक बनाने की रीति वा नाटक का इतिहास लिखा है। और इसके अतिरिक्त और बहुत सी जानने योग्य बातें नाटक के विषय में

वर्णित हैं जो पढ़ने योग्य हैं। इसकी रचना संवत् १९४० में हुई थी।

(२) "सत्यहरिश्चन्द्र" नाटक संवत् १९३२ में बना। यह आर्य्यक्षेमेश्वर कृत "चण्डकौशिक" के आशय पर बना है परन्तु उसका अनुवाद नहीं है। यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है और भारतेन्दुजी की उत्तम रचनाओं में इसकी गणना है। इसमें महाराज हरिश्चन्द्रजी की सत्य परीक्षा का वर्णन है। इसमें राजाओं के यहाँ पूर्व-काल में जिस प्रकार ऋषियों का आदर होता था वह पूर्ण रूप से दिखलाया गया है। महारानी शैव्या के स्वप्न में आनेवाली विपत्ति का दिग्दर्शन करा दिया गया है। राजा हरिश्चन्द्र की सत्यप्रियता इतनी बढ़ी हुई थी कि स्वप्न में भी पृथ्वी का दान देने पर दानपात्र के न मिलने से वे विकल थे, और सोचते थे कि इसका क्या प्रबंध करूँ। विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की बातचीत से यह साफ़ प्रकट होता है कि विश्वामित्र को पृथ्वी लेना अभीष्ट नहीं था वरन् वे किसी उपाय से राजा को सत्य-भ्रष्ट करना चाहते थे। ऐसे समय में हरिश्चन्द्र के मुख से यह वाक्य कहलाना बहुत ही योग्य और स्वाभाविक थाः—

चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को टरै न सत्य विचार॥
बेंचि देह दारा सुवन होय दासहू मंद।
रखिहै निज वच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द॥

इस ग्रंथ में कवि ने विश्वामित्र का तक़ाज़ा, गंगा-वर्णन, हरिश्चन्द्र का स्त्री और अपने को बेचना, स्मशान-वर्णन, एवं रोहिताश्व के मरने पर शैव्या और हरिश्चन्द्र का विलाप बहुत ही उत्तम

रीति से कहे हैं। इस ग्रंथ से भारतेन्दुजी की कवित्व-शक्ति का पूरा परिचय मिलता है। इस नाटक का अभिनय भारतेन्दु के सामने बलिया में संवत् १९४० में हुआ था। इसमें ८२ पृष्ठ हैं।

(३) "मुद्राराक्षस" विशाखदत्त कृत संस्कृत-नाटक का अनुवाद है। यह अनुवाद इतना उत्तम हुआ है कि यह किसी स्वतंत्र ग्रन्थ से कम आनन्ददायक नहीं है। ये विशाखदत्त महाराजा पृथ्वीराज के पुत्र थे। यह ग्रंथ १०६ पृष्ठ का है। इसमें चन्द्रगुप्त को राज्य देने और राक्षस को उनका मंत्री कर देने के कारण चाणक्य और राक्षस मंत्री में ख़ूब ही नीति की चोटें चली हैं और अंत में हारकर राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनना ही पड़ा। नीति का जटिल विषय होने पर भी इसकी भाषा ऐसी मधुर है कि इसके पाठ करने में बड़ा ही आनन्द होता है।

(४) "धनञ्जय विजय" कांचन कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद है। इसमें गद्य के स्थान पर गद्य और पद्य का पद्य में अनुवाद हुआ है। यह भी स्वतन्त्र ग्रन्थ की भांति मनोहर है। यह सोलह पृष्ठ का है और संवत् १९३० में बना था।

(५) "करपूर मंजरी" को राजशेखर कवि ने प्राकृत में बनाया था। उसी का यह ३२ पृष्ठ का अनुवाद संवत् १९३२ में बना था। इसमें एक प्रेम कहानी कही गई है और हास्य का भाग भी विशेष है।

(६) "चन्द्रावली नाटिका" ख़ास इन्हीं की बनाई है। इसमें किसी ग्रन्थ का अनुवाद या छाया नहीं है। यह ४५ पृष्ठ की है और

इसकी रचना संवत् १९३३ में हुई थी। इसका समर्पण बहुत ही उत्तम है।

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर॥

यह दोहा इनको बहुत ही पसंद था और इनकी बहुत सी रचनाओं में यह वंदना के स्थान पर लिखा गया है, और इस पुस्तक में भी यह दोहा वंदना में दिया गया है। इस नाटिका में चन्द्रावली का प्रेम कहा गया है और यह आद्योपांत प्रेमालाप से परिपूर्ण है। ऐसा प्रेम से छलकता हुआ कोई दूसरा ग्रन्थ हमने नहीं देखा। इस ग्रन्थ में सिवा प्रेम के दूसरा वर्णन नहीं है। इसको सर्व साधारण ने इतना पसंद किया कि एक महाशय ने ब्रजभाषा में और द्वितीय ने संस्कृत में इसका अनुवाद किया। इस ग्रन्थ में शुकदेवजी, नारद, चन्द्रावली के प्रेम छिपाने, प्रेमोन्मत्तता, यमुना और योगिनी के वर्णन बड़ेही हृदयग्राही हैं। महात्मा सूरदास और देवजी के अतिरिक्त कोई भी कवि प्रेम का ऐसा उत्तम वर्णन करने में समर्थ नहीं हुआ। नाटकों में यह और सत्य हरिश्चन्द्र भारतेन्दुजी को बहुत पसंद थे और वास्तव में ये दोनों ग्रन्थ इनकी रचना और भाषा-साहित्य के शृंगार हैं। इन ग्रन्थों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस ग्रन्थ से विदित है कि ये महाशय गद्य में भी शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग कर सकते थे।

(७) "विद्यासुन्दर" की कथा का वर्णन चौर कवि ने संस्कृत की चौर पंचाशिका में किया था। उसके आधार पर श्रीयुत यतीन्द्र-

मोहन टैगोर ने बँगला में विद्यासुन्दर नामक नाटक बनाया। उसी ग्रन्थ का अनुवाद भारतेन्दुजी ने किया है। यह ग्रन्थ संवत् १९२५ में केवल १८ वर्ष की अवस्था में इन्होंने बनाया परन्तु फिर भी इसकी भाषा ऐसी मधुर है और इसमें ऐसे ऐसे उत्तम छन्द हैं कि उनकी प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जाता। उदाहरणार्थ इसका एक छन्द दिया जाता है:—

हमहूँ सब जानतीं लोक की चालन
क्यों इतनों बतरावती हो।
हित जामें हमारो बनै सो करौ
सखियाँ तुम मेरी कहावती हो॥
हरिचन्दजू या में न लाभ कछू
हमें बातन क्यों बहरावती हो।
सजनी मन हाथ हमारे नहीं
तुम कौन को का समुझावती हो॥

(८) "भारत-जननी" नाटक किसी अन्य कवि ने भारत-माता नामक बँगला नाटक से अनुवादित किया था। इसको भारतेन्दुजी ने शोध कर प्रकाशित किया। इसमें भारत-सन्तानों की वर्तमान दुर्दशा और गौणरूप से भूत गौरव का वर्णन है। इसमें स्वदेश-भक्ति-पूर्ण एक होली भी बड़ी उत्तम कही गई है। ग्रन्थ १२ पृष्ठों में समाप्त हुआ है और प्रशंसनीय है।

(९) "भारत-दुर्दशा" इनका स्वतन्त्र नाटक है जो सं० १९३७ में लिखा गया। इसमें बड़ा ही उग्र और हृदय-ग्राही वर्णन है, और

भारत की वर्तमान दुरवस्था एवं उसके कारणों का बहुत ही उत्तम चित्र इसमें खींचा गया है। इसमें इन्होंने फूट, बैर, कलह, सुस्ती, सन्तोष, ख़ुशामद, कायरता, बहुत धर्म, छुवाछूत, शराब, पुराणों के वाक्य, जाति, ऊँच, नीच, विवाहों में जन्मपत्री का मिलाना, बहु-विवाह, बाल-विवाह, अपव्यय, अदालत, फ़ैशन, शिफ़ारिश, उपाधि, विधवा विवाह न करना, विलायत गमन की रोक, बहुत देवी, देवता, भूत, प्रेतों का पूजन, इत्यादि की निन्दा की है, और यह व्यंजित किया है कि भारतवर्ष में टिकस, क्षुधा पीड़ा, काल, मँहगी, रोग आदि जो विपत्तियाँ हैं और हिन्दुस्तानी जो काफ़िर, काले, नीच पुकारे जाते हैं ये सब बातें उपर्युक्त अवगुणों ही के कारण हैं। भारत दुर्दैव और सत्यानाश फ़ौजदार की बात-चीत में पहले भारत की वर्तमान दशा का वर्णन है, तदनन्तर क्रमशः रोग, आलस्य, मदिरा, और अंधकार का प्रवेश हुआ है। इसके पीछे छः हिन्दुस्तानी सभ्यों की एक सभा का वर्णन है जिसमें एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक सम्पादक, एक कवि और दो देशी भद्र-पुरुष प्रस्तुत थे। उसमें सब सभ्यों के व्याख्यान हुए हैं और जिस देश के लोग जैसी हिन्दी बोलते हैं और जैसे विचार जिस देश के हैं उनका ठीक उसी प्रकार से वर्णन कवि ने किया है। इसमें युक्तप्रदेशीय सभ्यों का बोदापन और कवि की अकर्मण्यता अच्छी दिखलाई गई है। इसमें तुलसी-दासजी की चौपाइयाँ बहुत ही मज़ाक के साथ लिखी गई हैं। इसमें प्रायः सभी स्थानों पर हास्य-मिश्रित वर्णन किया गया है परन्तु फिर भी उस हास्य में गूढ़ाशय छिपे हुए हैं। इस ग्रन्थ से

भारतेन्दुजी का अपार देश-प्रेम तथा उत्तम और ज़ोरदार कविता करने की शक्ति पूर्णरूप से प्रकट होती है। यह २२ पृष्ठ का एक बड़ा ही अनोखा ग्रन्थ है।

( १० ) "नीलदेवी" एक ऐतिहासिक नाटक है। इसमें अमीर अब्दुस्शरीफ़ ख़ाँ का महाराजा सूर्य्यदेव पर धावा करने का वर्णन है। अमीर के ओर की सब बात चीत शुद्ध उर्दू में वर्णित है। यह २० पृष्ठ का अपूर्व ग्रंथ संवत् १९३७ में बना था। इसमें प्रत्येक वर्णन आद्योपान्त बहुत ही अच्छा है। देववाक्य सुन कर रोयें खड़े हो जाते हैं परन्तु वह यथार्थ है। पागल का पार्ट क्या ही अनोखा आया है। कवि ने सच्चा पागल ला कर दिखला दिया। इसमें क्षत्रियों के युद्धोत्साह में कवि ने वीर-रस का चित्र सामने खड़ा कर दिया और उद्दंडता की हद कर दी। यह ग्रंथ बलिया में भारतेन्दुजी के सन्मुख खेला भी गया था। इस ग्रंथ से इनका उत्कट स्वदेश स्नेह देख पड़ता है और यह भी प्रकट होता है कि ये वीर-कविता भी परम मनोहर कर सकते थे।

( ११ ) "माधुरी" संवत् १९४० में बनी है। बाबू राधाकृष्ण-दास ने लिखा है कि यह किसी अन्य कवि का बनाया हुआ ग्रंथ है। इसमें वृन्दावन का वर्णन है और केवल ८ पृष्ठों में प्रेम कहा गया है।

( १२ ) "पाखण्डविडम्बन" संवत् १९२९ में बनाया गया था। यह प्रबोधचन्द्रोदय के तृतीय अङ्क का अच्छा अनुवाद है। इसमें ११ पृष्ठ हैं।

( १३ ) "अन्धेर-नगरी" संवत् १९३८ में बनी थी। यह १४ पृष्ठ का एक प्रहसन है और एक ही दिन में बना था। इसमें सौदा बेचनेवालों की आवाज़ों का एवं मुक़द्दमे का वर्णन अच्छा है।

( १४ ) "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" २० पृष्ठ का छोटा सा प्रहसन संवत् १९३० में बना था। इसमें मांस खानेवालों और मद्यपों की बहुत निन्दा है। इन्होंने ब्राह्मण लोगों की भी निन्दा की है। इसमें शास्त्रार्थ और उन्मत्तता का वर्णन बहुत उत्तम है। इस ग्रन्थ में हास्य-रस का अच्छा कौतूहल है।

( १५ ) "विषस्य विषमौषधम्" में एक महाराजा के सिंहासन-च्युत होने का इतिहास और हास्यमय वर्णन है और परस्त्रीगमन की निन्दा है। यह प्रायः गद्य ही में लिखा गया है। यह ९ पृष्ठ का ग्रन्थ संवत् १९३३ में बनाया गया था। इनके सब ग्रन्थों की भांति यह भी मनोहर है।

( १६ ) "दुर्लभ बन्धु" शेक्सपियर कृत मर्चेंट आफ़ वेनिस का अनुवाद है। इसमें ८४ पृष्ठ हैं और यह संवत् १९३१ में बना था। यह भी एक परमोत्तम अनुवाद है और अँगरेज़ी से अनुवादित होने पर भी इसमें भाव बिगड़ने नहीं पाया है।

( १७ ) "सतीप्रताप" एक अपूर्ण नाटक था जिसे बाबू राधा-कृष्णदास ने पूर्ण किया। इसमें २८ पृष्ठ हैं और इसका भारतेन्दु कृत भाग संवत् १९४० में बना था। इसमें पतिव्रता-शिरोमणि सावित्री का वर्णन है और पातिव्रत का अच्छा रूप और उसका अच्छा फल दिखाया गया है। बाबू राधाकृष्णदास ने इसे पूर्ण भी अच्छा किया है। उसका रूप बिगड़ने नहीं पाया है।

( १८ ) "रत्नावली" का केवल ४ पृष्ठों का अनुवाद संवत् १९२५ में हुआ था और फिर यह अपूर्ण रह गया।

( १९ ) "प्रेमयोगिनी" एक बड़ाही विशद ग्रन्थ बन रहा था परन्तु दुर्भाग्यवश यह अपूर्ण रह गया। इसका केवल प्रथम अंक बना है जिसमें २६ पृष्ठ हैं। इस नाटक में भारतेन्दुजी अपने विषय बहुत कुछ लिख रहे थे। इसके नायक रामचन्द्र स्वयं वेही हैं। समस्त ग्रन्थ बहुत बड़ा होता और इसमें उनकी चित्त की वृत्तियाँ बहुत कुछ जान पड़तीं परन्तु शोक कि यह अमूल्य ग्रन्थ अपूर्ण रह गया। इसमें बनारसी, महुला की, माड़वारी और गुजराती भाषाओं में कविता की गई है। इसमें रोज़ की बोलचाल और साधारण घटनाओं का कथन है और इस कारण इसमें बड़ाही स्वाभाविक और प्राकृतिक वर्णन है। यद्यपि ये महाशय बल्लभीय सम्प्रदाय के थे तथापि इन्होंने गोस्वामियों के निकृष्ट आचरणों की यह कहकर निन्दा कराई है कि "भाई! माले लूटैं, मेंहररुवौ लूटैं।" इसमें काशी की निन्दा और स्तुति बड़ी उत्तम कही गई है। इसी भाँति मिसिर, झपटिया और कहार की बातचीत, एवं झूरीसिंह और दूकानदारों का मज़ाक़ बहुत अच्छा कहा गया है। यह ग्रन्थ बहुत ही अनोखा और प्राकृतिक है और इसकी कविता बहुत ही मनोहर और अव्वल दरजे की है। यह ग्रन्थ संवत् १९३२ में बना था परन्तु न जाने क्योंकर अपूर्ण रह गया।

## द्वितीय भाग—इतिहास-समुच्चय।

नाटकों के अतिरिक्त भारतेन्दुजी में इतिहास-प्रेम भी बहुत था।

हमारे कवियों में से इतिहास-विषयक इतने ग्रन्थ किसी ने भी नहीं लिखे।

( १ ) "कश्मीर कुसुम" की भूमिका में भारतेन्दुजी ने इतिहास का अभाव, राजतरंगिणी का चार भागों में बनना, उसकी समालोचना, हर्षदेव का वर्णन, और कश्मीर के वर्तमान राज-घराने का वर्णन किया है। कुसुम में इन्होंने एक चक्र दिया है जिसमें राजसंख्या, नाम, गत कलि समय, डायर के मत से समय, कनिंघम के मत से समय, विल्सन के मत से समय, राज्यकाल, और विशेष वर्णन सूक्ष्मतया कहे गये हैं। इसमें बड़ा परिश्रम किया गया है और इनके ऐतिहासिक ग्रन्थों में यह इन्हें सबसे अधिक पसन्द था। इसमें ३५ पृष्ठ हैं।

( २ ) "महाराष्ट्र देश का इतिहास" केवल ९ पृष्ठों में है और उसमें कोई नई बात नहीं है।

( ३ ) रामायण के समय में बहुत सी ऐसी बातों का कथन है कि जो उस समय थीं परन्तु भ्रमवश लोग उन्हें आधुनिक समझने लगे हैं। वे निम्नलिखित बातें हैं:—भुशुंडी, जैन भिक्षुक, कौशल्या का घोड़ा काटना, कृष्ण का ईश्वरत्व, मुनियों का मांस न खाना, गोलोक का वर्णन, सड़क का होना, मूर्त्तियों का वर्णन, काग़ज़ पर लिखा जाना, जल-सेना, चारवाक और बुद्ध का वर्णन, पुराणों का वर्णन, मनुस्मृति के श्लोकों का होना, इस बात का ज्ञान कि चन्द्र सूर्य्य के प्रकाश से चमकता है, गुलाब पाश, संस्कृत का बोला जाना, राम से ब्रह्मा का यह कहना कि वे कृष्ण हैं। इस ग्रन्थ में १० पृष्ठ हैं।

( ४ ) " अगरवालों की उत्पत्ति " ७ पृष्ठ में।

( ५ ) "खत्रियों की उत्पत्ति" १४ पृष्ठ में।

( ६ ) "बादशाहदर्पण" में दिल्ली के बादशाहों का हाल है। इसमें भी चक्र द्वारा ही हाल सूक्ष्मतया कथित है। तदनन्तर उनका सूक्ष्म वृत्तान्त कहा गया है। कुल २२ पृष्ठ हैं।

( ७ ) "उदयपुरोदय" में २७ पृष्ठों द्वारा बापा रावल के समय तक का इतिहास लिखा गया है।

( ८ ) "पुरावृत्तसंग्रह" में ४६ पृष्ठों द्वारा स्फुट ऐतिहासिक विषय एवं दान-पत्रादि का वर्णन है।

( ९ ) "चरितावली" में ९० पृष्ठ हैं। इसमें निम्न महाशयों के चरित्र लिखे हैं :—

विक्रम, कालिदास, रामानुज, शंकर, पुष्पदन्ताचार्य्य, वल्लभाचार्य्य, सूरदास, सुकरात, नैपोलियन, महाराजा जंगबहादुर, द्वारिकानाथ मित्र, श्रीराजाराम शास्त्री, लार्ड मेयो, लार्ड लारेंस, और तृतीय सिकन्दर ज़ार। कई महापुरुषों की कुंडलियाँ भी इस ग्रन्थ में दी हुई हैं। इन कुंडलियों में रावण की भी कुंडली है।

( १० ) "पंच पवित्रात्मा" में महम्मद, अली, बीबी फ़ातिमा, इमामहसन, और इमामहुसैन के जीवन-चरित्र वर्णित हैं। यह ग्रन्थ २२ पृष्ठ का है।

( ११ ) "दिल्लीदरबारदर्पण" में संवत् १९३३ के दिल्लीदरबार का उत्तम वर्णन २५ पृष्ठों में किया गया है।

( १२ ) " कालचक्र " में २० पृष्ठों द्वारा संसार की बड़ी बड़ी घटनाओं का समय निरूपण किया गया है।

भारतेन्दुजी के ऐतिहासिक विषयों से विदित होगा कि इन्होंने उत्तमोत्तम विषयों को वर्णनार्थ चुना है और चुनते क्यों न ? इतने बड़े लेखक और कवि होकर ये महाशय अपना समय कैसे अनुचित विषयों पर खोते ? इन्होंने इतिहासों का लम्बा चौड़ा वर्णन कभी नहीं दिया और थोड़े ही स्थान में बहुत कुछ कह देने का सदैव प्रयत्न किया है।

## तृतीय भाग—राजभक्ति-सूचक काव्य।

इस भाग में अन्य महाशयों की बनाई हुई भी कविता बहुतायत से सम्मिलित है परन्तु वह सब इन्हीं के प्रोत्साहन से बनी थी।

( १ ) "विजयिनीविजयवैजयन्ती" में ८ पृष्ठों द्वारा ( ईजिप्ट ) विजय पर हर्ष प्रकाश किया गया है। इस युद्ध में हिन्दुस्तानी सैनिकों ने युद्ध किया था इसी कारण इस स्वदेश-भक्त जातीय कवि को बड़ा हर्ष हुआ।

( २ ) " भारतवीरत्त्व " में ४ पृष्ठों द्वारा अफ़ग़ान समर का वर्णन है।

( ३ ) "भारतभिक्षा" में ७ पृष्ठ हैं और उसमें तत्कालीन युवराज मृत सप्तम एडवर्ड महाराज के आगमन पर हर्ष मनाया गया है।

( ४ ) "विजयवल्लरी" में ३ पृष्ठों द्वारा क़न्धार विजय का उत्तम वर्णन है।

( ५ ) "मुँहदेखावनी" में ड्यूक आफ़ एडिम्बरा का विवाह दो पृष्ठों में वर्णित है।

( ६ ) "रिपनाष्टक" में लार्ड रिपन की आठ छन्दों में स्तुति है।

( ७ ) "राजकुमारसुस्वागत पत्र" में राजकुमार के काशी पहुँचने का वर्णन है। इसमें छन्द बड़े उत्तम हैं। यह ३ पृष्ठ का है।

( ८ ) "मनोमुकुलमाला" में ९ पृष्ठों में चित्र-काव्य द्वारा महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा की गई है। इसमें अँगरेज़ी, उर्दू और नागरी के अक्षरों में चित्र हैं।

( ९ ) "मानसोपायन" ५१ पृष्ठ का एक बड़ा ग्रन्थ है, परन्तु इसमें अन्य लोगों की कविता भी है और भारतेन्दुजी का एक ही पृष्ठ है। इसमें गुजराती और हिन्दी में कविता है।

( १० ) "युवराज एडवर्ड" के विषय में १६ पृष्ठों में उर्दू कविता है।

( ११ ) "युवराज एडवर्ड" की प्रशंसा में यह ५२ पृष्ठों का ग्रन्थ है परन्तु इसमें बँगला, तामिल, तेलेग्गू आदि की कविता है जिसमें बँगला का एक पृष्ठ इनका है।

( १२ ) "सुमनोञ्जलि" में ड्यूक आफ़ एडिम्बरा की प्रशंसा है। इस में २ पृष्ठ भारतेन्दुजी के हैं।

( १३ ) "जातीयसंगीत" युवराज के पीड़ित होने में बना था ? इसमें एक पृष्ठ इनका है।

इस भाग की कविता या तो शिथिल या साधारण है। इसमें उत्तम कविता बहुत थोड़ी है।

## चतुर्थ भाग—भक्तसर्वस्व ।

इसमें भक्ति रस की कविता है और यह वैष्णवों के आनन्दार्थ बना है। इस भाग की भी कविता साधारण है, परन्तु भक्ति-पक्ष की होने के कारण वह सराहनीय है।

( १ ) "चरणचिह्न" २६ पृष्ठों का ग्रन्थ दोहा और छप्पय छन्दों में कहा गया है। इसमें देवताओं और भक्तों के चरणचिह्नों का वर्णन है।

( २ ) "वैष्णवसर्वस्व" १५ पृष्ठों का एक गद्य ग्रन्थ है। इसमें वैष्णवों की विष्णुस्वामी, माध्व, चैतन्य, रामानुज और निम्बादित्य नामक पाँच सम्प्रदायों का वर्णन है।

( ३ ) "बल्लभीयसर्वस्व" भी गद्य का ग्रन्थ है जिसमें १२ पृष्ठों द्वारा इसी सम्प्रदाय का वर्णन है।

( ४ ) "युगुलसर्वस्व" में गद्य पद्य द्वारा २४ पृष्ठों में श्रीकृष्णचन्द्र, नन्द, यशोदा, उनके कुटुम्ब, सखी, सहचरी आदि का वर्णन है।

( ५ ) "तदीयसर्वस्व" में नारद के ८४ भक्ति सूत्रों पर गद्य में भाष्य किया गया है। यह ५६ पृष्ठों का है। भाष्य उत्तम हुआ है।

( ६ ) "भक्तिसूत्रवैजयन्ती" में शांडिल्य के १०० सूत्रों पर २४ पृष्ठों में गद्य द्वारा भाष्य किया गया है।

( ७ ) "सर्वोत्तम स्तोत्र" भाषा में ५ पृष्ठों में २७ पद्य कहे गये हैं, जिनमें स्तुति का विषय है।

( ८ ) "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" में नाभादास के पीछे के भक्तों का वर्णन है। इसमें कविता बिलकुल नाभादासजी के समान और

उसी रीति पर की गई है। यदि इसको नाभादास के ग्रन्थ में मिला देवें तो अन्तर जानना कठिन हो जाय।

( ९ ) इसमें ३६ पृष्ठ हैं और छप्पय छन्द विशेष हैं। उत्सवा-वली में साल भर के उत्सव, पूजाओं और उनके सामान का वर्णन है। इसमें ८ पृष्ठ हैं।

( १० ) "वैष्णवता और भारतवर्ष" गद्य का एक बहुत ही उपयोगी ११ पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें भारतवर्ष पर वैष्णवता का फल कहा गया है।

( ११ ) "पुराणोपक्रमणिका" भी गद्य का ३० पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें अट्ठारहों पुराणों का विषय वर्णित है।

( १२ ) "वैशाखमाहात्म्य" गद्य में ८ पृष्ठ हैं।

( १३ ) "कार्त्तिककर्म्मविधि" पद्य में ३० पृष्ठ हैं। इसमें संस्कृत के भी उदाहरण दिये गये हैं।

( १४ ) "कार्त्तिकनैमित्तिक कृत्य" गद्य में २८ पृष्ठ हैं।

( १५ ) "मार्गशीर्षमहिमा" गद्य पद्य में १४ पृष्ठ हैं।

( १६ ) "मार्गशीर्षमहिमा" गद्य पद्य द्वितीय में ६ पृष्ठ हैं।

( १७ ) "पुरुषोत्तममासविधान" गद्य पद्य में मलमास की महिमा बृहन्नारदीय पुराण के मतानुसार १२ पृष्ठों में वर्णित है।

( १८ ) "कार्त्तिकस्नान" पद्य में ६ पृष्ठ हैं। इनको कार्त्तिक स्नान की बड़ी भक्ति थी जैसा कि प्रेमयोगिनी से भी विदित है। गीतगोविन्दानन्द में गीतगोविन्द का भाषानुवाद उत्तम है। इसमें ४३ पृष्ठ हैं।

इस भाग में नम्बर २, ३, ५, ६, ८, १०, ११, और १८ परमोत्तम हैं।

## पंचम भाग—काव्यामृतप्रवाह।

इस भाग में इनके नाटकों के अतिरिक्त और भक्तिमार्ग को छोड़कर प्रेम प्रधान पद्य काव्य के ग्रन्थ हैं और वे सराहनीय भी हैं।

( १ ) "होली" ३४ पृष्ठ का ग्रन्थ है और उसमें ७९ पदों और छन्दों द्वारा होली का वर्णन किया गया है। इसकी कविता साधारण है।

( २ ) "मधुमुकुल" में होली, वसन्त इत्यादि का वर्णन है। इसमें संस्कृत के भी कुछ श्लोक हैं। यह ३८ पृष्ठ का ग्रन्थ है और संवत् १९३७ में बना था। इसमें ८८ छन्द हैं। इसकी भी कविता साधारण है।

( ३ ) "प्रेमफुलवारी" में भक्ति और प्रेम का काव्य है। इसमें १४ पृष्ठ और ९३ छन्द हैं। इसकी भी कविता उत्तम है।

( ४ ) "फूलों का गुच्छा" संवत् १९३९ में बना था। इसमें १० पृष्ठों द्वारा लावनी कही गई हैं जिनमें साधारण कविता है।

( ५ ) "विनयप्रेमपचासा" में ५० ग़ज़ल, लावनी और भजन हैं। इसी ग्रन्थ में नये प्रकार की १३ मुकरी भी कही गई हैं। इसकी कविता साधारणतः उत्तम है।

( ६ ) "प्रेमप्रलाप" में विनय, प्रेमादि का वर्णन ७० पदों द्वारा किया गया है। इसमें ३४ पृष्ठ हैं। इसकी कविता उत्तम है।

( ७ ) "देवीछद्मलीला" में ३७ पृष्ठ हैं। इसमें १८ पदों में राधा-कृष्ण का वर्णन है। प्रातःस्मरण मङ्गल पाठ में २६ पद्य हैं, भीष्मस्तवराज में १० पद, श्रीनाथस्तुति में ६ पद, अपवर्ग पंचक में पाँच पद और श्रीसीतावल्लभस्तोत्र में संस्कृत के ३० श्लोक हैं। इसमें श्रीबिट्ठलनाथजी की भी स्तुति वर्णित है। इसकी कविता साधारण है।

( ८ ) "प्रेमाश्रुवर्षण" में वर्षा और हिंडोले का वर्णन है। इसमें १६ पृष्ठ और ४६ छन्द हैं। इसकी कविता साधारण है।

.( ९ ) "वर्षाविनोद" में हिंडोला, बारामासा, वर्षा आदि का वर्णन है। इसमें ४२ पृष्ठ और १३४ छन्द हैं। रचना साधारण है।

( १० ) "प्रेममाधुरी" में प्रेम-सम्बन्धी कवित्त और सवैया हैं। इसमें १९ पृष्ठ और १२२ छन्द हैं। कविता साधारणतः उत्तम है।

( ११ ) "सतसईसिंगार" में बिहारीलाल के दोहों पर ८५ कुण्डलियाँ कही गई हैं। इनकी कविता पं० अम्बिकादत्तव्यासजी की कुण्डलिया से उत्तम है परन्तु हमारे मत में बिहारी के दोहों में उसी प्रकार की कुण्डलिया लगाना असाध्य-श्रम है। बिहारी एक बड़ेही बढ़िया कवि थे और उन्होंने जीवन भर में केवल ७०० दोहे लिखे हैं। फिर प्रत्येक दोहे में उन्होंने मज़मून ख़तम कर दिया है सो हर स्थान पर उसी विषय पर चार पद बढ़ा देने से तादृश उत्तम प्रबन्ध आना सर्वथा असम्भव है। यदि स्वयं बिहारीजी ही अपने दोहों पर कुण्डलिया चिपकाते तो भी वह छन्द दोहों के समान उत्तम न होते क्योंकि प्रत्येक दोहे में विषय बढ़ाने की गुंजाइश

नहीं। फिर यदि कोई वैसा ही कवि अपने जीवन पर्यन्त कुण्डलियाँ चिपकाने का प्रयत्न करे तो शायद उसका श्रम कवि-समाज में आदरणीय गिना जाय। इसी कारण भारतेन्दुजी ने इस श्रम को वृथा समझ कर छोड़ दिया होगा। फिर भी उनके छन्द अच्छे हैं।

( १२ ) "जैनकुतूहल" में ३६ पदों द्वारा यह सिद्ध किया है कि मतमतान्तरों का झगड़ा वृथा है और परमेश्वर केवल प्रेम से मिलता है। इसमें ५ पृष्ठ हैं। एक बार ये महाशय जैन-मन्दिर में चले गये थे और इस पर लोगों ने इनकी निन्दा की थी, इसी कारण यह ग्रन्थ बना था।

( १३ ) "प्रेममालिका" में ९९ पद ३७ पृष्ठों में हैं। इसमें प्रेम-वर्णन है। यह ग्रन्थ बहुत उत्तम है।

( १४ ) "वेणुगीत" ७ पृष्ठों का पदों में वर्णित ग्रन्थ है। इसकी कविता साधारणतः उत्तम है।

( १५ ) "प्रेमतरङ्ग" में बँगला, पूर्वी बोली, पंजाबी, ब्रज-भाषा आदि भाषाओं में पद कहे गये हैं। इसमें उर्दू की कुछ ग़ज़लें भी हैं। इस ग्रन्थ में ६४ पृष्ठ हैं। इसकी कविता साधारणतः उत्तम है। इसमें भी प्रेम का विषय है।

( १६ ) "रागसंग्रह" में ६० पृष्ठ और १५१ पद हैं। इसमें स्फुट राग कहे गये हैं। इसकी कविता साधारण है।

( १७ ) "प्रातःस्मरणस्तोत्र" में १८ पृष्ठ हैं जिनमें स्तोत्र, स्वरूप-चिन्तन, अक्षय तृतीया, प्रेमसरोवर, प्रबोधिनी और प्रातः समीरन पर कविता की गई है। इसकी कविता साधारण है।

( १८ ) "कृष्ण-चरित्र" में ३० पृष्ठ और ५१ पद हैं। इसमें कृष्ण-स्तव, ब्रजवर्णन आदि विषयों पर कविता है। इसकी कविता मनोहर है।

इस भाग की कविता प्रशंसनीय है। इसमें पदों का आधिक्य है परन्तु सवैया और घनाक्षरियों का अभाव नहीं है। इसमें कई भाषाओं में कविता की गई है और विषयों में प्रायः प्रेम का प्राधान्य रक्खा गया है और ऐसे वर्णन और विषयों से उत्तम भी हैं। कविता की दृष्टि से इनके प्रथम और पंचम भाग ही विशेष प्रशंसा-पात्र हैं।

## षष्ठ भाग।

यह भाग अन्य भागों से कुछ बड़ा है परन्तु इसमें भारतेन्दुजी के पसन्द किये हुए अन्य कवियों के ग्रंथ बहुतायत से हैं और स्वयं इनके ग्रंथ बहुत कम हैं। उपहासपूर्ण चूसा पैग़म्बर का लेख इसी भाग में है और इसी में एक ग्रंथ में बहुत से छोटे छोटे हँसी आदि के मनोरंजक चुटकुले हैं।

हम हरिश्चन्द्रजी के ग्रंथों का सूक्ष्मतया परिचय ऊपर दे चुके हैं। हमें शोक है कि स्थानाभाव के कारण कुछ भी विस्तारपूर्वक इनके ग्रंथों की आलोचना नहीं कर सके। इस विषय पर बाबू शिवनन्दन सहायजी ने इनकी जीवनी में कुछ विस्तार से वर्णन किया है। अब हम भारतेन्दुजी की कविता के कुछ कुछ गुण नीचे लिखते हैं।

( १ ) इनके काव्य में सबसे अधिक और सबसे उत्तम वर्णन प्रेम का है। इन्होंने ऐसा अनोखा हृदय पाया था कि उसमें प्रेम

की मात्रा अथाह थी। अतः इनके सब लेखों में उसी की विशेषता रहती थी। इसके उदाहरणस्वरूप "चन्द्रावली नाटिका," और पंचम भाग के प्रायः सभी ग्रन्थ दिये जा सकते हैं। इनमें ईश्वरीय तथा सांसारिक दोनों प्रकार का प्रेम विशेष रूप से था और इन दोनों प्रकार के प्रेमों के वर्णन इनके काव्य में हर जगह प्रस्तुत हैं।

( २ ) ये महाशय अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे। जो जो घटनायें इनके समय में हुईं उन सभों पर इन्होंने कविता की है। महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ का पदच्युत होना, दिल्ली-दरबार, युवराज का आगमन, मिश्र और अफ़गानिस्तान में युद्ध आदि सभी विषयों पर इन्होंने काव्य रचना की है। इसी प्रकार भारतवर्ष को उस समय जिन जिन बातों की आवश्यकता थी और उसमें जो जो दोष थे उन सबका इन्होंने सविस्तर वर्णन किया है। हिन्दी-साहित्य को जिन जिन बातों की आवश्यकता थी उन सब विषयों पर इन्होंने साहित्य-रचना की। ऐसा उन्नतिशील और प्रतिनिधि कवि भाषा-साहित्य में एक भी नहीं हुआ।

( ३ ) इनको हिन्दूपन और जातीयता का सदैव बड़ा ध्यान रहता था। स्वदेशाभिमान इतना अधिक शायद ही किसी को हो। स्वदेश-प्रेम से इस कवि का हृदय परिपूर्ण था। भारतेन्दु के बराबर हिन्द के दोषों पर आँसू बहानेवाला एवं उसके महत्त्व पर अभिमान करनेवाला कोई भी कवि हिन्दी-साहित्य में न होगा। हिन्द के विषय में इन्होंने बहुतही प्रेम गद्गद होकर काव्य किया है। यह पुरुषरत्न 'हिन्दी, हिन्दू और हिन्द के वास्ते कल्पवृक्ष हो गया है।

हास्य के ग्रन्थों तक में इन्होंने देशहित का चिंतवन नहीं छोड़ा। इस विषय के "नीलदेवी" और "भारत-दुर्दशा" ज्वलंत प्रमाण हैं।

(४) इनकी कविता में हास्य की मात्रा भी अधिक रहती थी और उसका प्रयोग ऐसी रीति से किया गया है कि वह बहुत ही उत्तम मालूम होती है। "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" और "अंधेरनगरी" तो मानो इसके रूप हैं। और और जगहों पर भी इसकी मात्रा बहुतायत से पाई जाती है।

(५) इनके काव्य में "बल" भी बहुत अधिक है। भाषा-कवियों में बहुत कम में इतना ज़ोर पाया जाता है। "नीलदेवी" और "भारत-दुर्दशा" में इसके उदाहरण अधिकता से मिलेंगे।

(६) विविध विषयों का उत्तम प्रकार से वर्णन करने की शक्ति इनमें बहुत बलवती थी। इन्होंने प्राकृतिक एवं सभी प्रकार के वर्णन बहुत ही उत्तम किये हैं। सौन्दर्य के तो ये उपासक ही थे अतः प्रत्येक विषय में सुन्दरता पर इनकी निगाह पहुँच जाती थी। इसके उदाहरण सभी स्थानों पर मिलते हैं परन्तु गंगा, यमुना, काशी, शुकदेव, नारद, हरिश्चन्द्र का बिकना, स्मशान, सभा के व्याख्यान, झपटिया दलाल इत्यादि की बातचीत विशेषतया द्रष्टव्य हैं। जैसा जी लगा कर इन्होंने वर्णन किया वैसे ही इन्हीं के सामने प्रायः इनके सभी नाटकों के अभिनय भी हो गये।

(७) इन्होंने रूपकों का वर्णन भी अपनी कविता में विशेषतया किया है। उदाहरण में चन्द्रावली नाटिका में योगिनि और वियोगिनि का रूपक देखिए।

( ८ ) इन महाशय ने पुरानी प्रथा के नायका, अलंकार, छन्द और रीति विषय पर एक भी ग्रंथ नहीं बनाया। रसों में इन्होंने ९ पुराने रसों के अतिरिक्त वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनन्द नामक चार नये रस माने कि जिनको पंडितों ने भी प्रामाणिक समझा। इसी प्रकार शृंगार रस में भी इन्होंने कई नये भेद माने हैं जिनका विशेष वर्णन इनकी जीवनी खड्गविलास प्रेसवाली के पृष्ठ ११८ पर हुआ है। इसी जीवनी में इनके ग्रन्थों का समय भी दिया हुआ है।

( ९ ) इनके समय तक उपन्यास हिन्दी भाषा में नहीं लिखे गये थे। अतः इन्होंने लोगों को उपन्यास लिखने के लिए प्रोत्साहित किया और स्वयं भी दो उपन्यास लिखने आरम्भ किये थे परन्तु वे अपूर्ण रहे जिनके नाम ये हैं "एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती", और "हम्मीर हठ"।

( १० ) इन्होंने राजनैतिक और सामाजिक सुधारों पर भी बहुत कुछ बातें लिखी हैं जो इनके ग्रन्थों में यत्र तत्र मिलती हैं, परन्तु विशेषतया भारतदुर्दशा नाटक में पाई जाती हैं। धार्मिक सुधारों का भी इन्होंने अच्छा वर्णन किया है।

( ११ ) इन्होंने पद्य में ब्रजभाषा को और गद्य में खड़ी बोली को विशेष आदर दिया है। परन्तु उर्दू, खड़ी बोली, ब्रजभाषा, माड़-वारी, गुजराती, बँगला, पंजाबी, मराठी, राजपूतानी, बनारसी, अवधी आदि सभी भाषाओं में इन्होंने काव्य किया है जो प्रायः सभी में सरस है। इन्होंने गद्य और पद्य प्रायः बराबर लिखा है।

( १२ ) इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्मों का प्रवर्त्तक था, जो दोपहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण क्षण बढ़ाता गया, जो गगनांगन का दीपक और काल सर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गवाँकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है। ( सत्य हरिश्चन्द्र )

झपटिया—काहो मिसिरजी, तोरी नींद नहीं खुलती, देखो संखनाद होय गवा, मुखियाजी खोजत रहे।

मिश्र—चले तो आइत्थै, अधियै राति के संख नाद होय तो हम का करैं। तोरे तरह से हम हूँ के घर में से निकसि के मन्दिर में घुस आवना होता, तो हमहूँ जल्दी अउते, हियाँ तो दारानगर से आवना पड़त है। अबहीं सुरजौ नाहीं उगे।

झपटिया—कहो जगेसर ! ई नाहीं कि जब संखनाद होय, तब झटपट अपने काम से पहुँचि जावा करो।

जलधरिया—अरे चल्ले तो आवत्थई, का भहराय पड़ी ! का सुत्तल थोरै रहली ? हमहूँ के झापट कन्धे पर रख के एहर ओहर घूमै के होतै तब न ! हियाँ तो गगरा ढोवत ढोवत कन्धा छिल जाला। ( प्रेमयोगिनि )

अहा ! संसार के जीवों की कैसी विलक्षण रुचि है, कोई नेम धर्म्म में चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त, कोई मत-मतान्तर के झगड़े में मतवाला हो रहा है, एक दूसरे को दोष देता है, अपने को

अच्छा समझता है, कोई संसार ही को सर्वस्व मान कर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मानकर घर बार तृण सा छोड़ देता है, अपने अपने रंग में सब रँगे हैं, जिसने जो सिद्धांत कर लिया है वही उसके जी में गड़ रहा है और उसी के खंडन मंडन में जन्म बिताता है, पर वह जो परम प्रेम अमृतमय एकान्त भक्ति है, जिसके उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह स्वरूप ज्ञान विज्ञानादिक अन्धकार नाश हो जाते हैं और जिसके चित्त में आतेही संसार का निगड़ आप से आप खुल जाता है—किसी को नहीं मिली; मिले कहाँ से, सब उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं, और भी जो लोग धार्म्मिक कहाते हैं उनका चित्त स्वमत स्थापन, और पर-मत-निराकरण रूप वाद विवाद से, और जो विषयी हैं उनका अनेक प्रकार की इच्छा रूपी तृष्णा से, अवसर तो पाता ही नहीं कि इधर झुकै। अहा! इस मदिरा को शिवजी ने पान किया है, और कोई क्या पियेगा? जिसके प्रभाव से अर्द्धाङ्ग में बैठी पार्वती भी उनको विकार नहीं कर सकती, धन्य है, धन्य! और दूसरा ऐसा कौन है?

( चन्द्रावली )

मदवा पीले पागल जोबन बीत्यो जात।
बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मानु हमारी बात॥
पी प्याला छक छक आनँद सों नितहि साँझ अरु प्रात।
झूमत चलु डगमगी चाल से मारि लाज को लाज॥
हाथी मच्छड़ सूरज जुगुनू जाके पिये लखात।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात॥

( भारत-दुर्दशा )

पीले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरी रसकारे ।

धिधिकट धिधिकट धिधिकट धाधा बजै मृदङ्ग थाप कसकारे ॥

बहार आई है भरदे बादए गुलगूँ से पैमाना ।

रहे लाखों बरस साक़ी तेरा आबाद मैख़ाना ॥

सँभल बैठो अरे मस्तो ज़रा हुशियार हो जाओ ।

कि साक़ी हाथ में मै का लिए पैमाना आता है ॥

( वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति )

सोओ सुख निँदिया प्यारे ललन ।

नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे

सोओ सुख निँदिया प्यारे ललन ।

भइ आधी रात बन सनसनात

पसु पंछी कोउ आवत न जात ।

जग प्रकृति भई मनु थिर लखात

पातहु नहिँ पावत तरुन हलन ।

झलमलत दीप सिर धुनत आय

मनु प्रिय पतङ्ग हित करत हाय ।

सतरात बैन आलस जनाय

सनसन लगि सीरी पवन चलन ।

सोए निसि के सब नींद घोर

जागत कामी, चिंतित, चकोर ।

विरहिनि, विरही, पाहरू, चोर,

इन कहँ छिन रैनिहु हाय कल न ।

इस राजपूत से रहो हुशियार ख़बरदार ।
ग़फ़लत न ज़रा भी हो ख़बरदार ख़बरदार ॥
अज़दर है भभूका है जहन्नुम है बला है ।
बिजली है ग़ज़ब इसकी है तलवार ख़बरदार ॥
दरबार में वह तेग़ शररवार न चमके ।
घर बार से बाहर से भि हर बार ख़बरदार ॥
चलहु वीर उठि तुरत सबै जय धुजहि उड़ाओ ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रन रंग जमाओ ॥

( नीलदेवी )

चूरन अमलबेद का भारी । जिसको खाते कृष्ण मुरारी ॥
मेरा पाचक है पचलोना । जिसको खाता स्याम सलोना ॥
हिन्दू चूरन इसका नाम । विलायत पूरन इसका काम ॥
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा । कीना दाँत सभी का खट्टा ॥
चूरन चला दाल की मंडी । इसको खाएँगी सब रंडी ॥
चूरन अमले सब जो खावैं । दूनी रिशवत तुरत पचावैं ॥
चूरन नाटक वाले खाते । इसकी नक़ल पचाकर लाते ॥
चूरन सभी महाजन खाते । जिससे जमा हज़म कर जाते ॥
चूरन खाते लाला लोग । जिनको अकिल अजीरन रोग ॥
चूरन खावैं एडिटर जात । जिनके पेट पचै नहिँ बात ॥
चूरन पूलिस वाले खाते । सब क़ानून हज़म कर जाते ॥

( अन्धेरनगरी )

दुनिया में हाथ, पैर हिलाना नहीं अच्छा ।
मर जाना प उठ कर कहीं जाना नहीं अच्छा ॥

फ़ाक़ों से मरिये पर न कोई काम कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छी है ज़माना नहीं अच्छा॥
सिज्दे से गर बिहिश्त मिलै दूर कीजिए।
दोज़ख़ हि सही सर क झुकाना नहीं अच्छा॥

सबै सुखी जग के नर नारी। रे बिधना भारत हिं दुखारी॥
कासी प्राग अजोध्या नगरी। दीन रूप सम ठाढ़ीं सिगरी॥
हाय! पंचनद हा! पानीपत। अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत॥
हाय चितौर निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मँझारी॥
जा दिन तुव अधिकार नसायो। ता दिन क्यों नहीं धरनि समायो॥
पापिनि सरजू नाम धराई। अजहूँ बहति अवध तट जाई॥
तुम में जल नहिँ जमुना गंगा। बढ़हु वेग करि तरल तरंगा॥
धोवहु यह कलंक की रासी। बोरहु किन झट मथुरा कासी॥
कुस कन्नौज अंग अरु बंगहि। बोरहु किन निज तरल तरंगहि॥
बोरहु भारत भूमि सबेरे। मिटै करक जिय के तब मेरे॥
घेरि छिपावहु विंध्य हिमालै। करहु सकल जल भीतर तुम लै॥
धोवहु भारत अपजस पंका। मेटहु भारत भूमि कलंका॥
(भारतदुर्दशा)

तोहरे आँखि में चरबी छाई माल न चाप्यो गोजर।
कैसी दून कि सूझि रही है असमानी के ऊपर॥
कहाँ कि ई तू बात निकासो खासी सत्यानासी।
भूखे पेट कोऊ ना सुतता ऐसी है ई कासी॥
देखी तुमरी कासी लोगो देखी तुमरी कासी।

आधी कासी भाँड़ भँड़रिया बाँभन औ संन्यासी।
आधी कासी रंडी मुंडी राँड़ खानगी खासी॥
लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बे बिसवासी।
महा आलसी झूठे शोहदे बे फिकरे बदमासी॥
मैली गली भरी कतवारन सँड़ी चमारिनि पासी।
नीचे नल ते बदबू उबलै मनौ नरक चौरासी॥
फिरैं उचक्का दै दै धक्का लूटैं माल मवासी।
कैद भये की लाज तनिक नहिँ बेशरमी नंगासी॥
साहेब के घर दौरे जावैं चंदा देइँ निकासी।
चढ़ै बोखार नाम मंदिर का सुनतै होयँ उदासी॥
घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी।
दाल कि मंडी रंडी पूजैं मानो इनकी माँ सी॥
आप माल कचरैं छानैं उठि भोरैं कागाबासी।
बाप कि तिथि दिन बाँभन आगे धरैं सरा औ बासी॥
करि व्यवहार साख बाँधैं मनु पूरी दौलति दासी।
घालि रुपैया काढ़ि देवाला माल डकारैं ठांसी॥
काम कथा अमृत सी पीवैं समुझैं ताहि विलासी।
राम नाम मुँह ते नहिँ निकसै सुनतै आवै खाँसी॥

( प्रेमयोगिनी )

परत चन्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहरि लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनुहरि दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो॥

कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है॥
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जल कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिधि पच्छो करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत॥
पिंग जटा को भार सीस पर सुन्दर सोहत।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत॥
कटि मृगपति को चरम चरन में घुँघुरू धारत।
नारायन गोविंद कृष्ण यह नाम उचारत॥
लै बीना कर बादन करत तान सात सुर सों भरत।
जग अघ छिन में हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भवजल तरत॥

( चंद्रावली नाटिका )

धिक है वह देह औ गेह सखी!
जेहि के बस नेह को टूटनो है।
उन प्रान पियारे बिना यहि जीवहि,
राखि कहा सुख लूटनो है॥
हरिचन्द जू बात ठनी सो ठनी,
नितकी कुलकानि सों छूटनो है॥
तजि आन उपाय अनेक भटू!
अब तौ हमको बिख घूटनो है॥

( विद्यासुन्दर )

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने प्रायः सभी विषयों पर कविता की है और सबमें इनको सफलता प्राप्त हुई है। इन्होंने भक्ति, तीर्थ, व्रत, धर्म्म, वीर, शृंगार, हास्य, करुणा, बीभत्स, राजनीति, समाज, प्राकृतिक दृश्य आदि सभी विषयों पर कविता की है और सबमें इनको पूर्ण कृतकार्य्यता प्राप्त हुई है। शुद्ध हिन्दी में गद्य लिखने के तो मानो ये एकमात्र सुधारक थे। इनके प्रथम राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद भी गद्य के लेखक थे परन्तु प्रथम ने केवल अनुवाद और द्वितीय ने उर्दू मिश्रित भाषा में प्रबन्ध लिखे हैं। सबसे प्रथम सर्वांग सुन्दर गद्य के लेखक भारतेन्दुजी ही हुए और उस समय से अब तक सैकड़ों गद्य के लेखक हो गये और वर्त-मान हैं और यद्यपि गद्य लेखन-प्रणाली ने अब उस समय से अधिक उन्नति कर ली है, परन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कोई लेखक कुल मिलाकर इनसे उत्तमतर हुआ या है। एकाध वर्तमान लेखकों की भाषा इनसे कुछ गम्भीरतर अवश्य है परन्तु कुल मिलाकर भारतेन्दुजी के लेखों में रोचकता वर्तमान सुलेखकों से अधिक है। भारतेन्दुजी उत्तम गद्य लेखन के जन्म-दाता और अद्यापि सर्व-श्रेष्ठ गद्य लेखक हैं। जितनी भाषाओं में इस महाकवि को काव्य रचना करने की सामर्थ्य थी उतनी में अन्य किसी भी कवि को नहीं है और न कभी थी।

भारतेन्दुजी के प्रथम हिन्दी में नाटकों का अभाव सा था। उस समय इस भाषा में केवल दो प्रधान नाटक थे, एक इनके पिता का अनुवादित 'नहुष नाटक' और द्वितीय राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनु-

वादित "शकुन्तला नाटक"। स्वतन्त्र नाटक का परमोत्तम ग्रन्थ एक भी न था। इस महाकवि ने इस त्रुटि के दूर करने का पूरा प्रयत्न किया और एक एक करके १८ नाटक ग्रंथ बनाये जिनमें से कहा जाता है कि दो इस कवि के नहीं हैं। इनमें से ९ ग्रन्थ ख़ास इन्हीं के मस्तिष्क के उपज हैं और शेष संस्कृत से अनुवादित हैं, जिनमें से एक अँगरेज़ी का भी अनुवाद है। इनके अनुवादों में ऐसा कुछ आनन्द आता है कि जैसा स्वतन्त्र ग्रंथों में आना चाहिए। हम मुक्तकंठ कहेंगे कि ऐसा उत्तम अनुवादक भाषा-कवियों में कोई भी नहीं है। वर्तमान कवियों में गद्यानुवाद कई लोग ऐसा ही कर लेते हैं परन्तु पद्य विभाग में ऐसा उत्तम अनुवाद करना इसी कवि के भाग में पड़ा था।

इनके स्वतन्त्र नाटकों में सभी अत्युत्तम हैं, परन्तु उनमें भी सत्य-हरिश्चन्द्र, चन्द्रावली और नीलदेवी बहुत ही उत्तम बने हैं। यह कहना कि भाषा में ऐसे नाटक किसी ने नहीं बनाये, इनकी कोई प्रशंसा नहीं करनी है क्योंकि भाषा में कोई दूसरा बढ़िया नाटककार अभी तक उत्पन्न ही नहीं हुआ। इन नाटकों की गणना संस्कृत के उत्तम नाटकों के साथ होगी। शेक्सपियर के सब नाटक इनकी बराबरी नहीं कर सकते। भारत-दुर्दशा और प्रेमयोगिनी भी अपने ढंग के अपूर्व हैं। सती-प्रताप से भारतवर्षीय स्त्री-धर्म्म का उच्चा-तिउच्च विचार प्रकट होता है और अन्धेरनगरी और वैदिकीहिंसा भी अच्छे मनोरंजक हैं।

इनके इतिहास-प्रेम और धर्म्म-प्रेम भी इनकी कविता से भली भाँति प्रकट होते हैं। इनकी कोरी कविता भाषा के उत्तम कवियों

की रचनाओं से तुलना नहीं कर सकती परन्तु नाटकों को भी जोड़ लेने से इनका पद बहुत ऊँचा हो जाता है। हिन्दी भाषा की इतनी उन्नति किसी एक व्यक्ति से नहीं हुई जितनी कि भारतेन्दुजी से। इस एक व्यक्ति से हिन्दी भाषा में कितने ही नये विषय आ गये और कितने ही प्रकार के लेख और लेखक उत्पन्न हो गये। सचमुच यह व्यक्ति वर्तमान हिन्दी का एक मात्र जनक हो गया है। इनकी आशु कविता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि ये महाशय धारा बाँध कर नये छन्द कहते चले जाते थे और जिह्वा नहीं रुकती थी। कविता का इन्हें इतना प्रेम था कि ये सोते में भी उसी के आनन्द में निमग्न रहते थे यहाँ तक कि इन्होंने सोते में भी कुछ छन्द बनाये हैं।

हम भाषा के नौ प्रसिद्ध और सर्वोत्तम कवियों में इनको भी समझते हैं।

परम प्रेम निधि रसिकवर, अति उदार गुन खान।
जग जन रंजन आशु कवि, को हरीचन्द समान॥
जे गुन नृप हरिचन्द में, जग हित सुनियत कान।
ते सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥

काशीनागरी-प्रचारिणी सभा बहुत दिनों से हिन्दी-ग्रन्थों का खोज करा रही है। उस खोज में नवरत्न के कवियों के निम्न ग्रन्थ मिले हैं जिनका वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं है और जो हम ने नहीं देखे हैं:—

सूरदास कृत ब्याहलो और नल दमयन्ती।
केशवदास कृत जहाँगीरचन्द्रिका, और नखशिख।
मतिराम कृत साहिसार।

# परिशिष्ट नम्बर १।

## विशिष्ट नामों की तालिका।



* भूमिका वाले पृष्ठों के प्रथम भू० अक्षर लिख दिया गया है।

# परिशिष्ट नम्बर ( २ )।

## शुद्धि-पत्र ।

| | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| भू० | १४ | ७ | तक | तक कि |
| भू० | १८ | २१ | कतबन | क़ुतबन |
| भू० | २० | १६ | कतबन | क़ुतबन |
| भू० | २४ | ८ | गोकुल नाथ, | गोकुलनाथ |
| | ९ | २ | की है | की गई है |
| | १० | १० | वाले | वालें |
| | १२ | १ | से | सों |
| | १३ | २० | पद्यावली | पदावली |
| | २४ | १३ | हनुमा | हनुमान |
| | २९ | १६ | दुःख | दुख |
| | ३१ | ३ | तुलसीदास | तुलसिदास |
| | ३३ | ९ | दामिन | दामिनि |
| | ४० | १९ | असंभव | अंसभव |
| | ४१ | ११ | चर्म्म | चरम |
| | ४५ | २ | अर्ध | अर्द्ध |
| | ६० | ७ | निशाचर | निशाचरों |
| | ८० | ९ | को | का |
| | ८३ | ४ | पराक्रन | पराक्रम |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ८५ | १२ | कि थे | थे कि |
| ८५ | १२ | कौसा | कैसा |
| ९८ | १२ | बिलास, | बिलासु |
| १२३ | ३ | इनकी | भ ( १ ) इनकी |
| १२९ | ११ | लेबार | लेबा |
| १३३ | २२ | चेरि; | चेरि |
| १६० | २१ | तेव | देव |
| १७० | ३ | दरि | हरि |
| १७३ | ११ | हटायो | इटायो |
| १९५ | ८ | इत्यादिक | रत्यादिक |
| २०० | ४ व ५ | के के | के |
| २०२ | १८ | १४ | १५ |
| २२० | ८ | 'कविवर बिहारी-लाल नामक' | 'कविवर विहारी लाल' नामक |
| २२५ | ५ | सकती है | सकती है ? |
| २३० | २ | है | है |
| २३३ | १ | रंग। | रंग॥ |
| २३५ | २ | भावैं | भावै' |
| २३९ | ७ | क्षुदम | शुदम |
| २६० | २ | एक। | एक |
| २६३ | १५ | कों | को |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २६५ | २० | हैं ॥ ६ ॥ | हैं ॥ |
| २७३ | १७ | १६१३ | १६११ |
| २७६ | ५ | में | से |
| २७९ | १ | हैं | है |
| २८५ | १६ | साभ | सभा |
| २९२ | १५ | विविध | विविधि |
| ३०५ | १२ | ( ८ ग ) | ( ८ घ ) |
| ३०७ | ७ | है | हैं |
| ३०८ | ९ | का | की |
| ३०८ | ९ | बनवाया | बनवाई |
| ३३० | २० | बीसलतेव | बीसलदेव |
| ३३७ | १७ | प्राकृत | कन्नौजी |
| ३५३ | अन्तिम | हरिश्चन्द्र | हरिचन्द |
| ३५६ | ७ | पूव | पूर्व |
| ३६७ | १ | ड्यक | ड्यूक |
| ३८६ | १४ | हरीचन्द | हरिचन्द |

---

# श्री हिन्दी-ग्रंथ-प्रसारक मराडली, प्रयाग।

सन् १९११ में प्रकाशित की जानेवाली

अन्य पुस्तकों की सूची।

## सरस्वतीचंद्र।

स्वर्गवासी श्रीयुक्त गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी,

बी० ए०, एलएल० बी, कृत

प्रसिद्ध गुजराती उपन्यास के

प्रथम भाग के पूर्वार्ध का

हिन्दी अनुवाद।

इस उपन्यास की उत्तमता के संबन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। 'सरस्वती' में श्रीयुक्त शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित ने इस के सबन्ध में लिखा था "इस समग्र पुस्तक के प्रकट होने में पंद्रह वर्ष लगे! 'सरस्वतीचंद्र' ने गुजराती साहित्य पर अविरल प्रकाश डाला है। पुस्तक है तो उपन्यास, परन्तु उसे ज्ञान और अनुभव का सागर कहना चाहिए। कल्पना, रस, कलाविधान, भाषा-गौरव आदि का उन्नत स्वरूप इस ग्रन्थ में मिलता है। धर्म, समाज, राजनीति आदि अनेक गंभीर विषयों पर उसमें बड़ी ही योग्यता से चर्चा की गई है। फिर भी ख़ूबी यह है कि पुस्तक के स्वारस्य में कुछ भी बाधा नहीं आई। राजा से लेकर रंक तक,

विद्वान् से मूर्ख तक, आबालवृद्ध, स्त्रीपुरुष सभी उसे पढ़ कर असाधारण लाभ उठाते हैं। गुजरातियों को इस ग्रन्थ ने रसज्ञ, विचारशील और कल्पना-प्रिय बना दिया है। इसने बहुतों के जीवन में उमंग और उत्साह भर दिया है; बहुतों के जीवन क्षेत्र में उच्चाशय का बोज बो दिया है; बहुतों के अभिलाषों को ख़ूब उत्कट बना दिया है; कितने ही विपथ-गामियों को उन्नत-पथ दिखाया है; बहुतों के शुष्क जीवन को रसाप्लुत किया है; बहुत कौन कहे, गुजरात के नवीन युग का यह महाभारत है। जब तक गुजराती भाषा का अस्तित्व रहेगा, तब तक 'सरस्वतीचंद्र' उपन्यास भी विद्यमान रहेगा इस में कुछ भी सन्देह नहीं। इस ग्रन्थ ने इसके लेखक को अमर कर दिया"। इससे अधिक इसकी प्रशंसा में क्या कहा जा सकता है? यह ग्रन्थ अँगरेज़ी में युग-निर्माता ( Epoch-making ) कहा गया है। कहते हैं इसने गुजरात के जीवन को पलट दिया है। चार भागों में यह सम्पूर्ण किया गया है। एक से एक भाग उत्तम है। इसी के प्रथम भाग के पूर्वार्ध का यह हिन्दी अनुवाद है। मूल पुस्तक से इस में यह अधिकता है कि यह सचित्र है। सुन्दर कागज़ तथा सुन्दर जिल्द से सुशोभित। पृष्ठ-संख्या अनुमान दो सौ॥ मूल्य १॥)

अर्वाचीन-इतिहास-माला ।

( प्रथम पुष्प )

# भारतवर्ष का अर्वाचीन इतिहास ।

## ब्रिटिश-काल

[ भाग पहला ]

बड़ोदा राजपुत्र-विद्यालय के शिक्षक, श्रीयुक्त गोविंद सखाराम सरदेसाई, बी० ए०. का नाम मराठी-साहित्य-संसार में प्रसिद्ध है। आप एक प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता हैं। मराठी भाषा में आपने भारतवर्ष का एक वृहत् इतिहास लिखा है यह कई भागों में लिखा गया है। कुछ भाग प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ प्रकाशित किये जाने वाले हैं। प्रथम भाग में मुसलमान-शासन तथा दूसरे भाग में मराठा-शासन का इतिहास दिया गया है। तीसरे भाग में ब्रिटिश-शासन का इतिहास रहेगा। इस भाग का कुछ हिस्सा 'ब्रिटिश रियासत पूर्वार्ध' के नाम से हाल ही में प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक इसी के कुछ भाग का हिन्दी अनुवाद है। ऐसे समय में जब कि इतिहास के ज्ञान का महत्त्व सर्वसाधारण पर अच्छी तरह प्रकट है, हम इस पुस्तक की उपयोगिता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं देखते। पुस्तक पढ़ने ही पर पाठकों को इसकी उपयोगिता का ज्ञान होगा। इसमें सात अध्याय हैं जिनमें क्रम से 'प्राचीन व्यापार,' 'युरोपियनों का पहला प्रयत्न,'

'मलाबार का प्राचीन वृत्तान्त,' पोर्तुगीज़ राज्य की स्थापना,' 'पोर्तुगीज़ शासन,'' पोर्तुगीज़ राज्य की गुण दोष चर्चा' तथा 'डच लोगों की हकीकत' आदि विषयों का वर्णन किया गया है। इसके बाद दूसरे भाग में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के समय से बाद का इतिहास आगामी वर्ष में प्रकट किया जायगा। पृष्ठ-संख्या अनुमान २५०। इस पुस्तक में अनेक ऐतिहासिक वृत्तान्त ऐसे हैं जिनके संबन्ध में हिन्दी भाषा में अब तक एक अक्षर भी नहीं लिखा गया है। पुस्तक का एक बार पाठ करने से पाठकों के ऐतिहासिक ज्ञान में बहुत कुछ वृद्धि होगी यह हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं॥ मूल्य १)

## समाज।

श्रीयुत रवीन्द्रनाथ टगोर का नाम इस देश की पठित समाज में भली भाँति परिचित है। आप एक प्रसिद्ध विद्वान्, वक्ता तथा बँगला भाषा के एक मार्मिक उत्कृष्ट लेखक हैं। बँगला भाषा में आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। यह पुस्तक आप ही की 'समाज' नामक एक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। यह पुस्तक हिन्दी संसार में अपने ढंग की एक नई वस्तु है। समाज-सम्बन्धी अनेक विषयों पर इसमें वैज्ञानिक रीति से महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखे गये हैं। पृष्ठ-संख्या १७५॥ मूल्य ॥)

# ठोंक पीट कर वैद्यराज।

अथवा

## विचित्र वैद्यराज

हिन्दी-साहित्य में ऐसी पुस्तकें, प्रायः बहुत कम देखने में आती हैं, जिनमें सभ्य रीति से हँसी व मज़ाक किया गया हो। साहित्य में हास्य रस का निर्माण इस अभिप्राय से न किया गया था कि लोग उसके द्वारा लाभ न उठाते हुए हानि सहें, किन्तु वह इस अभिप्राय से किया गया था कि लोग सभ्य, विनोद-पूर्ण साहित्य का अवलोकन कर अपना मानसिक क्लेश दूर करें। फ़्रांसके प्रसिद्ध नाटककार मोलियर ने इस प्रकार के कई नाटक फ़्रेंच भाषा में लिखे हैं। इनमें से 'दि डाक्टर इन स्पाइट ऑफ़ हिमसेल्फ' (The Doctor in spite of Himself) नामक नाटक बहुत उत्तम समझा जाता है। इसी का अनुवाद श्रीयुत हरिनारायण आपटे ने मराठी भाषा में किया है। प्रस्तुत पुस्तक इसी पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। हम यह कहने का साहस करते हैं कि जो इस पुस्तक को पढ़ेंगे वे अवश्य कुछ समय के लिए अपनी चिन्ता क्लेशादि को भूल कर मानसिक प्रसन्नता का सुखानुभव करेंगे। साथ ही में सामाजिक उपदेश भी प्राप्त होगा। पुस्तक में बहुत कुछ परिवर्तन करके इस प्रदेश की सामाजिक दशा के अनुकूल उसे बनाने का प्रयत्न किया गया है। पृष्ठ-संख्या १५०। पुस्तक की भाषा भी बहुत सरल रक्खी गई है॥ मूल्य।

---